सर्व्वेश्वरो जयति

श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

माधुर्य लहरी

(निम्बार्कमत का काव्य-ग्रन्थ)

रचयिता

श्रीकृष्णदास जी

सम्पादक—

केशवदेव शर्मा "प्रपन्न"

प्रकाशक—

बाबा श्रीविहारीदास जी "त्यागी"

गौतम ऋषि का आश्रम, बाराह घाट,

वृन्दावनधाम ।

प्रथम संस्करण] सं० २००६ [मूल्य ३।)

प्रकाशक :—
बाबा श्रीबिहारीदास जी "त्यागी"
गौतम ऋषि का आश्रम
बाराहघाट,
वृन्दावन धाम।

पुस्तक प्राप्ति का स्थान :—
पं० श्री व्रजवल्लभ शरणजी "वेदान्ताचार्य"
श्रीजी की बड़ीकुंज, रेतिया बाजार,
वृन्दावन धाम।

मुद्रक :—
परेशनाथ घोष
सरला प्रेस, बनारस।

दो शब्द

वृन्दावन के पावनधाम में पनपने वाले वैष्णव मतों में श्री निम्बार्काचार्य का मत अन्यतम है। इसकी आध्यात्मिक दृष्टि भेदाभेद वाद की है, जो भारतीय दर्शन के इतिहास में एक नितान्त प्राचीन वाद है। मध्ययुग में आचार्य निम्बार्क इसके प्रतिष्ठित प्रतिनिधि हैं। वेदान्तसूत्र के रचयिता बादरायण अपने ग्रन्थ में भेदाभेदवादी आचार्य औडुलोमि तथा आश्मरथ्य के मतों का सादर उल्लेख किया है। शंकरपूर्व आचार्यों में भर्तृप्रपञ्च इसी मत के अनुयायी थे तथा शंकरपश्चात् युग में भास्कर का भी यही मत था। निम्बार्क मत में उपास्य देव श्री राधाकृष्ण हैं जो 'सर्वेश्वर' के नाम से विशेषतः उल्लिखित किये जाते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ इसी मत से सम्बन्ध रखता है इसके रचयिता है—'कृष्णदास' जो कार्शीमण्डल के ही निवासी थे। ग्रन्थ के अन्त में उनका परिचय इस प्रकार उपलब्ध होता है।

विंध्य निकट तट सुर्धुनी, गिरजा पत्तन ग्राम।
हरिभक्तन कैं आश्रैं, कृष्णदास विश्राम॥
ग्रन्थ माधुर्य्य सुलहरि, अस कहियै जाको नाम।
कृष्णदास मुख श्री कृपा, प्रगट भयो ता ठांम॥
अष्टादश सत लीजियै, सम्बत् बावन संग।
भाद्र मास सुखसिंधु, श्री जन्मारम्भ तरंग॥
तिरपन सम्बत् को अमल, अति. वैसाख सुमास।
लहरि माधुरी सुख लह्यौ, संपूरन बन आस॥

इससे पता चलता है कि वे विन्ध्याचल के पास गंगा के तीरस्थित किसी गिरिजापत्तन के निवासी थे। ग्रन्थ की समाप्ति १८५३ संवत् में हुई थी।

यह ग्रन्थ इस प्रकार डेढ़ सौ वर्ष प्राचीन है। ग्रन्थकार निम्बार्क मत के अनुयायी हैं। उन्होंने व्रजमण्डल के सप्त आवरणों या मण्डलों का वर्णन बड़े

ही समारोह के साथ किया है। भगवान् राधिकारमण के सखाओं का तथा रासेश्वरी श्री राधिका की रूपमाधुरी तथा सखीसमाज का जो वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह भागवत शास्त्रानुरूप है। राधाकृष्ण के विविध विलासों के भक्तिमय विवरण करने में कवि ने अपनी शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। ग्रन्थ वैष्णव भक्तों के मनन की वस्तु है। काव्य की दृष्टि से इसमें भले ही त्रुटि दीख पड़े, परन्तु भक्ति की दृष्टि से निरखने वाले भक्तों के लिए यह सर्वथा मनोज्ञ, सरस तथा रोचक प्रतीत होगा !

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए वृन्दावन के बाबा विहारीदास जी "त्यागी" हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। ग्रन्थ के सम्पादन में उतनी सावधानी न होने पर भी यह बहुत कुछ शुद्ध छपा है। आशा है कि प्रकाशक महोदय अन्य ग्रन्थों का भी इसी प्रकार उद्धार कर भक्त तथा काव्य-रसिक दोनों का कल्याण साधन करते रहेंगे।

काशी,
५-२-५०

—बलदेव उपाध्याय

—: परिचय :—

"माधुर्य लहरी" के कर्ता श्री कृष्णदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित भक्त थे। ये विन्ध्य के निकट गंगा तट पर गिरिजापत्तन नामक ग्राम में रहते थे। इन्होंने अपने को हरिभक्तदास का शिष्य बतलाया है, इनके नाम पर खोज में कई ग्रन्थ चढ़े हुये हैं पर छानबीन करने से पता चला वस्तुतः इनके तीन ही ग्रन्थ हैं।

१—"माधुर्य्य लहरी" (रचनाकाल १८५२ से १८५३ तक) २—"भागवत भाषा" (रचनाकाल १८५२ से १८५३ तक) ३—"भागवत माहात्म्य" (रचनाकाल १८५५)

खोज में इनके नाम पर एक मंगल भी मिलता है किन्तु इनकी रचना न होकर श्री विहारिनिदास जो के शिष्य श्री नागरीदास जी की है।

खोज में "गिरजापुर" व मिर्जापुर या गाजीपुर मानने की संभावनायें भी प्रगट की गयी हैं। पर गिरजापत्तन या गिरजापुर ग्राम मात्र था या कोई बड़ा जनपद रहा होगा, मिर्जापुर या गाजीपुर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता, समुचित सामिग्री के अभाव में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

कृष्णदास जी केवल अनुवादक ही न थे, उनमें स्वतन्त्र निर्माण की शक्ति भी थी, "माधुर्य्य लहरी" नाम का ग्रन्थ उन्होंने स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया है, वह आकार प्रकार में बहुत बड़ा है। यह हिन्दी में ही कविता नहीं कर सकते थे, संस्कृत में भी लिखने की क्षमता इनमें थी इसका प्रमाण मंगलाचरण के संस्कृत श्लोकों और उपसंहार की संस्कृत रचनाओं से मिल जाता है।

"माधुर्य्य लहरी" में राधाकृष्ण की साम्प्रदायिक लीला का विस्तृत कथाबद्ध वर्णन है। ग्रन्थ में काव्यगत चमत्कार का प्रभाव और भावगत रसात्मकता का प्राचुर्य्य है, कवि की रचना में काव्य गुणों को सद्भाव और दोषों का अभाव है, इससे यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कवि में अच्छी क्षमता थी।

हिन्दी में प्राचीन काव्यों का अनुशीलन भी कम हो रहा है, और उनका प्रकाशन भी न्यूनातिन्यून, अधिकतर वे ही प्राचीन ग्रन्थ छपा करते हैं जो धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, या पाठ्यक्रम में चलते हैं। हिन्दी की संस्थायें भी प्राचीन ग्रन्थों का छापना बन्द करके पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन में लीन हैं—कर्त्तव्यमौन हैं व्यवसाय मुखर, नवलकिशोर प्रेस, वेङ्कटेश्वर प्रेस, भारतजीवन प्रेस, खड्ग-विलास प्रेस, यहाँ तक कि वंगवासी प्रेस आदि ने जितने प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित किये थे उतने एक संस्था तो क्या सब संस्थाएँ मिलकर भी प्रकाशित न कर सकीं, अपने प्राचीन काव्य साहित्य की गौरव की बातें करने वाले तो बहुत मिलते हैं पर उसके संपादन, प्रकाशन तथा अनुशीलन पर ध्यान देने वाले अत्यल्प।

साहित्य के लिए यह शोभन स्थिति नहीं कही जा सकती, ऐसी स्थिति में भक्ति की साम्प्रदायिक दृष्टि से ही सही जो प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन व प्रकाशन कराते हैं वे श्लाघ्य हैं, माधुर्य्य लहरी का सम्पादन यद्यपि आधुनिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक प्रणाली से नहीं हुआ है किन्तु, भक्त सम्प्रदाय के बीच जिस प्रकार सम्पादित और मुद्रित ग्रन्थ प्रचित थे या हैं, उस रूप में भी यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं किया गया है, इस युग में साहित्यिक ग्रन्थ जिस छपाई सफाई शुद्धता से छापे जाते हैं उसी पद्धति पर इसका सम्पादन प्रकाशन करने का प्रयास किया गया है इसके सम्पादक और प्रकाशक दोनों का मैं प्राचीन काव्य का उद्धार करने के लिये अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन करने में संलग्न रहेंगे। श्री विहारीदासजी ने **"गोपालतापिनी उपनिषद्"** प्रकाशित करके सम्प्रदाय को बहुत-सी अलभ्य सामिग्री दी है, और मेरा विश्वास है कि वे भविष्य में भी इसी पकार इस कार्य में संलग्न रहेंगे। वे तपःपूत भक्त हैं उनके लिये इस प्रकार का संभार कर लेना कथमपि असक्य नहीं है, हिन्दी साहित्यिक के नाते मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

ब्रह्मनाल काशी,
महाशिवरात्रि, २००६,

—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

संपादक का वक्तव्य

—:*:—

"माधुर्य्य लहरी" के कर्ता श्री कृष्णदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय के एक पहुँचे हुये भक्त थे, आप के जन्म-सम्वत् तथा वंश-परिचय आदि पर अभी पूरा प्रकाश नहीं डाला जा सकता है, केवल इनके ग्रन्थ के आधार से इतना पता अवश्य लगता है कि आप श्री हरिभक्तदास जी के शिष्य थे, तथा विन्ध्याचल के पास गंगा तट पर किसी गिरिजापत्तन नामक ग्राम के निवासी थे। माधुर्य्य लहरी का रचनाकाल सं० १८५२ से १८५३ सं० तक माना गया है जो कि आपकी रचना से भी स्पष्ट होता है, जिसका ग्रन्थ में उद्धरण इस प्रकार है,

विन्ध्य निकट तट सुर्धुनी, गिरजापत्तन ग्राम।
हरिभक्तन कैं आश्रैं, कृष्णदास विश्राम॥
ग्रन्थ माधुर्य्य सुलहरि, अस कहियै जा को नाम।
कृष्णदास मुख श्री कृपा, प्रगट भयौ ता ठांम॥
अष्टादश शत लीजियै, सम्वत् सावन संग।
भाद्र मास सुखसिन्धु, श्री जन्मारंभ तरंग॥
तिरपन सम्वत् को अमल, अति वैसाख सुमास।
लहरि माधुरी सुख लह्यौ, संपूरन मन आस॥

इनके सम्बन्ध में विशेष अन्वेषण, ग्रन्थ में "परिचय" लेखक श्री विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने किया है जो कि इनकी बहुत सी बातों को स्पष्ट करता है वह विशेष अन्वेषण हमारे पूज्य मिश्रजी के पास ही रक्खा है, समय आने पर वह लेख जनताजनार्दन के दृष्टिपथ भी हो सकेगा।

कृष्णदास जी एक उद्भट कवि थे इनके दो ग्रन्थ और भी मिलते हैं जो कि "भागवत भाषा" तथा "भागवत माहात्म्य" के नाम से प्रसिद्ध हैं, संस्कृत रचना में भी इनकी अच्छी दृष्टि थी, जो कि ग्रन्थ ही स्पष्ट कर रहा है।

प्रस्तुत ग्रंथ में श्री राधाकृष्ण की अष्टयाम लीलाओं का वर्णन इतने सुचारु सुस्पष्ट रीति से किया गया है कि जो भक्तमंडल को भक्ति रस में ओतप्रोत कर सकेगा, श्री वृन्दावन गोलोक धाम के सप्तावरण का विशद वर्णन भी ग्रन्थ में किया गया है।

संक्षिप्त कथानक :—अधिक न लिखते हुये इतना ही पर्य्याप्त होगा कि एक समय सनकादि महर्षि तथा नारद जी आदि बहुत से देवगण ब्रह्माजी की सभा में बैठे थे, वहाँ पर सनत्कुमार द्वारा प्राणियों के कल्याणार्थ प्रश्न, ब्रह्माजी को संभ्रमित देखकर श्री हंसावतार भगवान का प्रादुर्भाव तथा प्रश्न-समाधान, विशेषजिज्ञासा के लिये गोपेश्वर जी के पास जाने का आदेश, बाद में हंसरूप भगवान् का अन्तर्ध्यान होना, तदन्तर सनकादि ऋषियों का गोपेश्वर जी के पास आना, उनसे भगवान की नित्य लीला के सम्बन्ध में प्रश्न करना, प्रश्न होते ही गोपेश्वर जी का कथा-वर्णन करना आदि।

हस्तलिखित इस महान ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे स्वनामधन्य वीतराग श्री बाबा विहारीदास जी "त्यागी" ने करके निम्बार्क-सम्प्रदाय की तथा भगवान सर्व्वेश्वर की महान सेवा की है "त्यागी" जी का अधिकतर समय ग्रन्थों के प्रकाशन में व्यतीत होता है। अभी हाल में ही "गोपालतापिनी उपनिषद्" को बृहत् संस्कृत टीका सहित आपने प्रकाशित किया है, तथा "नारद रहस्य गोष्ठी" नामक निम्बार्क सम्प्रदाय का महान् ग्रन्थ प्रेस में मुद्रित हो रहा है, शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है, और कई ग्रन्थ भी छपने वाले हैं यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि "त्यागी" जी सम्प्रदाय के हृदयभूत व्यक्ति हैं।

त्यागीजी की तरफ से हम उन महाविभूतियों को भी हृदय से धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ में अपनी सम्मतियाँ प्रदान की हैं।

हमारे वे महानुभाव भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस हस्तलिखित प्रतिलिपि को सुरक्षित रखा है, जिनका नामोद्धरण ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार है, **सं० १८७१ वर्षे मासोत्तममासे शुक्लपक्षे तिथौ चन्द्रवासरे लिखितं जसराम ब्राह्मणेन लिखायितं लाडिलीदासेन ।। शुभम्**

इस ग्रन्थ का सम्पादन कार्य त्यागीजी ने मुझ अज्ञ को प्रदान किया, इस नाते अशुद्धियाँ रहना स्वाभाविक ही है। यह ग्रन्थ इतनी शीघ्रता से प्रकाशित हुआ है कि हम इसकी विषय सूची आदि बहुत सी बातें प्रकाशित न कर सके, यह ग्रन्थ जिस रूप से आपके सामने उपस्थित है भक्तगण उसे अपनी वस्तु समझकर अपनायेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा, ।।इतिशम्।।

फा० कृष्ण शिव चतुर्दशी
सं० २००६

भगवत्प्रेमियों का दास
केशवदेव शर्मा "प्रपन्न"
वृन्दावन धाम

❖ श्री हरिः ❖

श्री सर्वेश्वरो जयति

!! श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

❀ माधुर्य लहरी ❀

श्लोकः – श्री राधावरपादपद्मयुगलं नित्यं शरण्यं भजे, लब्धं श्रीहरिभक्तदासकृपया तान्सद्गुरून्सन्नमे । राधाकृष्णविलास-धाम प्रकटी कर्त्तुं मनो धावति, लिप्साप्रौढतरा तु यस्य हृदये हास्यं न सः पश्यति ॥१॥

॥छं०॥ श्री स्वामिनीपदकमलनखमणिचारु चंद्रमयूषता ॥
ब्रह्मांड अमितप्रकाश प्रसरप्रमोद पूरपियूषिता ॥
अनगम्य अकथ अनंत अनवधि अप्रमेय महीमनं ॥
कुरु पान चित्त चकोर इव रसकृष्णदास दृढीमनं ॥

दोहा—हरि द्वय अक्षर बीज तरु, भक्तिदास भल जोय।
त्रिपदी संगम सेय सब, तरे रह्यौ नहि कोय ॥१॥
हरि कहि भक्ति सुदास भजि, षट् अक्षर कौ मंत्र।
महिमा वेद पुरान मैं, जाहि कहैं सब तन्त्र ॥२॥
हरिहित भक्ति सुदास के पद नख छटा प्रकास।
महामोह तम निबिड़ अति, बंदत होत विनास ॥३॥
योग सिद्धि फल चारि मय, मंगल मोद अभिष्ट।
हरिहित भक्ति सुदास पद कृष्णदास के इष्ट ॥४॥
दुर्गम भीम अपार दृढ़, भवनिधि अति दुख हेतु।
कृष्णदास गुरुदेव के, चरन तहां सुख सेतु ॥५॥
भूत भविष्यति काल औ, वर्त्तमान पुनि गाय।
जुगल उपासक जे भये, मो शिर तिनके पाय ॥६॥

मदन मोहन राधा चरन, पद्म पराग सुवास।
मन मलिंद ह्वै जिन लई, कृष्ण दास तिन आस ॥७॥

परब्रह्म श्री कृष्ण की, माया रचित निकाय।
जड़ चेतन जग जीव जे, हौं विनवौं सिर नाय ॥८॥
श्री ललिता पद कमल जुग, सुमिरौं बारहि बार।
जासु कृपा लवलेस लै, होत सकल निरधार ॥९॥

नाम लिये वृन्दाविपिन, तपनि मिटै तत्काल।
अनायास हिय आवहीं, राधा मदन गुपाल ॥१०॥
चाह हिये अस उमगि ससि, गहि लीजै कर माहि।
भाग्य बुद्धि जस योग्यता, ते एकौ अंग नाहि ॥११॥
हरि गुन गाय लह्यो सबन, सुख जस दोऊ लोक।
मोहि अजस हूं जौ मिलै, कृष्ण लिये मुद ओक ॥१२॥
ऐसें चित्त विचारि कै, उर बाढ्यो उत्साह।
अब तौ यह सुख लीजिये, आगें जथा निबाह ॥१३॥
संमत वेद बखानियें, सबही को मत एह।
राधाकृष्ण रहस्य थल, निश्चै गत संदेह ॥१४॥
जिहि जाने संसृति मिटै, मिलै परम पद ठाम।
ताहि सुनें मन चेत करि, ज्यों पावे विश्राम ॥१५॥

हरि सब दिन करुणा भरैं, जीव सुगति के हेतु।
विविध रूप लीला करैं, तेई भवनिधि सेतु ॥१६॥
हंस रूप गोपाल श्री, चरन कमल रज वंद्य।
सनकादिक नारद सुखद, निंबारक अभिनंद्य ॥१७॥
बरनौं नित्य विहार की, लीला नित्य स्वरूप।
जाहि सुमिरि लव निमिषि हू, मिटै अंध भव कूप ॥१८॥

एक समय ब्रह्मा निकट, बैठे चारौ भाय।
सनकादिक मुनि वृन्द बहु, नारद चित्त लगाय ॥१९॥
आगम निगम पुरान जे, सब्द प्रबंध अपार।
देव दनुज उपदेव सब, सोहैं सभा अगार ॥२०॥
वर सिंहासन मध्य तहां, चतुरानन जग हेतु।
तेज धाम सोभा सदन, सोभित मंगल सेतु ॥२१॥

ताहि समै कर जोरि नय, बोले सनत्कुमार।
महाराज सरवज्ञ तुम, अन्तर जानन हार ॥२२॥
आप पितामह जगत के, प्रजा सकल हम लोग।
धर्म नीति उपदेस के, और न दूसर जोग ॥२३॥
संक एक मन में महा, निसि वासर दुख देत।
कहिये सो निरवारि कै, ज्यों पावैं हम चेत ॥२४॥
कर्म भूमि सब जगत मैं, भरत खंड दृढ़ नेम।
जीव करैं तहँ कर्म जे, भुगतैं छेम अछेम ॥२५॥
जज्ञ दान तप कष्ट करि, पावत हैं बहु स्वर्ग।
सत्य लोक पुनि हरि भजैं, कितने हूँ अपवर्ग ॥२६॥
सकल ठौर तैं देखिये, खिस खिस परै बहोरि।
पुनि चौरासी परिकरै, कर्म बंधे दृढ़ डोरि ॥२७॥
सर्वोपरि वैकुण्ठ है, गुणातीत निर्माय।
पतन भयो जय-विजय को, जोनि आसुरी पाय ॥२८॥
गर्भवास दुखप्रद सकल, मिट्यौ न नर्क निवास।
कहा भयौ दिन चारि कें, पायें लोक विलास ॥२९॥
श्री मुख श्रुति ऐसे कह्यौ, परम धाम दृढ़ सोय।
जहां न ससि सूरज कहैं, पुनरावृत्ति न होय ॥३०॥

कहौ कौन सो लोक है, कहा नाम किहि ठाम।
जिहि जाने संसृति मिटै, जीव लहै विश्राम ॥३१॥
अधिष्ठान तहाँ को वसै, जातें पर नहिं और।
सर्वाराध्य परात्पर, अवधि लहै करि दौर ॥३२॥
सुनि बानी सब सभासद, उर बाढ़्यौ अति हर्ष।
संसै विधि मन मैं भयो, जानि प्रश्न उत्कर्ष ॥३३॥
उत्तर अंग न पावहीं, सोचि रहें सब भाँति।
महत प्रतिष्ठा हानि लखि, क्यों हूँ लहत न शांति ॥३४॥
विधि चिंतानिधि मगन ह्वै, कियो हिये हरि ध्यान।
हंस रूप गोपाल तहाँ, प्रगट भयो भगवान् ॥३५॥
महिमा तेज प्रभाव अति, दिसा प्रकास निहारि।
चकित भये अज सभा सब, संभ्रम सहित संभारि ॥३६॥

निकट जानि अकुलाय सब, उठे एक ही बार।
परे दंड इव प्रेम जुत, करैं प्रणाम अपार ॥३७॥
अभिवादन अस्तुति करी, अपनी मति अनुरूप।
मायापति श्री कृष्ण को, जानि सकै को रूप ॥३८॥

दै आदर सनमान लहि, चतुरानन गहि पानि।
वर सिंघासन अपर सुचि, पधराये प्रभु आनि ॥३९॥
सेवा सकल प्रकार करि, जानि कृपा निज ओर।
सबैं निहारैं वदन दिसि, जैसे चंद चकोर ॥४०॥

अन्तरजामी सकल उर, बोले मृदु मुसिकाय।
संसै ग्रस्त सबै लगौ, नैनन प्रगट लखाय ॥४१॥
ब्रह्मा विनय प्रणाम करि, भाख्यौ सकल प्रसंग।
मंद हसे सुनि कृष्ण प्रभु, जानि प्रश्न कौ अंग ॥४२॥
चितये सनत्कुमार दिसि, दया विलोचन पूरि।
सीस नवाये जानि तिन, कृपा करी हरि भूरि ॥४३॥
करुना सील सुभाव प्रभु, सब पर कृपा समान।
भक्त सदा उर मैं बसैं, रसिक अनन्य सुजान ॥४४॥

गिरा श्रवन सुखदायिनी, संसै भंजक मूल।
वस्तु हिये दरसावनी, श्रवन अमिय के तूल ॥४५॥
दयासिंधु हिय अंग तें, उमगे वचन तुरंग।
मंद बिहसि श्री कृष्ण प्रभु, बोले सोइ प्रसंग ॥४६॥
एहो सनत्कुमार जू, प्रश्न कियो सुख चैन।
और नहीं कोउ जोग्य है, याकौ उत्तर दैन ॥४७॥
सुनिये सकल प्रकार अब, निश्चै एक निदान।
बरनौ ताकौं जानिये, सब की अवधि प्रमान ॥४८॥
विश्वास मो कों प्रथम, कहैं सकल श्रुति गाय।
आदि मध्य परिणाम में, सेवी सेष लखाय ॥४९॥
माया ईक्षण सक्ति मम, मो इच्छा बल पाय।
अमित कोटि ब्रह्मांड की, रचना करै बनाय ॥५०॥
भूत भविष्यत काल त्रय, सकल ठौर में एक।
गुण स्वभाव निज प्रकृति बस, मानै जीव अनेक ॥५१॥

मैं अपने निज रूप तैं, सब दिन एक समान।
जो जैसें मोहि मानिहिं, ता कों तथा प्रमान ॥५२॥
जथा तरनि निज ठौर तें, व्यापक सब जग माहिं।
जहाँ किरन को परस है, तहां भानु दरसाहिं ॥५३॥
तैसे मैं निज लोक में, विहरौं नित्य बिहार।
व्यापक सत्ता सकल जग, महिमा इहै अपार ॥५४॥

लोक भेद बहु भांति के, मैं थापे लखि हेत।
भरत खंड बसि जीव करि, यथा कर्म फल लेत ॥५५॥
और लोक ब्रह्मांड के, भीतर ही सब जान।
रमारमन जो वास मम, सो वैकुंठ बखान ॥५६॥
ऊपर सों ब्रह्मांड के, जोजन कोटि पचास।
दिव्य अलौकिक विमल वर, लक्ष्मीकांत निवास ॥५७॥
भरत खंड महि जीव जे, भजै भक्ति के हेत।
तिन्है चतुरधा जथाविधि, नारायन फल देत ॥५८॥

अंसी अंस कला विभू, ज्यों अवतार अलेख।
अवतारी पर भिन्न है, सो ए लोक विलेख ॥५९॥
जा तें सब अवतार ए, होत लीन पुनि जाय।
सो अवतारी जानिये, नित्य विहारी गाय ॥६०॥
जो ब्रह्मा कौ बरस है, सो शंकर पल चारि।
महादेव वय वरष जो, सो पल विष्नु निहारि ॥६१॥
उदै अस्त जो विष्नु कौं, प्रति ब्रह्मांड समान।
नित्य विहारी लाल सो, पलक विलास प्रमान ॥६२॥
ज्यौं अवतारी लोक त्यौं, सदन धनी के हाथ।
परम धाम यातें कहैं, सब धामन पर माथ ॥६३॥
जहां एक रस है सदा, नित्यानंद विहार।
तहां गयें पुनि है नहीं, आवागमन विकार ॥६४॥
सनत्कुमार न सुगम है, तासु जानिबौ मीत।
जानै तौ पुनि है नहीं, माया संसृति भीत ॥६५॥
लव निमेष जो मन लगै, इन बातन के मांहि।
परम धाम पावै सही, गर्भवास मिटि जाँहि ॥६६॥

जो महिमा वरनन करौ, मेरौ चित्त लुभाय।
वै लीला मन भावनी, कहै ग्रंथ अधिकाय ॥६७॥
बोले सनत्कुमार तब, महाराज गुरु पाय।
मंदभाग्य अति जानियै, जो संसै नहि जाय ॥६८॥
लघु दीरघ आचरन जो, आपु करौ मन लाय।
केवल जीव उधार हित, और न हेतु लखाय ॥६९॥
कहिये मोहि बुझाय अब, कौन लोक किहि ठाम।
नित्य बिहारी रूप को, लीला जे अभिराम ॥७०॥
जैसें हमरी होय गति, तहाँ जाइबे जोग्य।
सो साधन वरनन करौं, सब विधि परम मनोज्ञ ॥७१॥
सनत्कुमार वचन ए, सुनि पायौ अतिचैन।
बोले हंसगुपाल श्री, निज भक्तन सुखदैन ॥७२॥
या प्रसंग मैं अब सुनो, पुराचीन इतिहास।
जेहि जाने ते होत है, सब विधि संसै नास ॥७३॥
ईश्वर इच्छा तें जगत, सब दिन अैसें होय।
काल नेम ता कौ नही, कहै अंग लै कोय ॥७४॥
एक समै यह जानियें, महाप्रलय के अंत।
जग उपजावन की करी, इच्छा श्री भगवंत ॥७५॥
प्रथम नासिका स्वास तें, प्रगटे वेद सुजान।
सकल जगत मरजाद हित, धर्म अधर्म प्रमान ॥७६॥
जग कारज कारन कोउ, ते जिमि जाने जांहि।
तीनि कल्प की रीति जो, कछू कही तिन मांहि ॥७७॥
ब्रह्म कल्प औ पाद्य पुनि, स्वेत वराह पवित्र।
कल्प कल्प प्रति व्यास हैं, किये पुरान विचित्र ॥७८॥
पद्मकल्प भागवत में, नाभि कमल अजसृष्ट।
कह्यो वराह पुरानमै, स्वेत वराह विसृष्ट ॥७९॥
ब्रह्मवैवर्त पुरान को, ब्रह्मखंड सुभ जानि।
ब्रह्मकल्प की रीति जो, तामें कही बखानि ॥८०॥
ब्रह्मकल्प की रीति अब, स्वल्प सुनौ मन ल्याय।
ज्यों संसै नासै, सकल, जीव परम पद जाय ॥८१॥

परब्रह्म श्रीकृष्ण तन, ब्रह्म प्रतिष्ठा सोय।
अमृत अव्यय धर्म दृढ़, सुख एकांतिक होय ॥८२॥
कृष्नब्रह्म निज देह तें, सकल सृष्टि निरमाय।
वामा वाहन लोक वर, सब कह दिये बनाय ॥८३॥
ब्रह्मा विष्नु महेस औ, लोकपाल भूखंड।
स्वर्ग मृत्यु पाताल करि, थापी रीति अखंड ॥८४॥
जथा जहाँ जो चाहिये, जड़ चेतन व्यवहार।
तथा तहाँ सब कर दिये, जिन्हकें शक्ति अपार ॥८५॥
वेदाधीन बताय कै, सब के धर्म दृढ़ाय।
जो जैसी करनी करै, सो तैसे फल पाय ॥८६॥
कला अंस विभु रूप ते, आप बसे बहु ठौर।
जहाँ तहाँ निश्चै लहैं, जाकी जैसी दौर ॥८७॥
रचना श्रीवैकुंठ की, करी विचित्र अनूप।
रमारमन ह्वै कृष्न प्रभु, बसैं तहाँ अनुरूप ॥८८॥
मुक्ति मना हेत जे, भजन करै मन लाय।
तिनि कह जथा विधान ते, देहि मुक्ति सुखदाय ॥८९॥
लघु दीरघ जो जगत में, ईश्वर ताको काम।
सो नारायन करत सब, सदा लोक अभिराम ॥९०॥
जो निज सुख चाहत हियें, कहैं सकामी सोय।
स्वामी सुखतें सुख लहै, दास नाम सो होय ॥९१॥
रूप माधुरी छवि छटा, जिनकें जीवन प्रान।
पल पल सुख वांछत रहै, रसिक अनन्य सुजान ॥९२॥
सेवा आठौ जाम की, करै भरैं सुख पूर।
चोप चाह छिन छिन नई, जानत सेवा मूर ॥९३॥
ऐसे बहुत न होत हैं, प्रेम सिंधु गंभीर।
नित्य विहारी लोक ते, पावत भाव सरीर ॥९४॥
परब्रह्म श्रीकृष्न प्रभु, ऐसें सब निबटाय।
काम न राख्यौ एक हू, जाते चित्त बढ़ाय ॥९५॥
तब मन मै इच्छा करी, कीजै रास विहार।
नैन मूंदि पल एक हिय, कीन्हौं तासु विचार ॥९६॥

दोय रूप ता छिन प्रभू, रहैं परस्पर देखि।
जुगलबिहारी नाम यह, अचल अनादि विलेखि ॥९७॥
गौर माधुरी एक तन, कृष्न माधुरी एक।
भिन्न भिन्न ते कहत हैं, जिन के नाहिं विवेक ॥९८॥
तब प्यारे कर जोरि हंसि, कही सुनौ जु बैन।
रास ईश्वरी नाम तुम, करौ रास सुख चैन ॥९९॥
तब प्यारी निज अंग तें, प्रगट करी बहु वाम।
ललितादिक ए अष्टवर, अमित अंगजा नाम ॥१००॥
जोरि पानि अभिमुख खरीं, सकल सखी बहुवृन्द।
जुगलविहारी तन प्रभा, निरखैं मुख सुखकन्द ॥१०१॥
आज्ञा श्रीस्यामा करी, मंडल रचौ बनाय।
करैं रास हम आय तहँ, सकल भाँति सुख छाय ॥१०२॥
सकल सक्ति पूरी सखी, गिनती किमि कहि जाय।
रचना लोक समस्त की, करी अधिक मन लाय ॥१०३॥
परम धाम गोलोक है, नाम विदित श्रुति गाय।
रूप न कहते बनि परैं, सिन्धु न सीप समाय ॥१०४॥
ऊपर या ब्रह्मांड तें, जोजन कोटि पचास।
प्रथम कह्यौ वैकुंठ जो, लोक रमापति वास ॥१०५॥
ता ऊपर सों कोटि है, जोजन तासु प्रमान।
परम धाम याते कहैं, जापर और न थान ॥१०६॥
सप्तावरन कहैं तहाँ, वृन्दाबन मधि लेख।
बीच रास मंडल गनौ, नित्य विहार विसेष ॥१०७॥
राधाकृष्न सरूप द्वय, जुगल विहारी नित्य।
बनैं मिटैं ब्रह्मांड बहु, रास न पावै नित्य ॥१०८॥
सनत्कुमार गनो सोई, कारन परम निदान।
तासु जानि वो ज्ञान है, और सकल अज्ञान ॥१०९॥
जुगल विहारी रूप तें, अनत कहूँ नहि जाहि।
नित्य विहार बन्यौ रहै, श्री वृन्दावन माहि ॥११०॥
पावै हिय धरि भाव तें, सेवा करि भरि प्रेम।
यथा भाव पद सो लहै, इहै सकल विधि नेम ॥१११॥

मंत्र एक हम सौं गहौ, जपो जुगल वर नाम।
राधा कृष्ण सरूप मैं, कीजै मन विश्राम ॥११२॥
भाव सिद्ध जब होय गौ, तब देखो निज नैन।
स्वल्प रीति सौं हम कह्यौ, जो पूछ्यौ पद ऐन ॥११३॥
मथुरा मंडल निकट है, गोपेश्वर कौ वास।
इन्ह बातन कौ अधिक सुख, ह्वै है तिनके पास ॥११४॥
रसिक संग सुख लीजिये, कीजै विधि विस्तार।
भक्त सदा प्रिय कृष्ण कैं, संमत यह श्रुति सार ॥११५॥

सोरठा—हंस रूप गोपाल, विदा भये उपदेश करि।
सब ही नायो भाल, वंदन ता दिशि तन कियौ ॥ १ ॥
सनकादिक सुख कंद फिरत फिरत आये तहाँ।
गोपेश्वर छवि वृन्द, जिहि आश्रम हित राजहीं ॥ २ ॥
मिले परस्पर जानि, भाव प्रेम दृढ़ इष्टता।
भई कथा रस खानि, जुगल रूप सेवा सुथल ॥ ३ ॥
गावौं सोइ बखानि, जथा बुद्धि मम गहि सकी।
छमिहैं मोरि अयानि, सज्जन रसिक सुजान हँसि ॥ ४ ॥
तिनके हँसि वे हेत, मैं हूँ करऊँ चौकि यौ।
दुर्लभ फल सो लेत, जाके बुद्धि विवेक वर ॥ ५ ॥
मंद अज्ञ को धर्म, अपनी रुचि कारज करै।
यातें मोहि न सर्म सुख सोई हिय होय जो ॥ ६ ॥
गोपेश्वर संवाद, सनकादिक मिल जो भयो।
सुनिये भूरि अल्हाद, ए मन सुख रस भोजियो ॥ ७ ॥
परम धाम कौ रूप, वृन्दावन गोलोक ब्रज।
सेवा जुगल अनूप, नित्य विहार सकल सुनो ॥ ८ ॥
रूप अनूप अमाय, वृन्दावन पर धाम कौ।
कृष्न दास श्रुति गाय, कृपा किसोरी की मिलै ॥ ९ ॥
इत उत वेद न मान, जहाँ प्रभु तहाँ लोक सो।
भक्ति दृष्टि परिमान, अजौं सनातन पेखिये ॥१०॥
जो व्यापक सब ठौर, एक देस ताकौं कहाँ।
ब्रज वृन्दाबन और, धेनु लोक वे को कहै ॥११॥

ज्यौं हरि त्यौं तिन लोक, पूरित और न हो वहीं।
जिन्है अविद्या ओक, ते चाहौ तैसें कहौं ॥१२॥

कुंडलियाँ—परमधाम वृन्दाविपिन विहरैं नित्य विहार।
मदनमोहन राधा सदा सहचरि संग अपार॥
सहचरि संग अपार पार किमि कहि को पावैं।
हरि लीला कौ अन्त संत मन मैं नहि ल्यावैं॥
श्रीललिता हिय वर्म ह्वै धरैं जथा जो धर्म।
जुगल रूप सेवा सुथल कहौ सुमरि पद पर्म॥ १॥
श्रीराधा श्रीहस्त मैं गहैं जलज मुद हेतु।
ताहीको प्रतिबिंब अपर तैसो पूरन गुन सेतु॥
ता ऊपर वेदी विमल हाटक योजन पाँच।
और भूमि विस्तार जो पत्र भेद सो साँच॥
ज्यौं कुलाल के चक्र कों दारु दंड पर धृ।
त्यौं वृन्दावन कमल गत अमित अंड की श्री॥ २॥

गो इंद्री समुदाय ब्रज तन कहि लोक प्रमान।
हृदय कमल सो कंज दृढ़ वृन्दावन हरि थान॥
वृन्दावन हरि थान अमित ब्रह्मांडन व्यापी।
दंपति चरन सरोज विमुख पावैं नहि पापी॥
विरजा निरमल नाम लै जम नातौ भय गो।
निश्चल जब हो होय तूं जब यह जानैं गो॥ ३॥

छप्पै—वृन्दावन ब्रज भू इतै गोलोक सोई है।
नाम ठाम गिरि ग्राम सरित नहिं और कोई है॥
निश्चै श्रुति परिमान जानि जिय वरनन करिये।
श्री ललिता मति देहि जथा पथ सो अनुसरिये।
दंपति सुखद निवास थल रचना किमि कहि जाय।
देव दनुज मुनि वृन्द वर वेद गिरा संकाय॥ ४॥

चिंतामनि कह उपल कहत नहि सोभा पावै।
मोरे मुख यह बात अमल नग पीत रिलावै॥
कहि आये सब कोय जथा हरि जाहि जनाई।
उतकंठित ह्वै चित्त तथा मैं लाज बहाई॥

अति साहस बिनती करौं छमा भरौ सुनि एह।
संत सहायक मंद के निश्चै गत संदेह॥४॥
मैं अपने मन सों कहौं सुनौं मीत करि चेत।
सेवा धाम सरूप गुन श्री ललिता कहि देत॥
विरजा सरित सरूप दिव्य ब्रज मंडल घेरैं।
सकल कांचनी भूमि चहूँ दिसि श्री बन केरैं॥
ताकौ जथा विभाग दिसा मैं जो जैसें हैं।
राधाकृष्ण अनन्य भक्त आलय तैसे हैं॥५॥

नील अरुण मनि स्वेत पीत रंग हरित कहावैं।
नाना विधि की जाति लगे नग सब सुहावैं॥
चौहट बीथी घाट कूप वापी सर जो हैं।
बन उपबन आराम वाटिका कुसुमित सोहैं॥
फूलि रहे जलजात भाँति व्याप्यों सुभरंगा।
कूंजै द्विजगन सब्द बिमल गूंजै मृदु भृङ्गा॥६॥

द्वार द्वार घट दीप खंभ कदली के भ्राजैं।
तोरन बंदनवार पताका ध्वजा विराजैं॥
अगर धूप के धूम घटा नभ मंडल छाई।
कूकैं केकी नाद मानि अभ्रावलि आई॥
सौंज अलौकिक सदन वदन काके कहि जाई।
राधाकृष्ण प्रसाद भाग्य पूरे निज पाई॥७॥

श्री महारानी भक्ति एक वर भाव सुपंचा।
दास्य सांति वात्सल्य सखा नर ह्वै जिन संचा॥
भाव नृपति शृंगार कठिन राधा आधीना।
तिनकी कृपा कटाक्ष पाय सहचरि अंग चीहा॥
अप अपने अधिकार वल वसै तहाँ ते लोग।
अप्राकृत सब वस्तु को करै अखंडित भोग॥८॥
बरसानें वृषभान राज कीरति पटरानी।
सुख संपति अति अवधि वेद महिमा नहि जानी॥
नंदराय को वास नाम नंदो सुर गावैं।
महरि जसोदा प्रेम नेम श्रुति पार न पावैं॥

गोवरधन गिरिराज साज निति हरि क्रीडा को।
श्रीराधा शुभ कुंड रूप को जानै ताकौ ॥९॥
रावल गोकुल ठान जुगल श्री जन्म सुहाए।
सिसु लीला वर खेल सनातन होंहिं अमाए॥
नदी सरोवर कूप रास मंडल बहु सोहैं।
वन उपवन चौबीस नित्य क्रीडा मन मोहैं॥
पुर पत्तन व्रज ग्राम खेट खरवट औ वाटी।
कूट अपर रमनीय घोष संकीरन घाटी ॥१०॥
मान सरोवर मान प्रद नीर केलि के हेतु।
जो सब थल वरनन करौं वाटैं ग्रंथ असेतु॥
नित्य बिहारी लाल की लीला सब दिन होय।
हरि महिमा तन हेरि बुध संसै करैं न कोय॥
विरजा तट ते लीजिये श्रीवन वेदी तीर।
मध्य चतुर आवरन के वसैं भक्त मतिधीर ॥११॥
सप्तावरन वखानिये व्रजमंडल गोलोक।
प्यारि कहे तीनों सुनो जानत होय विसोक॥
प्रथम कही जो वेदिका योजन पंच प्रमान।
वृंदावन सो जानियें ताहि सुनो दै कान॥
जथा कमल के वीच पीत छत्राकृति देखो।
तैसें ही श्री विपिन अपर दल लोक विशेखो ॥१२॥

दोहा—वृंदावन गोलोक के, मध्य कहैं सब कोय।
सो तीनो आवरन ए, सुनैं न संसै होय ॥१॥

छप्पय—जमुना परिखा कूल वहै सब रितु सुखदाई।
विकसित मनिमय कंज वरन वहु अलि धुनि छाई॥
विहरैं जल के जंतु सकल पंछी रव तानैं।
प्रतीछंद की संक मानि जियवा दै ठानैं॥
शब्द जहाँ तहाँ जो उठै राधा कृष्ण बखान।
जुगल रूप रस मत्त नित जिन्हें एक सो ज्ञान ॥१॥
हीरक मनि के घाट भूमि तट अरुण सुहाई।
रचना अमित प्रकार जात कापै सब गाई॥

कल्प वृक्ष की पांति लता वेली बहु जाती।
मनिमय जिन के अंग फूल फल डारी पाती॥
आगें चलि कैं भीत एक मनि इंद्र नील की।
सुघटित विविध गवाछ रीति प्राकार सील की ॥२॥
चहु दिसि चारयो द्वार बृहत वानिक अतिप्यारी।
विदिसि हु अधिक वनाव स्वल्प बहु ठौर दुवारी॥
अभ्यंतर की भूमि पीत मनि चित्रित सोहै।
तापै बने अनेक हर्म्य लखि बुद्धि विमोहै॥
अमल अमोल अमाय रतन बहुधाम सुहावै।
वापी कूप तडाक वाक वन चित्त लुभावैं ॥३॥
या मंडल मैं मुख्य नीलमनि औ तालारैं।
मुक्तादाम वितान तने भीतर गलियारैं॥
उच्च सिखरि बहु कलस प्रभा ससि भान लजावैं।
गृह संपति कौ रूप कहै नहि पारै पावैं॥
नाम लेत उपजैं घने सुभ मंगल कल्यान।
सोभा सहचरि वास की कहूं कहाँ मम ज्ञान ॥४॥
मंडल भेद अलेख लेख ताको नहि पावैं।
परिचारिका अनंत कोटि कोटिन जहँ छावैं॥
जो इनकी कछु रीति अंग लै वरनन करिये।
मिलै न क्यौं हूँ अंत जनम बहु विधि के धरिये॥
अष्ट विवर्जित और सब तिनको इहां निवास।
सेवा बल अधिकार गुन प्रभुता अधिक विलास ॥५॥

दोहा—सुमिरे मंडल षष्ट कें कष्ट मिटै निरधार।
आनद उदधि अपार को किमि कहि पावै पार ॥६॥

छप्पै—सेवा कौ अधिकार मुख्य ललितादिक हाथैं।
अपर सहचरी वृंद कहे ते इन कें साथैं॥
यह मंडल जो सष्ट वास तिनको अभिरामा।
वेद न पावैं भेद रूप लछन गुन नामा॥
अकथ अनूप अपार वस्तु मन बुद्धि न धीजै॥
कीयें निरूपन तासु आसु जग हासी लीजै ॥६॥

मन मोदक जो खाइ ताहि बुधिवंत न जानो।
कहों आपनें चित्त लोक उपदेस न मानो॥
फनीभूत है भी व बात ऐसी चलि आई।
यातें गत संदेह होय मैं प्रीति बढ़ाई॥
कीन्हे विविध विरोध श्याम के धाम हि पावैं।
कीजैं अचरज कौन लहैं जे नेह लगावैं॥७॥

या मंडल मैं अष्ट अष्टदिसि कुंज विराजैं।
एक एक कौ रूप कहत सब की मति लाजैं॥
दछिन है जो कुंज तहाँ श्रीललिता रहंई।
जैसे लागे रतन जतन तिनको अस कहँई॥
कीरति उज्जल होय ललित सोभा कहि गाई।
महिमा वृधि वखान नालिमा नभकी आई॥८॥

पीत जहाँ परतीत हरी नित चाह कहावैं।
नाना विधि के रंग ताहि अभिलाषा गावैं॥
इन धारी मनि देह अष्टकुंजन के काजैं।
तिनको भयो जराव षष्ट मंडल अति भ्राजै॥
मुख्य इहाँ मनि पीत प्रिया की अंग लखावै।
और रंग ता संग जहाँ जस शोभा पावै॥९॥

प्रथम भूमिका पीत लहरि तापै रंग नाना।
पारिजात की पांति अंगमनि चित्र वखाना॥
लता औषधो गुल्म रूप अतिसै तापाई।
भीति जाल और द्वार द्वारि पहलें जस गाई॥
अद्भुत इहाँ बनाव देखिबह मन तें जाई।
अधिक एक तें एक पेखि चित रहत लुभाई॥१०॥

अभ्यंतर जो भूमि जरी चितामनि जामैं।
कुंज बृहत् विस्तार कही सो लागी तामैं॥
बहुत पीत मनि काम और संग सोहैं ताके।
खंभा भीति लदाव चौक अनगनती जाके॥
झालरि मनि मय रंग अमित बहु तने बिताना।
पंच वेदिका हम्यं सिखरि कलसा जस थाना॥११॥

तोरन बंदनवार पताका ध्वज फहराई।
मंगलमय सब दिव्य ठौर बहु धरी सोहाई॥
मध्य चौक मै एक वृक्ष वृंदा को राजै।
चहूँ ओर जल तंत्र रासमंडल वर भ्राजै॥
बन उपवन आराम सर सुभग वापिका।
सौरभ कुसमित कंज मंजु अलि द्विज अलापिका॥१२॥

अष्टजाम सेवा सकल चित्रित हैं बहु ठौर।
नैन बैन श्रवननहि यें आनै कछू न और॥
सेवा कीजै सौं ज सखी मिलि ताहि सवारैं।
दम्पति पावै चैन ऐंन सों जतन विचारैं॥
जाकी जैसी रीति कही ललितादिक जैसैं।
नेम प्रेम दृढ़चित्त करै ताही कौ तैसैं॥१३॥

चंदन भांति अनेक घसें कोउ गूँथैं फूला।
भूषन विविधि प्रकार कोऊ पटरितु अनुकूला॥
कोऊ बीरी चारु नेह की पूरी सांची।
लागीं सखी अपार पाक साला विधि राची॥
अपर नीर की रीति अपर अंजन चित दीने।
कोऊ मुकुर सवार अतर के भेद प्रवीने॥१४॥
जे जे लीला ठाम सकल इन कुंजन माँहीं।
वैभव अति विस्तार रूप कैसैं कहि जाँहीं॥
दंपति सेवा सों ज कोश ए मंदिर जानों।
नित्यविहारिनि कृपो अंग ललितादिक मानों॥
जुगल माधुरी मत्त नित सेवा ही आधार।
भवनमान को कहि लहै चीटी सिंधु अपार॥१५॥

सोरठा—सेवा अंग अनेक अमित कोटि सहचरि लगीं।
जिनकें एक विवेक सेवा सार अपार सुख॥१॥
या मंडल को रूप, लोमसतनु धरि धरि कहै।
तोऊ अमित अनूप, मति अनुसारै जो लहै॥२॥

दोहा—मंडल सप्त बखानियें, श्रीनिवास कहि सोय।
ताहि सुनों मन थीर करि, ज्यौं सेवा रुचि होय॥१॥

लाज लगै बहु भाँति जिय कहै बिना नहि तीस।
अपनी रुचि प्यारी सबै गनै न काहू दोस ॥२॥
अमित अंड भई सुमति तिय, रोम न गिरा बसाय।
नित्य बिहारिनि धाम की, छटा न पावै गाय ॥३॥

कवित्त– बातैं तौ अलेख लेख कीन्हे अविवेक होत,
गोत खात बुद्धि जे कहावैं जग मौलि हैं।
बेद बिधि शंभु शेष गिरा हूँ अशेष मुनि,
अंत ना लहत क्यों हूँ सबै कवि औलि हैं।
महिमा विस्तार भार पारावार अनपार,
जीह द्वार ल्याय ताहि कैसे कौन तौलिहैं।
मोनताई नेम आई गाई मनभाई तौऊ,
तृष हि मिटाइ सिंधु परसि भलौलि हैं ॥१॥
कौन काज लाज ऐसी करै जो अकाज अहो,
बेर बेर नर देह कहो कहाँ पाइयै।
दुर्लभ समाज मिल्यौ सकल सिद्धांत जानि,
लीला गुन नाम धाम रूप सेवा गाइयै।
बानी की सयानी सबै पानी मैं बहाय दीजै,
जानी सो न रीति जासों दंपति रसाइयै।
जैसी जैसी गही जिन लही तैंसी नैननहुँ,
धन्य धन्य राधाकृष्ण ईशता गनाइयै ॥२॥
एहो मन मीत नीति कान दै सुनौ ऐसी,
मंडल श्री सप्तसौनि कुञ्ज कहि गावैंहीं।
दंपति विलास परम धाम ताहि जानों ऐसें,
भक्ति नौधा अंग नवरत्न ए सुहावैंहीं।
सेवा भनै भक्ति रूप सेवा तन धारि करैं,
जेती कला सेवा तेती भक्ति की गनावहीं।
प्रथम प्रबंध मनि श्रवन सुहाई भूमि,
लागे नग रंग चित्र देखि सुख छावैं ही ॥३॥
ज्ञान ही कुंदब वर गौर स्याम वृंदा दोऊ,
तीन पांति चहूं ओर मंडल कै बनी हैं ॥

लता बेली औषधी ओ गुल्म जाति नाना भाँति,
फून फल पात डारी सोभा सौं सनी हैं।
सकल जलासै साधु हृदै पुरि रहे नीर,
फूलैं सदा कंज व्यक्ति जात नहीं गनी हैं।
हंस मोर त्यौं चकोर पंख वारे वृन्द भौंर,
देहधारी भक्ति मानो साँची कीरतनी हैं ॥४॥
कहत प्राकार भीति जालहु गवाक्ष रंध्र,
द्वार उपद्वार क्रम पहिलैं को जानियें।
कीजिये बर ठान कहा भक्ति अंग सुमिरें जो,
बानी कोन धर्म एक चितै परि मानियें।
अंतर की भूमि भक्ति पाद सेवा मनि लागौं,
दंपति-पद-कंज श्री पराग सन्मानियें।
अष्टजाम है विहार द्वादस सत कुञ्ज मै,
विभाग ताको सुनो सो ऐसे जिय आनियें ॥५॥
कुंज तौ अनन्त अन्त कहि कौन पावै तौऊ,
स्वल्पता की रीति कछु ऐसें चित्त दीजियै।
अष्टदिस अष्टसत भिन्न भिन्न मंडल है,
षटकोण जंत्र एक और परैं लीजियै।
कोनें कोन मंडल सो कुञ्ज हैं पचास तामैं,
एक एक मंडल की गनती यौं कीजियै।
रोप रहीं सत कुंज ताको मध्य मंडल है,
परम निकुंज धाम जानि मन भीजियै ॥६॥
ताहू को विभाग सुनौं चारयौं दिसा चारि खंड,
पंच पंचविंशति के मंडल ए जानियें।
मध्य जो विसाल भूमि कहैं रास मंडल सों,
जैसे याको रूप तैसौ आगें त्यौं बखानियें।
आठ सुनों चारिन में एक कों निरूपैं अङ्ग,
याही कैसी रीति भेद चित्त उन मानियें।
कौन पावै बुद्धि ऐसी जैसी विधि कहिवे हैं,
एक टूक सोने जथा मेरु पहिचानियें ॥७॥

एक एक मंडल में चारि द्वार उपद्वार,
महा राजपथ वीथी चौहट विसेखिये।
भीतर को भाव ऐसो अष्टदिसा तीनि पांति,
गनिये चौबीस तथा एक मध्य लेखिये।
या को नाम सभा कुंज आगन विस्तार कहैं,
ताके बीच वेदी एक विमल परेखिये।
पुहुँमि कछु छोड़ि छोड़ि जागी सोपान सप्त,
ऊपर समान भूमि चित्र मनि पेखिये ॥८॥

जहाँ जैसे रतन लागे सोभा गंभीर पावै।
तहाँ तैसी रीति सौं जराव जगमगे हैं।
एक जाति हरी मनि खंभ तो सहस्र चित्र,
उत्तर औ दछिन कौ भाग पाय लगे हैं।
पच्छिम हीं प्राची दिसा आठ सै विचित्र वेश,
चारयौं ओर ऐसें ही लदाव मौलि जगे हैं।
भीतर संकोच लै लै दो ययाति और,
जानो उच्चताई नव खंड पेखि मन पगे हैं ॥९॥
खंड खंड हूँ वितान चहूँ ओर छाय रहे,
मुक्तामनि दाम झूमें छरी मनि हरी हैं।
ठौर ठौर सिंघासन सेज नवरत्न मई,
कोमलाइ अवधि तें विछी देखि परी हैं।
वेदी के नीचे उतरि आँगन जो विपुल है,
तहाँ रासमंडल सो सबै मनि जरी है।
आस पास फूलन की क्यारी न्यारी न्यारी लसैं,
जलजंत्र समैं पाय धार अनुसरी हैं ॥१०॥
कही तीनि पांति और एक एक कुंजन मैं,
सात सात चौक बंद जरित जराव हैं।
चहुँ ओर खंभन की रचना लदाव लहे,
सप्तखंड ऊचे उदै कलस प्रभाव हैं।
सेज सिंहासन चौकी सबै साज चित्त मोहैं,
भूषन सुधारि पट फूल गंध चाव हैं।

खान पान वस्तु पात्र धाम धाम बैठि रचैं,
कोटि कोटि आली हिये प्रीति के भराव हैं ॥११॥
परम आमोद धूप धूपित विधूम उठे,
जालरंध्र गति पाय नभ दिसा छावही।
पारावत शब्द गरैं नृत्य मोर कल सोर,
सरो, सुका पंछी और नाम जस गावहीं।
तने हैं वितान कुंज भीतर औ गली मांहि,
तैसे ही बिछौना भूमि रंग बहुतावहीं।
आवरन सोभा द्वार मंगलीक द्रव्य घट,
पूंगी तरु केरि खंभ मनि मै सुहावहीं ॥१२॥
बांधे हैं वंदनवार तोरन पताक ध्वजा,
दीपमाला ठौर ठौर सोभित अपार है।
जहाँ जाको परै काम लच्छ होत ताही ठाम,
नीकी भाँति जानी इन सेवा ही सार है।
भक्ति महारानी जू के अङ्गन नव वखान कीये,
तेई तौ वनाव वने इछा अनुसार है।
कैसी विधि कहै कौन मोहन हूं न सुख देत,
लेत जानि भावकु जे भाव यथाचार है ॥१३॥
अष्टदिसा अष्टव्रत आदि जे वखान करी,
तिनहूँ को भेद एक घेर बड़ी जानिये।
द्वार उपद्वारन की रीति ठौर ठौर कही,
भीतर के मंडल ते गने दस मानिये।
दसहु के दोय खंड पंच पंच कौ प्रमान,
चाप्यों चारि दिसा एक मध्य उन मानिये।
ताहु को विभाग अष्टदिसा अष्टकुंज कहैं,
मध्य एक सभा एक अनौकास ठानिये ॥१४॥
पटकोण जंत्र कह्यौ कोंण गत मंडल हू,
पंचासत कुंज एक मंडल विलास है।
ता कौ भेद पंच दिसा च्यारि एक मध्य लहैं,
ताहू मैं अष्टकुंज अष्ट दिसा वास है।

बीच सभा कुंज पंच शेष सो अनौंसर की,
　　द्वादस सत कुंज यौं गनती सुपास है।
स्वल्प अंग ठाम कौन नाम क्यौं हूँ लय सकैं,
　　कहै कौन भक्ति रूप नवधा प्रकास है ॥१५॥
कुंज कुंज अधिष्ठाता एक एक सखी मुख्य,
　　और संग लीन्हें जूथ वृंद हू अनेक हैं।
सेवा रूप रीति जानै सेवा ही सों प्रीति मानै,
　　सेवा ही अधार ज्ञान बुधि सेवा एक हैं।
सेवा हिये माहि धरैं सेवा मन चाव भरैं;
　　दंपति रिसाय मागैं सेवा लता सेक हैं।
सेवा सिंधु भार बूड़ैं सेवा सौख्य रत्न ढूढैं,
　　मीन कैसी चाह सेवा नीर जीव टेक हैं ॥१६॥
परम निकुंज सत कुंज च्यारि भाग भये,
　　मध्य जो विसाल भूमि आदि कहि आये हैं।
ताहू को सरूप सुनो महारास मंडल सहैं,
　　नित्य ही विहार जहाँ होत मन भाए हैं।
चहुं ओर वलै भूत जमुना प्रवाह स्वल्प,
　　दोऊ कूल नाना मणि घाट बनि आए हैं।
सदा एक रस नीर कोर के प्रमान हैं,
　　रंग रंग की तरंग माल जाल छाये हैं ॥१७॥
आनंद के सिंधु माहि क्रीडा जल जंतु करैं,
　　पंकज विकास नाना रंग मनि अङ्ग हैं।
सीतल सुगंधि लैकैं मंद गति वायु डोलैं
　　लोलैं पद्म खंड बोलैं कलनाद भृंग हैं।
जल के निसेवीगन पच्छिन के तीर सोहैं,
　　मोहैं करैं केलि फिरैं दोय दोय संग हैं।
कछू भूमि छोडि गुल्म पांति मनि फूल पात,
　　गात लपटानी लता वेली नवरंग हैं ॥१८॥
आगें चलौ फूलन की क्यारी न्यारी न्यारी जाति,
　　रंग रंग भिन्न भिन्न शोभा सरसात है।

बीच बीच औदुंचन जलजंत्र नीर भरे,
　　मंडल आकार चहुँ ओर दरसात है।
धरा को विलास देखो जल माहि थल भान,
　　थल तहां पानी पेखि चित्त भरमात है।
रज को प्रसंग नाना मनिमई बालू बिछी,
　　कौतुक अपार और गने ना सिरात है ॥१९॥
मध्य रासमंडल की वेदी विमल विस्तार,
　　सप्त सोपान भूमि छोडि छोडि लागी हैं।
एक एक मुख्य रंग संग और रत्न लागे,
　　सात अंग न्यारी न्यारी रीति जगमागी हैं।
ऊपर जो वेदी ताहि कहै चंद्र मंडल सी,
　　कोटि कोटि सूर ससि पांति लाज पागी है।
भक्ति महारानी जू को हृदै जानौ आतमा सो,
　　दंपति त्रिवेदवे कों चित्त अनुरागी हैं ॥२०॥
[illegible] अनूप हियो उत्तम कहावत जो,
　　सोई मनि स्वेत होय प्रगट करायो है।
वेदी के प्रमाण एक रूप सित सिला लगी,
　　रचना प्रभेद नव रत्न वर भायो है॥
मध्य मैं सहस्र दल पद्म नगमई बन्यौ,
　　ताके बीच षोडस औ अष्ट पत्र छायो है।
छत्र के अकार पीत प्रीति की प्रतीति मानो,
　　जाके विना भयें कियें अन्यथा गनायो है ॥२१॥
[illegible] है बिछौना भांति भांति कहूँ फूलन के,
　　तैसो हि वितान चित्र नभ देस छायो है।
नवरंग रत्न जरी छरि चहुँओर खरी,
　　झालरि जराव मोती झुमक झुमायो है॥
हिय मैं अनन्य भाव ताहि सिंघासन करि,
　　अष्टपत्र कमल के ऊपर धरायो है।
भाव की बिछावना जे अस्तरन गेदुवा है,
　　[illegible] जो प्रभाव सोई छत्र लै घुमायो है ॥२२॥

अष्ट दिसा अष्टपत्र अष्टसखी वास लहै,
षोडस पै षोडस त्यौं सहचरी विलास हैं।
दूने दूने भाव लेकै मंडल अनेक ऐसें,
सत औ सहस्र अनगिनती प्रकास हैं॥
जेती सेवा सौंज तेती लौन्हे कर ठाढ़ी सबै,
एक एक हस्त ह्वै कैं जात अष्टपास हैं।
डीठि सिंघासन ओर चंद ज्यों चकोर दीन्हे,
मन अभिलाष जानि सेवा को हुलास हैं॥२३॥

मंडल के चहुँ ओर मंगलीक द्रव्य धरी,
हाटक सुहाये घट पूरे करि नीर हैं।
नाना भाँति मणिन की रचना दिखात जामैं,
पूंगीतरु केरि खंभ लसै तीर तीर हैं॥
फूलमनि माल जाल बीच बीच झूमि रहे,
तीन भाव लीन्हे तैसी डोलत समीर हैं।
परम आमोद धूप धूम दिसा छाय रहो,
कल गान पंछी करैं मत्तअलि भोर हैं॥२४॥

आदि जो बखान कीन्हों जमुना प्रवाह श्रेय,
अभ्यंतर मंडल सो तीन रूप गायो हैं।
सखी समुदाय वृंद जूथ है निवास एक,
दूजे अष्टकुंज सेवा सौंज कोस भायो है॥
द्वादस सत कुंज को निरूप कीजे तीजे त्यौं,
सबही के मध्य रासमंडल सुहायो है।
दुर्लभ प्रवेश कीयें ज्ञान जोग बिना कृपा,
प्यारी अंग नीलांबर घटाटोप छायो है॥२५॥

अरिल्ल—मंडल सप्त बखान किये मेरी मति जैसी।
भाखै कौ करि नेम बात निश्चै सो तैसी॥
पुरुषारथ सब हीन देखि महिमा हरि ओरी।
एहां लेस न पावैं गाय सदा सारद सत कोरी॥१॥
चित्त न लहै प्रवेस ताहि कैसें को गावै।
ज्यों पिपीलिका वदन मेरु नहि कंद समावे॥

तीन काल श्रुति सार नीति सर्वोपरि ठानी। हरि हां
कीजै मन को बोध सकल बुध की असवानी॥२॥
अपने मन परतीति भये सब होंहि सुखारे।
प्यारि - अष्टदस - षटक विमल बानी पठिहारे॥
स्यौंम करैं सतकार नेक निज ओरी देखैं। वर हां
साधु सराहैं ताहि जासु मति कृष्ण विशेखैं॥३॥
चलैं राजपथ सबै राव औ रंक मंद गति।
पहुँचैं वे हठि जाय मंजिलि की अवधि अहै जति॥
विधि शंकर श्रुति शेष व्यास मुनिवर सुर नर जे। एहो
जिन जिन गाये कृष्ण भये भाजन जस बरते॥४॥

जुगलविहारी नित्य सुनो जे बात पुरानी।
कीजै अति अभिलाष जात सो कैसें जानी॥
ललिता सदा विहार अंग जा मुख्य प्रमानी। एहां
तिन पद रज धरि शीस कहैं कछु अंग बखानी॥५॥

छंद—गौर श्याम सरूप सागर अमिय पूर अखंडितं।
तत्सीकराणु प्रमाण आनंद अमित अंड विमंडितं॥
छवि अंग अंग तरंग उमगत शब्द बोलनि नेह की।
अंगजा अम्बुद हिये भरि करत वरषा मेह को॥१॥
तिन द्वार पसरैं जगत मैं जन रसिक उर सीपी परैं।
नाम जीवन मुक्त यातें सकल श्रुति निरनैं करैं॥
नर देह दुर्लभ जानि निश्चै संग तिनको कीजिये।
भक्ति प्रीति प्रतीति अपनी कृपा उन सों लीजिये॥२॥
नेम प्रेम विवेक श्रद्धा जतन डोरैं गांथियै।
धर धारि सो मनि गारुड़ी ह्वै मोह उरगै नाथियै॥
इह भांति दंपति सिंधु निज मन मोन करि रस पीजियै।
संग संग वियोग पावत प्राण परि हरि दीजियै॥३॥
जिते साधन विविध विधि के कष्ट धरि जिय साधियै।
ब्रह्मा शंकर देवपति पद असुर नर सुख लाधियै॥
नहि मिटत गर्भ निवास त्रास विमोह फांसी सों फसे।
रसिक जन की कृपा विनतिन लोक बसि पुनि पुनि खसे॥४॥

अब सुनौ नित्य विहार रूपक जो जथा जेहि भांति है।
मन कहौं वार अपार तो सौं अन्यथा नहिं शांति है॥
प्रिया प्रीतम अंग एकै द्विधा कांति बखानिये।
निज रूप ही ते प्रेम अतिसै लोकहुँ परिमानिये॥५॥
जुगल तन जो माधुरी सो ललित ललिता गांवहीं।
रसिक जन करि पान श्रवनन अवधि सुख की पावहीं॥
सखिन के सरवस्व श्यामा श्याम जिय आधार जो।
प्रथम तिनको रूप बरनैं पीय मुद वर सार सो॥६॥
थल कमल के पुष्प लै कछु एक ठौरी कीजिये।
हीरा कठोरा अंग सुछम झपि तापै दीजिये॥
वा समै जो दुति उदै सो भरि देखि नैनन भीजिये।
श्रीकिशोरी देह सुखमा जानि उर धरि लीजिये॥७॥
कंज लोचन, पद्म मुख कर, चरन कमल बतावहीं;
सुनत हीं दुख होत अति चित मोह बस ते गावहीं॥
मंडुक सेवित सर कुसर सो होय नामहु पंकजं।
कंटकादिक दोस अलिगन निसि न सेवित संकजं॥८॥
सब जगत जो आल्हादकारी शसि विमुख अति क्रूरहू।
नीर सोखि सुखाय नासत जानि सठ मत सूरहू॥
वंदनादि प्रकरण वर्जित दोष कितने पाइये।
श्रीप्रिया चरणादि सम कहि कहौं कैसे गाइये॥९॥
आनंद थल पर मोद सरवर नीर पूरित सुख सदा।
परिबीज रूप हुलास उपज्यौ पद्म पद्माकर मुदा॥
एहि रीति की उत्पत्ति जाकी ताहि सम जो कीजिये।
कांच चिंतामनि बराबरि कियें सो जस लीजिये॥१०॥
ए अंग अनुपम सर्व सुखप्रद इन कृपा तें जानियें।
रसिक जन के संग मिलि कैं रीति सो पहिचानियें॥
पूज्यता महिमा सुगरिमा वंदनादिक को भनै।
कहैं जे सुख लहैं तेऊ हियं हीं समुझे बनैं॥११॥
रोम प्रति ब्रह्मांड कोटिन बसत जाके नित्त हैं।
ब्रह्मांड प्रति जे ईस लोकप जाहि त्रास चकित्त हैं॥

दुरधर्ष दुरगम दुराराध्य परात्पट श्रीकृष्ण जो।
मानती के मान समयें चरन वंदत हेत सो॥१२॥
इन चरन की रज चाह दिन दिन करत छिन छिन चित्त मैं।
पाय यो सो अतिहि दुर्लभ भ्रमत जगपति कित्तमै॥
शील करुणासिंधु आरतबंधु दुखित सहाय हैं।
दृढ़ आस उरधरि कृष्नदास निवास लाड़िलि पाय हैं॥१३॥
श्रीलाड़िली श्रीवाम पद तल चिह्न एते देखिये।
पवि चक्र नीरजपत्र अंकुस ऊर्द्ध छत्र विलेखिये॥
ध्वजा गोपद अष्टकोण त्रिकोण जव षटकोण जे।
कल्पतरु तें आदि तेरह चिंतकन अति सोभते॥१४॥
चरन दच्छिन सुनहु लच्छन गदा संख पिनाक वर।
अमिय कलस अमीय तीनौ ऊर्द्ध रेखा जंबुफर॥
मीन स्यामल बिंदु रच नव चिह्न दच्छिन पायकै।
सुमिरि तेंई देहि निज पद तरैं भव निधि गायकैं॥१५॥
अरुन जावक रेख चहुँ दिसि अवधि सोभा की खची।
चित्र भेद विचित्र करि करि और रचना बहु रची॥
अंगुली दल चारु नख ससि छटा जड़ तम नासहीं।
सहचरी गण चित्त चातक पान करत हुलास हीं॥१६॥
पादपद्म अमोल गोल सुगुल्फ कहि कैसैं भनैं।
चरन भिन्न सुगंधि अष्टहु पत्र लेखत छवि तनैं॥
भक्त जन तन सहचरी मन रत्न भाष्यौ श्रुति तबैं।
श्रीकिशोरी चरन भूषन होय कैं सेवत सबैं॥१७॥
विछुवा पदपूरण पायल शृंखला नूपुर लगे।
वेद शाखा रिचा मिश्रित ताल स्वर बोलत पगे॥
ए चरन पद्म पराग सौरभ श्याम अलिमन भांवहीं।
ध्यान मंगल हेतु सुख को धन्य जिन्ह उर आवहीं॥१८॥
पल पल परमाणु लव को लेसहू जे ध्यावहीं।
सहचरी तन धारि निश्चै जुगल सेवा पावहीं॥
जुगल नित्य विहार सुख जो लेन कीजिय चाह है।
श्रीकिशोरी चरन रज बल एक यह निरवाह है॥१९॥

प्रीति की जो रीति हिय सो प्रगट ऊपर देखिये ।
परस्पर तन वर न अंतर सर्वथा रुचि लेखिये ॥
पुष्प अतसी रंग को पट घांघरो कटि देस हैं ।
वेलि बूटा विविध विधि के बनिक तासु विशेष हैं ॥२०॥

धेनु रोचन चंदनादिक पूर मृगमद केसरम् ।
सुगंध अमल अमोल औरौ सखीगण लीन्है करम् ॥
श्रीकिसोरी हृदय पिय को नाम कृष्ण विलेखितम् ।
अंग अंगन रंगदेवी अंगराग विलेपितम् ॥२१॥

कंचुकी ता रंग ही सो अंग रच्छा रीति की ।
काछनी कटि पर बंधी पचरंग धारी नीति की ॥
अनन्य सहचरि भक्तजन मन रत्न जो निरनै किये ।
रंग भेद अनेक तिनके प्रथक रुचि निज निज हिये ॥२२॥

कटि किंकणी गति जाल की सबरंग मनि तामैं लगीं ।
अपर भूषन स्वेत मनि मुक्ता अरुन कोरैं जगीं ॥
स्कंध दोऊ पहिरिये उपवीत जज्ञ जथा लहैं ।
वध्यका चौतनी भूषन नाम ताको सब कहैं ॥२३॥

हृदय पीठि उभै दिसा ता मध्य चौकी सुठि बनी ।
झूमका बहुरग मनि तेहि बीच लटकत छवि घनी ॥
कंठ मनि सौभाग्य सूचक दोय लर तिलरी भनैं ।
पंच सप्तक एक दस धुकधुकीलर लरहू गनैं ॥२४॥

गुल्फ लौं ऐसें लसैं ते एक एक न तै बड़ी ।
रंग रंग अनेक सोभित बीच बीच लटकैं लड़ी ॥
बनमाल परम रसाल अनुपम चरन परसत सुख भरी ।
का कहु सुखमा की अधिकता रूप सरिता गर परी ॥२५॥

भुज लता जुग जन अभैप्रद भेद बाजू के घने ।
दोय ओरी एक मध्यक बगल ताके द्वै बने ॥
कोहनी तें उतरि कै इक पद्य कहावई ।
और आगे हूँ पछेली रंग प्रथक जनावई ॥२६॥

चारु चूरी नग विचित्रित बलय पहुँची जुगमता ।
करपरण अंगुरीन मुद्रिका को भाव कहत असुगमता ॥

मेहदी की बनिक ललिता हाथ रचि कीन्ही घनी ।
श्री प्रिया जू देखि हँसि कहि आजु तौ नीकी बनी ॥२७॥

भाल परम विसाल पालक भाग्य सब जग की सही ।
सीस देश सुवेस केश विशेष अनुपमता कही ॥
सोभा अधिक पुनि अधिकतर औ अधिकतम तीनौ गनी ।
अग्रभाग तेई गूंथ कच रचि फूल मनि वेनी बनी ॥२८॥

सौंदर्यता जो वस्तु उद्घाटी उभै पाटी लसैं ।
सो उमगि अलकन द्वार ह्वै द्वय रूप की सरिता खसैं ॥
मध्य रेखा मांग की सिंदूर सो मन लाल है ।
तिलक रंग अनेक रचना पीय अटकन जाल है ॥२९॥

सहचरिन के हीय मैं जो छटा स्यामा की बसै ।
सब समिटि सो भई चन्द्रिका दीन्हैं सिरोपरि सो लसै ॥
बगल दोउ श्रवण ताईं किरिण-मंडल पांति हैं ।
चंपा कली आकार ताको ऊर्ध सोभित भाँति हैं ॥३०॥

अप्रभाव झुकाव लीन्हैं वंदिवे ना नाम है ।
मध्य के जे केस तिन पर जाल मनिगन काम है ॥
कान आगे मकर कुंडल किरण वंदी जर लगे ।
करणफूलहु श्रवण विवरन दुहुन मैं झूमक पगे ॥३१॥

झूमकन मैं लटक लोलक जटिल बहुविधि पेखिये ।
अलक आगे झलक तैसी कुंडली गत लेखिये ॥
सेनाधिपति वे नाम नौ श्रृंगार भूप चमू खरी ।
चंद्रिका हू मध्य जानौं विजै ध्वज ठाढ़ो करी ॥३२॥

मध्य साची भूप सोई विकट भृकुटी धनु लियें ।
नैन परम उदार दस रस रूप करि.आगे कियें ॥
झुकत झूमत अरत घूमत मत्त मंथर गति लहैं ।
श्रृंगार भूप अपार बल पूरन जुगल भट एक हैं ॥३३॥

मान मान गुमान जिय गुनि अपर धनु कुंडल कियौ ।
बेसरि छिगारें धरी नावक लटक लटकन सर दियौ ॥
नासिका पुट बाम सो नय दृच्छ बेसरि त्यौं जगी ।
कही उपमा ढूँढ़ि कोऊ मो हिये ऐसी लगी ॥३४॥

मंद हास्य कृपाण कैसी छटा छूटत छवि घनी।
चिबुक स्यामल बिंदु सौभग सिमिटि याही अंग तनी॥
विविधि भूषन सुमन नख सिख प्रभा देखत ही बनी।
माधुरी भर भार अनवधि सकल रस पूरी अनी॥३५॥
उत्तरीयक फब्यो पाछैं नील अंबर नाम है।
रूप सागर उमग पावन मानो वेला ठाम है॥
क्रीड़ा कमल कर पद्म लीन्हें मुकुर सनमुख देखहीं।
सहचरी गण पुष्प वरषत सफल जन्म विलेखहीं॥३६॥
या भाँति करि शृंगार स्यामा वर सिंघासन राज ही।
आपुही लखि रूप अपनो आपु ही जिय लाज ही॥
सहचरिन के वृंद बनि बनि आय मस्तक नाव हीं।
रागभेद प्रबंध सुरलै प्रिया जस अस गावहीं॥३७॥
रूप सागर छवि तरंगै अंग उगम अगाधुरी।
नैन भरि भरि देखि लीजै श्रीप्रिया तन माधुरी॥
आज लाज बिसारि जो कहुँ लाल देखन पावहीं।
अपार बल शृंगार नृप को पेखि धीर गवांवहीं॥३८॥
यह बात श्री ललिता गुनी मन सुनो री आलो सबै।
दोऊ सनमुख कीजियै सुख लीजियै अनवधि सबै॥
विचार ऐसो करो निज निज रूप द्वय द्वय धारियै।
एक लाड़िलि ढिग रहै तन एक पिय पैं सारियै॥३९॥
हुते तौ एकै सिंघासन मध्य अंतर पद करैं।
सहचरिन के संग बातन लगे सुनि कछु ना परैं॥
सब जूथ ललिता संग लीन्हैं आय पद वंदन किये।
स्वामिनो छवि रंग भीनी नैन बैनन सों हिये॥४०॥
दसा तिनकी जानि जिय पिय आपुही पूछन लगे।
लाड़िली जो अंग सोभा नित्य नूतन चित पगे॥
ललिते ललितभाषिनि कहो का हीय मैं अति सुख भरो।
मोहि तौ आधार सोई हस्त दै टेरौं खरो॥४१॥
धरि धीर अति कर जोरि ललिता विनै वानी चातुरी।
रूप की वृत्तांत भाख्यौ सुनत पिय भइ आतुरी॥

करौ वेगि उपाय ललिते ज्यौं लहैं सुख नैन ये।
तुम बिना नहि और कारन सत्य भाखौं बैन जे॥४२॥
ललिता कहैं महराज सुनिये अबै वह सुख लीजियै।
सकल भाँति सिंगार अपनौ रीझि हित सब कीजियै॥
हस्त गहि मृदु बोल बोले अहो ललिते ज्ञाननी।
आजु तौ निज संग लै कै देहु झाँकी भामिनी॥४३॥
सिंगार कीजे सौंज सहचरि सबै कर लीन्हे खरी।
इहै निज आधार जिनकैं सदा या आनद भरी॥
शृंगार करिवे हेत ललिता सीस नय बैठी लगें।
प्रथम तो भरि नैन पीवत रूप नखसिख सौं पगें॥४४॥
जो रूप ललिता हिये राख्यो भाखि कापैं जात है।
कृपा इनहीं की लहैं नहि और यामैं बात है॥
सौंदर्य्य महिमा कहत हारे पार काहू ना लह्यौ।
चित्त अपने बोध कारन यथामति सब ही कह्यौ॥४५॥
कहैं ललिता सुनौ आली स्याम तन श्री माधुरी।
जबै देखो नित्य नूतन रूप सिंधु अगाधुरी॥
जीह द्वारैं कहन हित जो कीजियै उनमान है।
देखियै नहि वस्तु ऐसी स्याम अंग समान है॥४६॥
कहैं बिन मन ना रहै तौ जुक्ति ऐसी कीजिये।
अतिसिका के पुष्प पर मनि स्वेत भाजन दीजिये॥
बहै जो वा समै सोभा नैन भरि सो लीजिये।
मूढ़ताई कहत हैं पै चित्त माहि पतीजिये॥४७॥
निज अंग उपमा दैन हित जिय माहि प्रभु इच्छा करी।
नैन मुख कर चरन तें सुचि कमल श्रेणी लखि परी॥
इच्छा जनित जे कंज तेऊ अंग देखत लाजई।
सकल संमत है इहै ए अंग अनुपम राजई॥४८॥
सकल सौभगता भरे जुग चरन सर्वाराध्य हैं।
अमित अंडन भक्त जैते होहि भजि निरुपाध्य हैं॥
धन्य जय जय शब्द कहि श्रीचरन ललिता कर लिये।
पाद तल सुभ चिह्न देखे अधिक सुख उपज्यौ हिये॥४९॥

पेखो सखी ए चिन्ह पिय के चरन अति नीके लगैं।
निहारि दृढ़ उर धारिये अनुराग प्रेमादिक जगैं॥
चरन दच्छिन सुभग लच्छन उर्द्ध रेखा पद्म है।
वज्र अंकुश छत्र जय ध्वज चक्र मंगल सद्म है॥५०॥

अष्टकोणक स्वस्ति चार्यौ पंच जंबूफलधरम्।
चिन्ह द्वादश चित्त उनके काम पूरक निधि परम्॥
लाल के श्रीवाम पद मैं चिन्ह एतै देखिये।
संख अम्बर धनुष गोपद अर्धचंद्र विलेखिये॥५१॥

त्रई कोणक तीन कूरम मीन बिंदु सुचारि हैं।
पाइहैं ते परम पद जे चरन चिह्न निहारिहैं॥
अंगुली दल चारु नख श्रेणी छटा ससि उर धरैं।
या हेतु तें जन ताप तम हरि सीत करि अमृत करैं॥५२॥

पाद पृष्ठ विलोकि आली लोक सुन्दरता लजैं।
अष्टगंध सुगंध सौरभ पत्र लेखित अति सजैं॥
अनन्य भक्तन के कहे मन रत्न पूरब गायकैं।
रंग भेद अनेक तिन मैं पृथक रुचि जिय पायकैं॥५३॥

कृपा की यह अवधि जानों भक्त मन भूषन किये।
आपने दृढ़ मानि कै पुनि करि प्रसादी तिन दिये॥
धन्य तेई मन अहो जे जुगल तन लागे रहैं।
इन बिना जिय और धरि जमराज पुर पागे रहैं॥५४॥

अंग अंगन तेई भूषन लागि अति सुख पावहीं।
जो जहाँ भरि प्रेम ललिता सुनहु जिमि पहिरावहीं॥
कहैं चुटुकी नाम जिनको अंगुरिन मैं देखिये।
पद परण श्रृंखल पैंजनी औ नूपुरादि विशेखिये॥५५॥
गोल गुल्फ कपोल रति के देखि फीके मानिये।
जानु जंघा ऊरु रंभा खंभ उलटे जानिये॥
गोलता औ सरलता हित कहत सब उनमानिकैं।
जे अंग अनुपम दियं उपमा लाज होत बखानिकैं॥५६॥

प्रिया तन दुति चरन अंबर पीत पट कटि देखिये।
प्रीति की अति अवधि ऐसी देखतें सुख लेखिये॥

नाभि अति गंभीर त्रिवली उदर डोलत स्वास तें।
वच्छ परम विसाल उमगत प्रिया नेह विलासतें॥५७॥
अंगुली परिमान द्वादश पीत रेखा थान है।
वच्छ बांई ओर कहि श्रीवत्स चिन्ह बखान है॥
तन फब्यौ चंदन बेलि बूटा चित्र रंग विनीति सौं।
तापैं धर्यौ पटपीत सूच्छम अंगरछा रीति सौं॥५८॥
काछनी पचरङ्ग तापै किंकिनी मनि जाल है।
रङ्ग भेद अनेक मनि गन मुख्य हरित औ लाल है॥
मुरलिका ता मध्य खोंसी बाम ओरी प्रेम सौं।
झूमका जामैं लगे सुभ हेठ ऊपर नेम सौं॥५९॥
वध्यका के मध्य चौकी बीच झूमक हाल हैं।
श्रीकंठ मैं कंठा लसैं लर अपर विसद विसाल हैं॥
धुकधुकी लर लर लगी मनि चित्र रङ्ग अनूप हैं।
पदिक भावित कौस्तुभ जेहि वेद गावत रूप हैं॥६०॥
एक एकन ते बड़ी इमि गुल्फ लौं मनि दाम है।
कंठ लै अंगुष्ठ पद भरि बैजयंती नाम है॥
सम कंध विसाल भुज आजानु लंबित जुगम हैं।
करिसुंड के आकार जन प्रतिपाल हित अति सुगम हैं॥६१॥

ब्रह्मांड जे अनिगनित तिन मैं विनय अविनय कहत जो।
सौंदर्यता वर माधुरी भुजदंड सीवां लहत सो॥
श्रीहस्त ललिता दाहिनौ लै धर्यो अपने कांधहीं।
बाजू विजायठ अंगदादिक मंजु गति तें बांध हीं॥६२॥
हस्त पृष्ठ कबलै पहुँची भेद इनके जे कहैं।
सकल भाँति विभूषि भुज जुग निरखि मन आनद लहैं॥
करपरण अंगुरिन मुद्रिकन की पांति अति नीकी बनी।
नखन मेंहदी अरुणताई पेखि नैनन हो तनी॥६३॥
सीस मंडित चिकुर मेचक घूंघरे अति लंब हैं।
रूप सागर ज्यौं लसैं सैवाल जाल अलंब हैं॥
अर्धचंद्राकार सूते भाल पर बगलन तथा।
चोटि करि त्रय भाग गूंथे फबित हैं मनिगन जथा॥६४॥

सुखमा प्रभा सोभा मिली जनु तीनि की बेनी बनी।
पीठि माधौ लगि विलौलै बात सांची सो गनी॥
भाल सौभगता थली तापै तिलक रचना करी।
पत्र मकरी जुग कपोलन रूप निधि चांकी धरी॥६५॥
केसरी फेंटा सज्यौ रुकि दाहिनी कछु ओर है।
मुकुट बर्हापीड़ ऊपर धर्यो सुषमा छोर है॥
टोपिका चहुँ ओर नीचें कोर ऐसी देखिये।
अरुण मनि मनियां सुराही दार पांती लेखिये॥६६॥
तुर्रा दुंहूँ दिसि झूमही कलंगी तथाविधि लटकती।
उतरि कछु सिर पेच कलँगो अपर मन की अटकती॥
भाल ढिग जो कोर फेंटा तहाँ हूँ ऐसै सुनों।
हरित मनि मुक्ता लगे आकार वंशी को गुनो॥६७॥
सिर पेंच झूमक तीरतें दोऊ और कानन लौं बँधी।
तासु हू के मध्य वेना छोर झूमक द्वै सधी॥
कान आगें मकर कुंडल बगल दोऊ जगमगे।
वंदिका के छोर झूमक तासु के नीचे लगे॥६८॥
श्रवन छिद्रन मैं यथाविधि करणफूलहुं जानियें।
दुँहुँन मैं झूमक लगे लोलक तहाँ परिमानियें।
कुडली गति अलक लटकैं रूप सर झरना मनो।
कूल ताके दोउ ओरी वक्र भृकुटी सो गनो॥६९॥
मरालि गन सखि मोद हित जुग नैन पद्म विकास है।
दीरघटरारे कोर वारे डोर अरुण विसाल है॥
बड़े भारे भरे पानीय सील सागर ऐंन हैं।
किंजल्क वरुनी रेख अंजन प्रिया रंजन सैन हैं॥७०॥
नासिका पुट दच्छ मंडल नत्थ आभा भौं रहै।
वाम बेसरि कुमुद विकसै बुलाक लटकन जो रहै॥
रूप सर प्रतिबिंब भावित अर्द्धचंद्र तरंग है।
मंदहास प्रकास सोई मधुर बोल उमंग है॥७१॥
चिबुक शोणित बिंदु उपमा लहत कौन समान है।
जलगर्भ मैं ज्यौं अरुण मनि अति विमलता तें भान है॥

कुसुम के आभरन बहु विधि अंग प्रति सोभा लई।
सुमन सौरभ गूंथि कलंगी दच्छ हस्तें सो दई॥७२॥
रूप नखसिख देखि ललिता अधिक उर आनद छयौ।
स्वच्छ पौंछि बनाय दरपन विहसि सुख सनमुख दयौ॥
बड़ी वारि निहारि कै निज रूप जिय ऐसी भई।
लाड़िली के रीझ कारन जतन तौ आछी सही॥७३॥
प्रसन्नता अति जानि सहचरि सकल चरनन मैं परी।
धन्य जय जय सब्द कहि चहुँ ओर फूलन झरकरी॥
हेरि ललिता ओर बोले विहसि मृदु बानी असी।
कहो ललिते याद है वह बात सुनि कैसो हँसी॥७४॥
आजु लाल अकोर जो कछु दीजिये हम हाथ है।
श्रीकिसोरी रूप ढिगहीं जानिये निजु साथ है॥
ओहस्त तें गहि पानि ललिता कहा तुम कहँ दीजिये।
सत्य भाखौं सर्वथा यह गात निज करि लीजिये॥७५॥
बार बार बलाय लै कर जोरि चरनन मैं परीं।
धन्य पिय के वचन सुनि अति सहचरी सब सुखभरी॥
वंदना पुनि चरन कीन्हे बिदा ह्वै तहवां चली।
कछू सहचरि रहीं पिय पै कछू तिन संगै रली॥७६॥
आय सनमुख लाड़िली कें दंडवत वंदन कियो।
बहुरि उठि लखि माधुरी कर जोरि चरनन सिर दियो॥
बार बार अपार छवि अति भार पेखि संकोचहीं।
लगे जिन कहुँ डीठि मोरी तोरि तिनुका मोचहीं॥७७॥
वचन दै सनमान श्री मुख विहसि मृदु बानी कहीं।
कहो ललिता कहाँ हो तुम इहाँ तो देखी नहीं॥
सहर की भय मानि कछु जिय जोरि कर नय बोलही।
तेज स्यामा को अधिक अति वरन कंठ विलोल हीं॥७८॥
सहारानो बीन के हित गई ही निज कुंज मैं।
आवतें जो भई पति सो कहत लाजौं पुंज मैं॥
बीन काधे धरें आवत हरे नाम उचारती।
श्री किसोरी प्रिये राधे प्रेम विवस पुकारती॥७९॥

नाम की धुनि सुनी प्यारे लई मोहि बुलाय कैं।
विनय बानी जो कही अति प्रीति रीति लखाय कैं॥
मै नहीं उत्तर दियो श्री रावरौ भय पाय कैं।
कृपा अनुसासन लहौं तौं सो कहौं अब गाय कैं॥८०॥

कियो रुख उन मान जिय मै चातुरी वर धाम हैं।
श्री पिया तन रूपसागर प्रथम वरन्यो वाम हैं॥
पीय तन की बनिक हू पुनि कही अनुपम रीति सौं।
रूप दोऊ ए परस्पर अधिक एकै प्रीति सौं॥८१॥
विनय बानी कथन ऐसी लाड़िली मन मै धरैं।
हेरि फेरि उपाय सोई करी ज्यौं कारज सरैं॥
और विनती एक सुनियें ढीठ ह्वै अति भाखहीं।
निराबर नित जुगल झांकी दीजिये अभिलाखहीं॥८२॥

सुनि प्रिया कछु नैन मूंदे मंद हसि बोलीं असी।
रैन दिन मन मै तुम्हारे इहै है री वर बसी॥
बार बार प्रणाम करि कर जोरि ललिता सुख भरी।
सहचरी भरि मोद अति हिय सकल मिलि पांयन परी॥८३॥
मध्य को पट दूरि कीन्हौ भयो जय जयकार हैं।
दस दिसा तें कुसुम वरखा होत मंगलचार हैं॥
प्रिया प्रीतम नेह पूरे अरसपरस निहारहीं।
रूपके दोउ सिंधु उमगे लहरि भुजा पसारहीं॥८४॥
कर पद्म दल अंगुरी मिली जुग नैन पलकैं ना परी।
सिथलता सब अंग छाई विगत सैन अलाप री॥
भये मुद्रित पद्मलोचन दुहूँ दिसि छवि ध्यावहीं।
ध्येयता को रूप छायो सुरति आनन पाँवहीं॥८५॥
अष्ट ललिता आदि लै औ सहचरी समुदाय हैं।
ता समै की छवि उर धरी ते रहीं तहाँ समाय हैं॥
वा समै की जो रीति पूछै कहौ को किमि गाइ हैं।
जुगल चरन प्रसाद सुख जानै सोई जो पाइ हैं॥८६॥
कहैं लोक प्रमाण या मैं बात सो उन मानि हैं।
लग्यौ है जिहि घाव ताकी पीर सोई जानि हैं॥

दंड एक प्रमान ऐसें काल कछु बीत्यौ सही।
भयो जो सुखसार को भर गिरा सो पावत नहीं॥८७॥
जबौ ललिता चेत देखैं ध्यान मैं सब ही लगे।
उपाय तौ कछु कीजिये सुख नैनहू जानैं जगे॥
बहुत बार विचार कीन्हौ जुक्ति यह मन मै लही।
श्रीप्रिया को वर नाम राधा टेरि ऊचे सुर कही॥८८॥

नाम धुनि जबहीं सुनी सब सखिन तजी समाधि है।
जगैं सोई नाम टेरैं सब्द वृद्धि असाधि है॥
खुले दंपति नैन अंबुज नाम लेहिं परस्परैं।
लखे सब की ओर सहचरि वारि तन मन सुख भरैं॥८९॥
निकट ललिता आय करि प्रनिपात जुग पद सिर दयो।
साधि नोकैं मध्य मैं मुसुकाय कैं दरपन कियो॥
देखि निज प्रतिबिंब दोऊ अधिक जिय सुख पावहीं।
भाव अंगुरिन कों बतावैं प्रेम हिय उमगाँवहीं॥९०॥

नैन दरपन मैं मिले हसि मंद डाठि न मोरहीं।
दोउ लेत बलाय कर धरि सहचरी तृण तोरहीं॥
भरि नीर सीर अमीय झारी सुखद लै आगें खरी।
पदकमल जुग कर कंज मुख ससि धोय कैं अति सुख भरी॥९१॥
लै बसन अंग अंगुछाय सुभ दै धूप दीप अचावनं।
मेवा अहैं बहु जाति नाना सुष्क आले भावनं॥
जे छूटि आये सद्य तिनके भेद षटरस के किये।
सुष्क तें घृतपक छप्पन करि प्रकार जुदे लिये॥९२॥

को पाइहैं कहि अन्त इनको वस्तु बहु विधि गुनभरी।
भरि थार सजि भरि भरि कटोरा लै जुगल आगे धरी॥
प्रेम विवस बताय सहचरि नाम रूप जुदे कहैं।
मोद तिन को जानि दंपति पेखि अति आनद लहैं॥९३॥
सूप विसद सुगंधि जामैं स्वाद सब विधि के गनौ।
भात सदा अपार गुन छत्तीस विंजनमय मनौ॥
सहचरिन की वीनती जिय आनि मन ऐसी धरी।
लगे दोऊ करन भोजन प्रीति पूरी लखि परी॥९४॥

खात जानै स्वाद जामै अधिकता देखी परै।
बार बहु तनि होरि हँसि मुख देत कर कंपत झरै॥
दुग्ध पीवत मध्य मध्य विलास बहु क्रीड़ा करैं।
प्रिया पीतम अरत हठ धरि सहचरी लखि सुख भरैं॥९५॥
कनक खरिका दीये झारी नीर लै अचवांवहीं।
वदन ससि कर कमल वरनहुँ धोय पुनि अंगुछावहीं॥
मुखवास चित्त प्रमोद कारन प्रथम दै वारी दई।
तमोल रूपक सहचरिन की प्रीति गुनियें नित नई॥९६॥

लाड़िली मुख देत प्यारौ प्रिया दै मुख लाल के।
दृग जोरि भृकुटी तानि मंद विलास हसि छवि जालके॥
चंद्रावली ढिग आय खोल्यौ अतरदान सुहाय कैं।
श्रीहस्त दोऊ कै दियो वरगंध अति सुख पायकैं॥९७॥
वसन भूषन देखि ललिता अस्त व्यस्त सवारहीं।
मुकुर सनमुख दिया लै पुनि विहसि जुगुल निहारहीं॥
पुष्प अंजलि अष्ट दै मनिथार आरति वारहीं।
बार बार प्रनाम करि कर जोरि तन मन वारहीं॥९८॥

परिदच्छिना करि सहचरी जुग नाम लै जय धुनि धरैं।
हरखि निरखि अपार सुख भरि कुसुम चय वरखा करैं॥
सखी गण करि संग ललिता वीन कर आगे खरी।
वाद्य भेद अनेक विधि के एक सुर की गति भरी॥९९॥
जुगल नित्य विहार कौ जस गाय हिय उमगावहीं।
अभिलाष मन मैं अति बढ़ो अब रास झाँकी पाँवहीं॥
रसिक राय प्रवीन प्यारौ जानि जिय सुख दैन कों।
कही मृदु मुसुकाय वानी नैनहूँ करि सैनकों॥१००॥
उरैं आओ नेक ललिता सुनो जो हम भाषहीं।
निकट आई जानिकैं निज हस्त काँधैं राखहीं॥
लै सहारौ भूमि उतरे सहचरी अंग अंग धरे।
दै दाहिनी गति वर सिंघासन आय सनमुख भे खरे॥१०१॥
मुरलिका निज धारि अधरन सप्त सुर पूरे कहैं।
याम तीनौ मूर्छना गति तान मान अलाप हैं॥

राग रागिनि अंग छंद प्रबंध भेद अलेख हैं।
सकल मूरतिवंत प्रगटे सहचरिन के भेख हैं॥१०२॥
रासरीति विहार कीजै लाल जिय ऐसी धरी।
लाड़िली जो देहि मन तौ होय अब सुख की घरी॥
राह पहिले नृत्य की दरसाय सुख उपजाइये।
प्रान प्यारी हेत हित करि प्रगट प्रीति लखाइये॥१०३॥

वाद्य एकै सुर बजे पग पटकि नूपुर धुनि करी।
मदन मोहन झटकि भुज लै लटक बांकी गति भरी॥
सीस पांडुर छत्र बगलन दोउ चामर घूमहीं।
नृत्य आगे करत प्यारौ दिये तन मन झूमहीं॥१०४॥

सुहाग श्यामा को अटल लखि सहचरी मन फूलहीं।
भाग्य अपनो अति सराहत कहत को हम तूलहीं॥
गई ललिता लाड़िली पै जोरि कर विनती करैं।
बार बार निहोरि लै मन देखि रुख पायन परैं॥१०५॥
आजु रास विलास कौ सुख दीजिये मन भीजिये।
सदा मोहि सनमान दीन्हौ राखि अबहूँ लीजिये॥
मंद हसि लखि ओर सखियन दई करुणा दृष्टि हैं।
धन्य हैं हम धन्य श्री जू करत फूलन वृष्टि हैं॥१०६॥
ललिता विसाखा दोउ कांधें भुजा दै प्यारी रली।
सखी मंडल संग चहुंदिसि सकल सुख सागर चली॥
प्रिया प्रीतम लखि परस्पर डोठि क्यौंहूँ ना मुरैं।
अभिलाष पावक पाय घृत ज्यौं अधिक चित्त चाहैं फुरैं॥१०७॥

लागी गावन तबै ललिता जुगल नित्य विहार कों।
मिले कंठ लगाय हँसि हँसि लहत कौन सँभार कों॥
भुज परस्पर राखि काधें फिरत मंडल पग धरैं।
झुकि सनमुख होत ठाढ़े तान मानन गति भरैं॥१०८॥
पग पटक औ झटक भुजकी लटक झुकनि विलास की।
सीस झटकनि भृकुटि मटकनि पलक सिकुर सनासकी॥
मुरनि डोलनि मुरनि हेरनि मंद बोलनि हास की।
भाव भाव निचाव चोपनि बिछुरि मिलनि हुलास की॥१०९॥

लाल अधरन धरी मुरली प्रिया कर वर बीन हैं।
तान तरल तरंग उपजत होत लीन प्रवीन हैं॥
हौं सहो उन दून खैंचत सुनत सहचरि मुद लहैं।
जोर अपनी ओर चाहत नाम लै जय जय कहैं॥११०॥

नृत्य भेद अलेख प्रगटत उघट जे संगीत की।
करत कौतुक विविध विधि नहि संक नीति अनीत की॥
हार कंकन किंकिनी मंजीर धुनि रनकार है।
वाद्य भेद प्रबंध बाजत गान सुर झनकार है॥१११॥
गिरत भूषन बसन छूटत माल टूटत अंग तें।
दोउ नृत्यत नेह जंत्रित प्रेम तंत्र उमंग तें॥
आनि कानि सयानि हानि विजानि सब विलगानि हैं।
देह घूमत अंग झूमत स्वेद कण झलकानि हैं॥११२॥
सिथिलिता सब अंग छाई हिय उचंग नवंग हैं।
लखि परस्पर रूप सागर मिलत उभै अभंग हैं॥
विविधि सिंधु उमड़े रूप के मिलि छवि तरंग प्रसार है।
भई वेला कूल चहचरि रुके हिय आगार है॥११३॥
नील पीत दुकूल लै लै बिंदु श्रम के पोंछही।
मन्द चितवनि हसनि बोलनि धीर धन मन मोचहीं॥
बहत त्रिविध समीर सुंदर परसि अति सुख पावहों।
दिये गलबांही फिरैं संग सहचरी गुन गावहीं॥११४॥
कहत प्यारौ लखौ प्यारी विपिन वृन्दा छवि घनी।
कुसुम फूले विविधि विधि के लता सोभित अति तनी॥
चलो वृन्दा विपिन मैं अब कीजिये वन केलि हैं।
रास को श्रम मिटै जातें सघन कुंजन मेलि हैं॥११५॥
पांवड़ेन की करी रचना सुनि सखी मन भावती।
अहो री अब पेखिहैं वन केलि चित्त सुहावती॥
लाड़िली भुज वाम ललिता कंध अपने ले रहीं।
सो विसाखा कंध ऊपर भुजा अपनी दे रहीं॥११६॥
लाल हू भुज दच्छ चन्द्रावली तैसे सेवहीं।
आपनी भुज दच्छ चम्पकलता कांधे देवहीं॥

रंगदेवी आदि दै जो च्यारि अष्टन मैं कहीं।
बाहु पंजर दै परस्पर सुघर पाछे हैं सही॥११७॥
कोटि कोटिन जूथपालक सहचरी चहुं ओर हैं।
प्रान जीवन एक जिनकै सदा जुगलकिसोर हैं॥
रासमंडल उतरि सीढ़ी पुष्प क्यारी देखतें।
आय पहुँचे सघन वन मैं हिये हरख विशेख तें॥११८॥
सहचरी नय कुसुम गुच्छा तोरि दंपति देवहीं।
अहो सुन्दर पुष्प ये सनमान दै हँसि लेवहीं॥
सुनो वन जो भयो कौतुक अपर अति सुख रूप है।
जाहि सुमिरैं मिटत दुस्सह गर्भ दुख दृढ़ कूप है॥११९॥
सुख देत लेत विहार करते सघन वन तमचय जहाँ।
प्यारी कही पिय ढूढ़िये हम लुकत हैं मन रुचि तहाँ॥
छिन एक मैं निज संग देखैं लाल तौ स्यामा नहीं।
विरह दुसह भयो अति अब कीजिये कैसी कही॥१२०॥
लगे खोजन कुंज कुंजन चटपटी अटपट भई।
छिन छिन नहीं क्यों मिलत प्यारी तन दसा लटपट छई॥
भुज दोउ उन्नत करि पुकारैं कंठ गद्गद दृग भरैं।
कहां राधे प्रानजीवन सब्द ऊँचे सुर करैं॥१२१॥
प्रान जीय आधार मेरी तुम बिना वन कुञ्ज ए।
लता वेली पुष्प गंध समीर दुख तम पुंज ए॥
द्विज भ्रमर बानी करन पीड़क सखी सिखि माला ठनैं।
विरह व्याकुलता प्रिये अब सहत कहतें ना बनैं॥१२२॥
ललिता विसाखा आदि दै सब सखी सुनि अति धावहीं।
अहो री यह गिरा कैसी दौरि पिय पै आवहीं॥
कुसुम पल्लव तोरि रचि वर सेज तहाँ सुहावहीं।
प्रानप्रीतम किंकरी हम कहो सो करि आवहीं॥१२३॥
फिरि ललिता ओर बोले कहाँ प्यारी सो कहो।
प्रान तुमरे है सबै सम दुःख तम हूँ तो लहौ॥
तुम बिना नहि प्रान धारन करि सकौं ललिता भनौं।
आनियें जस लीजिये तुम विरह निधि नौका बनौ॥१२४॥

पीय की यह दसा देखी सुने सम उर दुख भय्यो।
कछू बार अचेत ह्वै पुनि समुझि मन धीरज धय्यो॥
ललित कहैं हे प्रिया नाथ प्रवीन प्यारी प्रान हौ।
कुंज अन्तर परयौ वै तौ हैं निकट अति जान हौ॥१२५॥
स्वामिनी मेरी परम निज दयासील बखानियें।
जात हौं लै आय अबहीं मेलि हौं परमानियें॥
ललिता चली अति विकल ह्वैकैं जुगल सुख जल मीन हैं।
खोजती वन कुंज उपवन लता गहवर दीन हैं॥१२६॥
सक्य भरि सब खोजि थाकी चिन्ह हूँ नहि पावहीं।
लाल चिंता तें विकल अब लाज अतिसै भावहीं॥
कहो री करिये कहा नहि भई कौनौं ओर की।
मिलिहैं जबै इच्छा करैं सुधि लेहु स्यामकिसोर की॥१२७॥
आय प्रीतम के निकट भर दुःख कहि सब गावहीं।
पात पात बनाय ढूढ्यो प्रिया तौ नहि पावहीं॥
का जानियें छिपि कहाँ बैठी आप जतन विचारिये।
सहचरिन की सुनी बानी कहैं यह उर धारिये॥१२८॥
एक ओरी जात हैं हम खोजिवैं लैं सहचरी।
तथा तुमहूँ दिसा औरौ ढूढ़िये बहु गन करी॥
लालहू अति खोजि थाके किये एक विचार है।
रास को आरंभ करिये मिलैं यह उपचार है॥१२९॥
रास हू बहु भाँति कीन्हौ भयो नहिं आगमन है।
हर्ष मन को गयो सबको दुःख वृद्धि न समन है॥
विरह वस अस कहन लागे मोहि सब दुख हेत है।
त्यागि हू ललिता गई कहुँ करत नाहीं चेत है॥१३०॥
विरह बानी सुनी ललिता दूरि तें मन दुख भियौ।
बिना देखें जात तौं आय कै मैं का कियौ॥
पद्म आसन बैठि कीन्हों ध्यान प्यारी को हिए।
सुनी बानी नैन खोले निकट ही दरसन दिए॥१३१॥
देखि अति आनंद पायो किये दंडप्रनाम हैं।
जोरि कर अस्तुति करी मुख लिये मंगल नाम हैं॥

स्वामिनी बिसलेष तें पिय बिरह सागर मैं परे।
सकल सुख को साज तुमरौ देखि छिनछिन दुख भरे॥१३२॥
वृन्दाविपिन औ सखी सगरी भ्रमर पंछी गन सबैं।
बिना प्यारी चरन पंकज दुखद हैं ए अति अबै॥
ललिता कही सो सुनी बानी मान प्रिय पियवल्लभा।
कहैं श्रीमुख सुनो ललिते बात तौ अब दुर्लभा॥१३३॥
प्रानपीतम सौं कहो तुम जाय जो मैं भाषऊँ।
बिरह सागर मैं परी पिय दरस जिय अभिलाषऊँ॥
दसा जो तुम कही उनकी इतै तासों चौगुनी।
जान राय सुजान प्यारो बात बातन सौं गुनी॥१३४॥
आय ललिता लाल पै वृत्तांत तैसे सब कह्यौ।
सुनत प्यारी को बिरह पिय चित्त दूनों दुख लह्यौ॥
एक चिंता प्रथम ही मुहि दुसरी अब यह भई।
ललिते बिचारौ चित्त अपने चेतना तनतैं गई॥१३५॥
जो नही सुधि लेत हैं तौ कहा बस मेरौ अबै।
देखिये जो नैन तैसी जायकें कहिये सबै॥
गई ललिता लाड़िली पै चातुरी वरधाम हैं।
कही अति समुझाय जैसें होत दीसै काम है॥१३६॥
चितै ललिता ओर प्यारी कही सब सांची अहो।
चेतना मोहि होय प्यारो लखें तुम ऐसी कहो॥
आय पीतम सौं कही अब आपही साहस करौ।
जुगल रूप उपासकन कैं ध्यान यह मन मैं धरौ॥१३७॥
कही प्यारे अहो ललिता बनै तुमते बात है।
लखैं प्यारी नैन ए तब चेतना बस गात है॥
गई ललिता जहाँ प्यारी तहाँ कछु देख्यो नहीं।
हा कए उर ना उन कियौ अब दई यह कैसी कही॥१३८॥
दुःख सागर मगन ह्वै कें लाल के ढिग आवहीं।
आय देखै ठौर याहू पीय चिह्न न पावहीं॥
गयो धीरज और को दुख सकी नाहि सभारिकै।
हा प्रिये हा प्रानप्रीतम ऊँठी रोय पुकारिकैं॥१३९॥

लगी खोजन कुंज कुंजन दुःख पुंज अपार हैं।
जाय पाये सखी गन मे जुगल प्रान अधार है॥
करैं केलि अनेक विधि की परस्पर आनद भरे।
देखि ललिता ठगोसी ह्वै खरी अचरज बहु करे॥१४०॥
मोहि भ्रम कै खेल इनको समुझि नाहि न सो परै।
करौं दंडप्रनाम अब तो सकल स्यामा के करै॥
कियौ जिय उन मान प्यारी चित्त ललिता कौ भ्रमै।
कीजिये अब बोध इनकौ खेद जामैं सब समै॥१४१॥
दई करुना दृष्टि जबही गही ललिता भूमि हैं।
कियो दंडप्रनाम उठि पुनि परी चरनन भूमि हैं॥
लियो कर गहि विहसि स्यामा लह्यौ ललिता खेद है।
कहैंगे हम और समये खेल को जो भेद है॥१४२॥
जलविहार → अब चलौ नीरविहार करिये बहुत श्रम सबही लह्यो।
लाल प्यारी सकल सुख निज जनन देवैं अस कह्यौ॥
मनि जटित रम्य विमान तबही आय दृग आगे भयो।
चढ़ें अति सुख पाय तापैं चित्तको गतिसो गयो॥१४३॥
रासमंडल चहूँ ओर प्रवाह जमुना जो कह्यौ।
सो उतरि ताके तीर लाग्यौ देखि सुख सबही लह्यौ॥
जलजान प्रगट्यो अपर रचना फूल की बहु भाँति हैं।
आरूढ़ तापै भये दोऊ सहचरो गन पांति हैं॥१४४॥
लगे करन विहार जल को जुगल सज्जि सनमुख भए।
होत खेल सभारि कंदुक भारि कौतुक ए ठए॥
नैन सैन कपोल उर तकि धरि कंदुक फेकहीं।
दोउ नेह नवीन उमगे कूदि करवर छेकही॥१४५॥
कर पेचिका अङ्ग ताकि मृदु मुसकाय मुरि झुकि मेलहीं।
सहचरी सुखसार दोउ दिसि बीच कर दै झेलहीं॥
नीरमध्य निमग्न ह्वै तट निकसि बहु क्रीड़ा करैं।
धन्य भाग्य सराहि सहचरि कुसुमचय बरखा करैं॥१४६॥
प्रिया प्रीतम श्रमित देखे सखिन मिल विनती करी।
महाराज अपार सुख हम लियो सुनि मन मैं धरी॥

जलकेलि अनवधि सुख भटूरी देख तेई सो बनैं।
नैन जीह न जीह कैं दृग कहौ कैसें को भनैं॥१४७॥
जो संक मन मैं करै कोऊ कामकेलि प्रसंग है।
सो घोर नर्क निवास पावै आमत कल्प अभंग है॥
श्रीराधिका तन कृष्न औ श्रीकृष्न राधा रूप हैं।
विहार लीला दोय भासैं प्रभु एक सरूप हैं॥१४८॥
दूध मैं ज्यौं स्वेतमा औ गंध धरनी की यथा।
चंद्रिका ससि तै प्रथक नहि प्रभा सूरज की तथा॥
गौर तेज बिसारि कैं जे स्याम तेज प्रपूजहीं।
जपैं ध्यावैं एक तन ते महापातक भूजहीं॥१४९॥
जगत हू मै देखिये निज देह तें जो प्रीति हैं।
और ठौरन होय तैसी समझिवैं यह नीति हैं॥
काम क्रोध विकार माया रचित नहि जिहि लोक मैं।
करै ऐसो संक तेई परैं रौरव ओक मैं॥१५०॥
जन सुनो आगे की कथा ज्यौं होत सब विधि सांति है।
जीव माया बस परे गति लहै नाना भांति है॥
मनिघटित द्वादश द्वार के ह्वै ठाम जमुना तीर हैं।
बिलग ह्वै तहाँ आय बैठे त्यागि खेल सुनीर हैं॥१५१॥
सहचरी सब अङ्ग स्यामा पोछि वर साटी दई।
अङ्ग बरन अनूप केवल धारि सोई अंग लई॥
केस सूति बनाय बेनी कुसुम गूंथे भायकैं।
अङ्गराग सुगंधि नाना तिलक रचे सुहाय कैं॥१५२॥
[illegible] भूषन भूषि नखसिख मुकर लै सनमुख दियो।
निरखि निज छवि विहसि स्यामा कही री आछें कियो॥
[illegible] श्रीमुख ते लहै सुख पाय अति फूलत हियो।
धन्य भाग्य मनाय कैं श्रीचरन सबही सिर दियो॥१५३॥
तहाँ सहचरि लाल को श्री अङ्ग पोछत सुख भरी।
[illegible] कछु झलक सो लै धौत कटि धारन करी।
केस [illegible] बनाय कुसुमन रची बेनी चाव सौं॥
[illegible] भेद सुगंधि को भर तिलक रचि हिय भाव सौं॥१५४॥

कुसुम के आभरन चित्रित सकल अङ्ग धारन किये ।
छत्तरी एक सीस ओढ्यौ लगे पीतम ज्यौं तिये ॥
विलोकि मृदु मुसकाय सहचरि परस्पर दरपन दियौ ।
रसिक राय सुजान प्यारो देखि सब दिसि हँसि दियौ॥१५५॥
रत्ननिर्मित कुसुम रचना विमल वरन विमान है ।
मध्य दोऊ ठाम कैं लगि उतरि प्रगट लखान है ॥
इतै प्यारी इतै प्रीतम चले मंडल मध्य ह्वै ॥
लखि परस्पर नैन अरमैं संभरि पुनि डग धरै द्वै ॥१५६॥
उमगि हिय अनुराग दोऊ सकल सुख सागर मिले ।
सहचरी चहु ओर वेला फूल उर लहि कै फिले ॥
श्रीलाड़िली कर लाल अपने हस्त लै धारन कियौ ।
आय बैठे वर सिंघासन सब्द जय जय दिसि दियौ ॥१५७॥
सखी हरखैं कुसुम बरषैं नृत्य गान करैं हरैं ।
प्रिया पीतम हेरि इन तन विपिन छवि लखि सुख भरैं ॥
प्रथम जो वरनन करी सतकुंज मंडल भेद तें ।
मध्य ताके नाम कहिये सभा कुंज अखेद तें ॥१५८॥
जग्यौ आय विमान ताके द्वार निकसी सहचरी ।
पाँवडे वर भाव मुद भरि फूल हँसि बरखा करी ॥
कर जोरि अति विनती करैं लखि सहचरिन के हेत हैं ।
प्रिया पीतम उतरि मिलि दोउ चले कुंज निकेत हैं ॥१५९॥
पाकसाला वर सिंघासन रच्यौ सखिन सुहाय कै ।
आय बैठे विहसि तापै जुगल मोद बढ़ाय कै ॥
सहचरी पद वंदना करि सुमन अंग आभरन जे ।
अंग परसैं हिये सरसैं जुदे लागी करन ते ॥१६०॥
रत्न झारी नीर लै पद कर कमल मुख धोवहीं ।
झीन मीन सुधारि पट अंग पोंछि हंसि हंसि जोवहीं ॥
दै धूप दीप कराय अचवन थार द्वै सजिकै धरे ।
विविधि भांति अनेक विंजन बहु कटोरा ते भरे ॥१६१॥
प्रकार छप्पन के बने छत्तीस विंजन रीति सों ।
जे कहे खटरस पंच द्वु वर ते पदारथ प्रीति सों ॥

जो भेद इनको कहै तौ नहि अन्त पावै गाय कैं ।
प्रेम प्रीति सुनेह चौंपन रचे सखियन भाय कैं ॥१६२॥
वस्तु एक अनेक तामैं रस अपूरवता लहै ।
बरन देखत रुचि बढ़ावत सुचि सुगंध विलास है ॥
ललिता विसाखा दोउ ओरी जोरि कर विनती करैं ।
प्रिया पीतम नेह बस ह्वै ग्रास लै मुख मैं धरैं ॥१६३॥
नाम विंजन के जुदे कहि स्वाद रूपक भाखहीं ।
कहैं सहचरि प्रथम यह कर लीजियै लै चाखहीं ॥
स्वाद वर रस रीति जा मैं अधिक पिय जिय जानहीं ।
सो देत लै कर प्रिया मुख हंसि जुगल भलो बखानहीं ॥१६४॥
सहचरी सुनि मोद पावत और देहि मनाय कैं ।
आवै तौमैं सद्य ल्याई परम स्वाद बनायकैं ॥
परस परस जिवाय जेंवत लेत सुख मन भावते ।
हसनि बोलनि अल्प हेरनि हरखि हिय हुलसावते ॥१६५॥
सुगंधि वासित विमल सीतल नीर बिच बिच पीवहीं ।
करत भोजन भरत अति सुख सहचरी लखि जीवहीं ॥
ललिता विसाखा निरखि रुख रुचि हठी भोजन ओरतें ।
कर जोरि चितई जुगल मुख गति लही लोचन कोरतें ॥१६६॥
तौरि सहचरि गन सकल सब लई वस्तु उठाय कै ।
भरती अचवन हेत भाजन नीर खरिका ल्याय कै ॥
कोऊ लियें झारी नीर गेरत देत खरिका अपर हैं ।
सुगंध द्रव्य विशुद्धता हित और आली सुघर हैं ॥१६७॥
अगवाग मंजुल पट दिये वर अंग पोंछैं नीति सौं ।
सुखवास चित्त हुलास कारन लियें परम विनीत सौं ॥
कोऊ सखियाँ करैं रचना सेज प्रीति लगाय कैं ।
परजंक मनिमय बनो जैसी कहैं किमि तेहि गायकैं ॥१६८॥
फूल फेनहूँ तें अधिक अति मृदु बिछौना सुच्छ हैं ।
चहुँ कोरन बंधी डोरी लटक बहु मनि गुच्छ हैं ॥
गेंदुआ बहु भांति राखे जो जथा जेहि ठौर हैं ।
पान पान सुवास भाजन धरे भरि ए और हैं ॥१६९॥

कुसुम चित्र विचित्र माला तनी अति छवि देत हैं।
अतर भाजन खुले परसि समीर सौरभ हेत हैं॥
कोऊ सखियाँ पांवड़े वर रचत चित्र बनाय कैं।
आय ललिता के निकट सब कहत कान सुनाय कैं॥१७०॥
ललिता विसाखा मतौ करि कर जोरि विनती नै करैं।
सैन कुंज पधारिवे की सकल अभिलाषा भरैं॥
श्री अङ्गहू मैं सिथलता कछु भई आलस हेत हैं।
प्रिया पीतम उठे सहचरि चहूँ दिसि कर देत हैं॥१७१॥
सखी मंडल मध्य दोऊ चलत अति छवि देत हैं।
हरखि बरखैं सुमन सहचरि चाहि दृगभरि लेत हैं॥
कुंज देहरि नाघते जे भए कौतुक रीभटू।
सहचरिन की को चलावे दोउ आपुस मैं लटू॥१७२॥
सेज पग धारें सभारें अङ्ग मिलि बैठे दोऊ।
चहूँ ओरी धरे तकिया सखी कर दीन्हे कोऊ॥
भई अष्ठ सहचरि सीस धरि बैठी हसैं।
द्वय पांति करि सनमुख विराजी अपर ठाढ़ी सब लसैं॥१७३॥
कोउ छत्र कर चामर दुरावै विजन वर लीन्हें खरी।
और सौंज अपार हस्त न धरे सोहत हित भरी॥
ललिता विसाखा निकट बैठी जानि दै मुखवास हैं।
दोऊ ओरी देत बीरी लेत होत विलास हैं॥१७४॥
प्रिया पीतम मुख परस्पर देत लेत निहारहीं।
मुकुर सहचरि करत सनमुख विहसि बलि तृण तोरहीं॥
प्रिया दिसि ललिता विसाखा लाल ओरी त्यौं भई।
खेल पासा सारि खेलत होत छिन छिन रुचि नई॥१७५॥
नींद नैनन मैं लखी झुकि परत पलकैं सोहनी।
प्रिया पीतम सहचरी अङ्ग थाँवि सोवत मोहनी॥
अधखुले लखि नैन पीतम हिये प्यारी छवि फसी।
सहचरिन के जानि सूते भई दसा समाधसी॥१७६॥
सखीगन सब अङ्ग लागी करैं सेवा नेम सौं।
श्री लाड़िली श्रीहस्त ललिता लियें निज कर प्रेम सौं॥

त्यौं विसाखा पीय दिसि की तथा विधि सेवा लहैं।
कहा कहिये अवधि सुख की इन्हैं सम एई अहैं॥१७७॥
हस्त सेवा करैं ललिता आंगुरी चटकावहीं।
हियें सुख को सिंधु उमग्यो धन्य भाग्य मनावहीं॥
उपज मन मैं भई ऐसी जीव माया वस परे।
कहूँ नाहीं सर्म तिनकौ नित्य नूतन दुख भरे॥१७८॥
उपाय ऐसी होय जासों लहैं ते सुख सर्वदा।
कृपा इनकी बिना औरन जतन कोऊ नर्मदा॥
कहत नाहीं संक मानत पूछिवें जिय चाह है।
लई करवट लाड़िली निज और देखि उछाह है॥१७९॥
दृग अल्प उघरे देखि ललिता सीस नायो जय कही।
सब्द श्रीमुख भयो ललिते कहा मन करुणा गही।
बार बार नवाय मस्तक सर्व हित जिय धारिकै॥
भक्ति महिमा जस विसूचक कह्यौ वचन सभारि कै॥१८०॥
महाराज अपार माया आपकी अति चंड है।
अर्ध ऊर्ध कंदुक से घुमावै अमित सो ब्रह्मण्ड है॥
तिहि माहि जीव अनेक विधि के परे अति दुख पावहीं।
दसा उनकी देखि मन मैं खेद अतिसै आवहीं॥१८१॥
कृपा ऐसी कीजिये ते बसैं सब इत आय कैं।
रावरो पद कंज सेवा करैं अति सुख पाय कैं॥
कहै प्यारी सुनो ललिते बात ए टेढ़ी अहैं।
सदा जो हम खेल सो अति सुखद माया क्यों जहैं॥१८२॥
महारानी सर्व दुखप्रद सुखद सो कैसे भई।
सकल जीव निकाय श्रीपद विमुख करि आपति दई॥
सुनो ललिते भेद ऐसो नटो याकौ नाम है।
करत कौतुक विविधि विधि कछु होत हमरौ काम है॥१८३॥
महाराज अनीह पूरनकाम सब विधि आप है।
कहा तुच्छ वराकि मायारूप ही संताप है॥
जीव नित्यानन्द के प्रतिबिंब से सबही कहैं।
संग या को करत ही सब काल कष्टित ते रहैं॥१८४॥

सुनो ललिते संग याकें कष्ट तौ सब मानहीं।
कृपा हमरि ते प्रथक जब रूप को जानहीं॥
जीव चेतन जड़ सुमाया कष्ट सो अविवेक है।
जात काल अनेक तौऊ होत नाहिं विवेक हैं॥१८५॥
तीन गुण को रूप याको सत्व रज तम एक हैं।
सृष्टि तीन प्रकार की ब्रह्मांड सम पूरित रहैं॥
गुणाधीन सुभाव सबके कर्म होत सुभाव तें।
कर्म अंकुर वृच्छ बाढ़ैं भोग फल अनुभाव तें॥१८६॥
काल अणु लव घटी तें लै ब्रह्म आयु प्रमाण है।
कर्मफल सब जीव भोगैं जोनि कर्म समान है॥
कबहुँ ब्रह्मा कीट कबहूँ कोटि विधि पदवी धरै।
प्रलैहू मैं लीन ह्वै पुनि कर्म वस तनु अनुसरै॥१८७॥
जीव माया संग मिलि बहु करत कर्म लुभाय कै।
चाह नूतन ही रहै सब काल हिय सुख छाय कै॥
सत्व प्रकृती देव ध्यावैं जच्छ किन्नर राजसी।
तामसीगण भूत सेवैं लहैं फल सेवा जसी॥१८८॥
काकताली न्याय जैसें सकल जीव निकाय मैं।
कोऊ हमरी ओर लागत देत चित्त उपाय मैं॥
उपाय सो दिन पाय कैं वह होत अच्छै अंग है।
परिपाकता परिणामता कैं देत हमैं अभंग है॥१८९॥
सुनों ललिते गुन अपूरव एक माया में लहैं।
ता ओर चित्त लुभाय कै हम दोष बहुविधि कै सहैं॥
सर्वथा सिद्धांत यह प्रत्यक्षहु परिमानिये।
जीव नित्य अनित्य माया नास तें उनमानियें॥१९०॥
अनित्य माया संग मिलि जे होत कर्म अनेक हैं।
सर्वथा नहिं जात क्यों हुं देत भोग निसेक हैं॥
नित्य मोक्ष विलास दानी सदा एक अनूप हैं।
उपाय हमरी ओर को क्यों होत आन सरूप हैं॥१९१॥
या हेतु तें अति सुखद माया मिलत यामैं भक्त हैं।
भक्त की परिपाकता हित होत पुनि पुनि जक्त हैं॥

सुनि संक ललिता भयो मन सो कहत हैं अब गाय कैं।
महारानी बीनती कछु करैं पद सिर नाय कैं॥१९२॥
कृपा कीजै भेद याको सकल श्रीमुख तैं सुनैं।
सर्वथा सुख दीजियै हम चित्त सो निश्चै गुनैं॥
उपाय आप बखान कीन्ही जीव के निस्तार की।
सो एक भेद अनेक कैधौं भाखिये निरधार की॥१९३॥
कहैं स्यामा सुनो ललिते बात यह पूछी भलैं।
सरित विविध प्रवाह धरनी सकल सागर हीर लैं॥
भजन सब्द सरूप निरनैं कहैं सेवा गाय कैं।
भक्ति ताको नाम जानो अंग बहुविधि पाय कैं॥१९४॥
भक्ति एक अनेक ताके अंग-भेद प्रमानियें।
विस्तार तौ नहि अंत क्यौं हू स्वल्पता मैं जानियें॥
प्रथम तौ द्वै रूप याके सगुन निर्गुन ते गुनौ।
सगुन पाछें कहैंगे अब अङ्ग निर्गुन को सुनौ॥१९५॥
भक्ति जो परिपाक रूपा भई सिद्ध स्वरूप है।
एक रस अनुराग ताको अधिक अधिक अनूप है॥
हानि लाभ न दुःख सुख न विधि अविधि कछु भान है।
लोक वेद न भेद गुण के प्रेम-सिंधु समान हैं॥१९६॥
अविच्छिन्न प्रवाह ज्यौं वर सरित सिंधु मिली रहै।
अंग निर्गुन भक्ति को मति नाम रूप मिली रहै॥
सगुन रूपा भक्तिहु के सुनौ अङ्ग अनूप हैं।
सगम सब काहू सुखद भवसिंधु सेतु सरूप हैं॥१९७॥
श्रवन, कीर्तन, नाम-सुमिरन पाद सेवन अरचनं।
बरन वंदन दास्यता सुख सख्य आत्म-समर्पनं॥
कहे जो नव अंग ए गुण भेद लै बहु जानियें।
तीन गुनमय प्रकृति सबकी प्रकृति हेतु प्रमानियें॥१९८॥
एक गुन के भेद औरों तीन तीन बखानियें।
कहैं उत्तम बहुरि मध्यम त्यों कनिष्ट विजानियें॥
गुन विभिन्नित मानि कैं त्यौं भक्ति अंग अनेक हैं।
जो मिलत है इनके कियें सो सुनो सहित विवेक हैं॥१९९॥

देपतापति विष्नु मानै एक निश्चै हिय धरैं ।
अंग अंगी भेद लैकै पंचायन पूजा करैं ॥
विष्नुपुरी निवास तिनको भोग नाना विधि लहैं ।
अंत उनके संग ह्वै कै जथाविधि ते गति लहैं ॥२००॥
वैर बुद्धि बढ़ाय हरि सों प्रान सनमुख देवहीं ।
स्वेत द्वीप विलास करि तिन संग ह्वै गति लेवहीं ॥
भक्ति अंग अनेक विधि जहाँ जाको मन लगै ।
विश्वास, दृढ़, प्रतीति, श्रद्धा साधु, संगति जो पगै ॥२०१॥
ज्ञान जोग विराग जुत ह्वै भक्ति जे सांची करैं ।
मुक्ति चारि प्रकार की बैकुण्ठ बसि लै सुख भरैं ॥
मन मनोरथ सकल पूरन सदा नारायन करैं ।
परिनाम तिनके संग मिलि कै परम पदवी ते धरैं ॥२०२॥
पुन्य पाप अनेक विधि के कर्म करते जे मरैं ।
स्वर्ग नर्क निवास भुक्तैं बहुरि उदर दरी परैं ॥
मुख्य कारन भाव भव मैं एक ललिता मानियें ।
सुनो भाव सरूप तुम तें कहैं सो पहिचानियें ॥२०३॥
विषै वनमृग भई इन्द्री फिरत स्वेच्छाचार हैं ।
तिन संग ह्वै कैं मन प्रधावत होत बुद्धि प्रहार हैं ॥
प्रथम इन्द्री विजै करिकैं विषै मन विलगावहीं ।
बासना निरमूल कीन्हें जुक्त पदवी पावहीं ॥२०४॥
जुक्त ही की बुद्धि सुधरै बुद्धि सुधरे भावना ।
भावना तें शांति उपजै शांति सुखद रसावना ॥
सुख हमारो रूप सागर वेद यह निश्चै करै ।
कन लेस परमानन्द ही को सकल जग मैं लखि परै ॥२०५॥
भाव यासों कहत हैं बिन भाव नास्तिकता लहै ।
भावही की भक्ति साची भाव निश्चै ता गहै ॥
भक्ति एक सरूप तें वर भाव ताके पञ्च हैं ।
बसत हमरे लोक जेते करत इनको संच हैं ॥२०६॥
दास्य शान्ति सुसख्य औ वात्सल्य तिनके नाम हैं ।
श्रृंगार पञ्चम नृपति ललिते सिद्धि ताकी बाम हैं ॥

रहत तुम ते आदि सहचरि जथा सुखसागर रली ।
श्रृङ्गार मनि सखि होय से इत आयवे की यह गली ॥२०७॥
च्यारि भाव विभावना जे करत प्रेम अनन्यता ।
इहलोक नित्य निवास पावैं सदा सौख्य समन्विता ॥
च्यारि मंडल वास तिनको दरस परस विधान सौं ।
भावना फल सिद्ध सोऊ होत है परिमान सौं ॥२०८॥
तीन मंडल सहचरी गति गोप्य केलि निकुंज की ।
श्रृङ्गार फल की सिद्धि यह दृढ़ अवधि है सुख पुंज की ॥
श्रृङ्गार है अति कठिन ललिते सहचरी मन भाव सो ।
सदा हमरे चरन की गति एक हठि जेहि पाव सो ॥२०९॥
परमगोप्य निकुंज लीला विपिन वृन्दा हम करें ।
श्रृङ्गार फल पदवी तुह्मारी चाहि कै जन उर धरैं ॥
परिनाम निजु तन सहचरी को पाय यह पदवी लहैं ।
नित्य सेवा मै रहैं ते सत्य ललिते हम कहैं ॥२१०॥
करैं लीला विविधि विधि हम सवा पुरन काम हैं ।
[illegible] अति वल्लभ हमारैं लहैं ते विश्राम हैं ॥
प्रथम तुम करुना करी मन जीव सबहि तपायकैं ।
[illegible] रीति उपाय ताकी कही हम सब गायकैं ॥२११॥
कहैं ललिते महारानी संक मन सौं पोत है ।
परम गोप्य निकुंज लीला जानि को किमि होत है ॥
जीव माया फंद परि निज रूप हू बिसरावहीं ।
[illegible] अति परें सो यह बात वै कहाँ पावहीं ॥२१२॥
[illegible] अति कृपा जन परजानि हम कों यह परी ।
[illegible] रीति उपाय करिये जीव हित मनमैं धरी ॥
[illegible] बानी दयासानी ललित ललितां वदन की ।
[illegible] मन भई जीवन देइवें निज सदन की ॥२१३॥
[illegible] निज कर प्रगट कीन्हौं कही बानी दयाकी ।
[illegible] अब सोई करौ ललिते होय सब हम मयाकी ॥
[illegible] प्रथम याके भाग द्वैकरि लीजिये ।
[illegible] मानसर के नीर मैं धरि दीजिये ॥२१४॥

जुगम प्रगटित होय गो वरपुरुष औ तिय एक हैं।
पुरुष ताकों बहुरि लै मम कुण्ड करु अभिषेक हैं॥
सहचरी तन लहै तब तेहि नाम गोपेश्वर धरौ।
गोप लीला सकल जे उपदेस तासौं तुम करौ॥२१५॥
भक्ति के जे अंग भाखे विविध ताके भेद हैं।
भाव पंच प्रकाश करि श्रृंगार मेटत खेद हैं॥
जथा सब सेवा हमारी करत हौ तुम प्रेम सौं।
सकल तासौं भाखिये सो करैं हिय धरि नेम सौं॥२१६॥
और सुनिये चतुरमुख ब्रह्मा जलज सौं जो भयो।
सभा अपनी बैठि कैं तिन जग मूलक श्रुति कह्यौ॥
वेद अति लहि खेद विधि सौं कही तब यह बात है।
वृथा ही आलाप करि करि करो जीव निपात हैं॥२१७॥
जुगल सर्वाराध्य स्वामी वेद हम तन मूल है।
बात सो नहि जानि निरनय करौ सुनि अति शूल हैं॥
प्रश्न ब्रह्मा कियो उनतें कहीं तिन समुझाय कै।
उठि सभा ही के मध्य विधि प्रन कियो भुजा उठाय कैं॥२१८॥
श्रीराधिका पति कृष्ण स्वामी दोउ निज गोदी धरौं।
वात्सल्य अपनौ भाव उनतें सत्य जौं विधि तौ करौं॥
दिन सात अपने कल्प भरि विधि कियो अति तप घोर है।
वर दियो तब हम जाय के जग भयो जय जय सोर है॥२१९॥
दिन कछु बीतें सुनो विधि वृषभान तन कीरति लहैं।
अभिलाष सब पूरन तुह्मारौ करैंगे साची कहैं॥
और सुनिये अष्टवसु द्रोण नामा जो अहैं।
धरा अरधांगी लियें संग तथा तप तिनको कहैं॥२२०॥
लियो उन वर ह्वैहि गे जग नंद जसुदा जस भरैं।
कछू दिन बीतें जुगल हम होव सिसु दोऊ धरैं॥
तुम आदि ललिता लोक वृन्दा विपिन सब तहँ जायगो।
रासलीला सकल ऐसी ह्वैहिगी सुख छायगो॥२२१॥
ब्रह्मांड प्रति ऐसें हमारी होत लीला नित्त हैं।
गाय ध्याय सुनाय सुनि पद लहत जीव सुचित्त हैं॥

धाम सेवा रीति कहि परिवीन अब तेहि कीजिये।
चीर अपने अङ्ग को आभरन सब विधि दीजिये॥२२२॥
जाय मथुरा निकट सो निज वास हित आश्रम करैं।
शिव रूप जग मै प्रगट ह्वै हिय भाव सहचरि को भरैं॥
संग ताके वाम सोऊ सिवा नाम बखानियें।
प्रेम भक्ति प्रवीन तैसी अङ्ग आधो जानियें॥२२३॥
दोउ मिलि दृढ़ नेम सौं जो कहौ तुम सो विधि करैं।
देहि लंहि अपार सुख जग रूप हमरौ उर धरैं॥
हंस संमत जानि कै सनकादि द्वारा सुख भरैं।
अधिकार जाको जथाविधि लखि भक्ति भाव उदै करैं॥२२४॥
यह रीति जिन जीवन हियें पल निमिष लव थिरता गहै।
सत्य भाखैं सुनो ललिते धाम सो मेरी लहै॥
वृत्तांत तासौं सकल कहि अब विदा ताकी कीजिये।
तुम करो सो सब होय दृढ़ हम कहैं साची धीजिये॥२२५॥

दोहा—नैन कमल सुख नीद वस, पलकैं लागी देखि।
मौन धार सिर नाय उठि, चलीं मुरकि पद पेखि॥१॥
निकसि कुंज के द्वार पर, ठाढ़ी उर सुख पूर।
अपनो भाग्य सराहि अति, क्रिया किसोरी मूर॥२॥
जा विधि की आज्ञा भई, कियौ तथा सब काजु।
गोपेश्वर धरि नाम करि, सहचरि तन सुख साजु॥३॥
जो आईं बैठीं जहाँ, सखी वृन्द सुखपुंज।
नंद वाद्य सुर झीनतें, सेवैं सब श्रीकुंज॥४॥
उठि आदर सबही कियो, अभिवादन सिर नाय।
बैठी ललिता सुमरि पद, राधा वर सुख गाय॥५॥
नई सहचरी संग लखि, कहैं विसाखा बैन।
यह मूरति प्रगटी कहाँ, श्रीललिते सुख दैन॥६॥
संक होत मन मैं अधिक, जो सुनिवे सुख होय।
कहिये करुणा चित्त धरि, उत्कंठित सब कोय॥७॥
प्यारी सुनो जब कुंज तें, पग बाहिर तुम दीन।
ये बातें सब तब भई, प्रिया किसोरी कीन॥८॥

अब इनतें सब ही सुनौ, सेवा की जो रीति।
उधरैं जग के जीव ज्यौं, कहिवैं है करि प्रीति ॥६॥
सेवा के हित सकल हम, प्रगटीं सत्य प्रमान।
सेवा दंपति सुखद अति, सेवा सार निदान ॥ ८॥
सुनि गोपेश्वर के हिये, उपजी संक तरंग।
को हम को ए सेव्य को, का सेवा को अंग ॥११॥
लखि संका के चिह्न तन, श्री ललिता मुसुकानि।
उपजी जो मन संक सो, कहिये सकुचे हानि ॥१२॥
सुनत वचन सिर नाय निज, लखि सबहिन की ओर।
बोले वचन विनीत अति, गोपेश्वर तेहि ठौर ॥१३॥
संक होत अविवेक तें, गुरु विनु मिटे न सोय।
सरनागत हौं रावरी, कहिये ज्यो हित होय ॥१४॥
कारन विनु कारज नहीं, कारज विनु नहि नेम।
प्रेम न उपजत नेम विनु, ता विनु होय न छेम ॥१५॥
सेव्य विना सेवा नहीं, सेवा विनु नहि चैन।
सेवक सेवा सेव्य को, रूप कहौ सुख दैन ॥१६॥
सेवा कौ फल है कहा, को साधक या माहि।
जे बाधक ते कृपा करि, कहिये का विधि जांहि ॥१७॥
पूछत बन्यों न होय जो, प्रश्न न कीन्हौ होय।
अन्तरजामी सकलविद, आपु कहै जन जोय ॥१८॥
सुनत वचन हिय हरखि अति, जान्यो प्रिया प्रभाव।
बोली ललिता मंद हंसि, करुणासील सुभाव ॥१९॥

सोरठा—एरी परम प्रवीन, सुधासार मय प्रश्न तव।
कृपा किसोरी कीन, सकल जगत हित होयगो ॥ १ ॥
ऐसें कहि छिन एक; ललिता जुगल सरूप स्रर।
कीन्हयौ मन अभिषेक, बहुरि कहन हित चित दियो ॥ २ ॥
सुनो सकल वृत्तांत, जो पूछौ तुम बुद्धिवर।
सबको यह सिद्धांत, को कारन तेहि जानियें ॥ ३ ॥
यामै जो इतिहास, जाहि सुने संसै मिटैं।
कीजै दृढ़ विश्वास, सो कारज साधक सकल ॥ ४ ॥

स्वामी श्रीअनिरुद्ध, भक्त सिरोमनि देवऋषि।
सो संवाद विसुद्ध, सुनिये दोउन तें भयो ॥५॥
कीजै सोइ उपाय, जा विधि वस्तु पिछानियें।
काल भेद मन ल्याय, तर्क वितर्क न आनियें ॥६॥
क्षुधा निवत्ति न होय, भोजन विन यह नेम दृढ़।
धारन करिये सोय, जामै निज हित देखिये ॥७॥

छप्पै—नारद साधु सरूप भक्ति की महिमा जानै।
तेज तपस्या धाम सदा सतसंग प्रमानै॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक लोकन मैं जावैं।
जहाँ लहैं हरि हेतु तहाँ अतिसै सुख पावैं।
दीन देखि करुना भरैं दया हिये दिये रैन।
सनै सुनावैं कृष्न गुन ताप हरैं कहि बैन ॥१॥
कृष्नदत्त जो वीणा धरैं निज कंध सुहाई।
राग रागिनी भेद सप्त स्वर गति नित छाई॥
लोक जात्रा करत लेत सुख देत अलेखन।
मन मैं इच्छा भई चलैं प्रभु के पद देखन॥
स्वेत दीप वैकुण्ठ कहत शोभा कवि लाजैं।
वेदमई श्रीमूर्ति जहाँ अनिरुद्ध विराजैं ॥२॥
भरीं भक्त बहु वृन्द सकल जिनकैं हरि प्यारे।
जद्यपि सुख वैकुंठ भोग नहिं चित्त निहारे॥
छिन छिन आसा दरस प्रभू पद जीवन प्राना।
नैन बैन हिय एक रहै तिनही को ध्याना॥
भरतखंड बसि हरि भजै वैर बुद्धि उर धारि।
तिन पायो वरवास तहं सदा भक्ति बढ़वारि ॥३॥
सभा अलौकिक जहाँ प्रभू बैठे सिंहासन।
सहसानन सहसाक्ष सहस कर पाद सुभासन॥
जय जय बोलैं भक्त कुसुम वरषैं हिय हरषैं।
आनन्द विविध अपार सकल भाँतिन के सरसैं॥
नारद पहुँचे जाय दूर तें वीर धरयौ धर।
कीन्हैं दंडप्रनाम विमल गुन गाय जोरि कर ॥४॥

भक्त पियारे देखि प्रभु दृगजल भरे जल।
प्रेम हियें उदगार कंठ रुकि पेखि रहे पल॥
बोले वचन रसाल सुनत आनंद उर छावै।
बाढ़ै नेह अपार भक्ति तरु सींचि बढ़ावै॥
एहो नारद प्रानप्रिय सुख आगमन तुम्हार।
आवौ परसौं अंग तुल ज्यौं पावौं सुखसार॥५॥
सबको है व्यवहार अधिक निज देह पियारी।
मेरें सो नहिं रीति कहौं दृढ़ नेम उचारी॥
जौ भक्तन अनकूल सदां मम तन नहि रहई।
तौ राखौ नहिं राह बात औरन को कहई॥
सत्य हृदय मम साधु साधु उर मोहि बसावैं।
मो बिन लखैं न और तथा ते मोहि सुहावैं॥६॥
श्रीपति के ए वचन सुनत सब जन हरखाने।
लागे करन प्रणाम देवऋषि मन विकसाने॥
विनय भार सिर नाय जोरिकर पद सिर दीन्हौ।
अभय हस्त श्रीकंत सीस तिनकैं निज कीन्हौ॥
देखि परस्पर सुख भरे स्वामी सेवक दोय।
ऐसे प्रभु न सेवई धिग जीवन सो होय॥७॥
दै आदर निज निकट कही बैठो मम प्राना।
प्रभु आज्ञा धरि सीस देवऋषि करी प्रनामा॥
बोले हरि मुसुकाय अहो नारद सुखरासी।
फिरौ लोक सब ठौर चित्त मेरे पदवासी॥
गुन गावौ भरि प्रेम नेम एकै मनमाहीं।
कृष्न हेतु तैं प्रीति अपर कछु सपने नाहीं॥८॥
विषै गर्त्त दृढ़ नर्क परे जे जीव अपारा।
जगत वासना पास बंधे नहि है छुटकारा॥
मिथ्या सत्य प्रतीति सत्य को अंग न जानै।
जिन कर्मन तें गर्भ नर्क रुचि तेई ठानै॥
निसिदिन बाढ़ै मोह क्लेश छिन छिन अधिकाई।
चिंतागिन तें भस्म होत सब आयु विहाई॥९॥

तिनको हित उर आनि लोक परिजटन तुम्हारौ।
दरसन परसन प्रश्न वचन कहि दोन उधारौ॥
कहाँ फिरे सुखकंद कहाँ ते अब आये हौ।
कहौ लोक वृत्तांत कहा मन धरि ल्याये हौ॥
कहा अलौकिक लखि परयौ कहा नीति अविनीति।
मुहि सब दिन चिंता रहै भक्त न पावैं भीति॥१०॥
बोले नारद सीस नाय लखि पद कर जोरें।
कृपा रावरी एक सदा सब विधि बल मोरें॥
महाराज को नाम पोत दृढ़ भवनिधि माहीं।
तेहि आश्रित ह्वै जीव पार अनयासै जाहीं॥
जीवन के हित आप करी लीला बहुतेरी।
सुने सुनाय गहैं चित्त की मिटै अंधेरी॥११॥
करुणासील सुभाव आपके मन यह रहई।
जीव मिलै मुहि आय क्लेश माया संग लहई॥
पूरन दया निहारि देह मानुष की दीन्हीं।
भरतखंड थल पाय प्रीति श्रीपद नहिं कीन्हीं॥
अति ऊंचौ उपकार मोह बस मूढ़ भुलावै।
कृतनिंदक अपराध ताहि कहि आगम गावै॥१२॥
ऐसे हू जे जीव भक्त संगति पाहीं।
कृपा रावरी जानि सफल मानुष तन करहीं॥
भक्त एक जिहि देस बसै तिहि वेद कहै सुचि।
ताके संग अनेक जीव सुधरैं माया मुचि॥
दास बसैं बहु ठौर कृपा तिनकी अति प्यारी।
मोहि देखिवे चाव फिरौं सुख अधिक निहारी॥१३॥
भरतखंड की रीति द्वीप खंडन तें न्यारी।
किये एक गुन कर्म होय कोटिन बढ़वारी॥
कर्म क्षेत्र सों भूमि पाय श्रीपद मन लावैं।
तिनही को वरभाग्य संत श्रुति हरषित गावैं॥
याही तें आसक्ति तहाँ मेरो मन पावै।
भक्तन की सुचि लागि देखि अति चित्त लुभावै॥१४॥

आज्ञा श्रीमुख भई कहाँ तें अब आवत हौ।
अंतरजामी तौ दास मुख सुख पावत हौ॥
भरतखंड मैं गयो नाथ गुन गावत जीहा।
देखत फिरौं अलख लख है सबको ईहा।
कौतुक पेख्यौ एक महा विसमय मन छायो॥
किये बहुत विचार सार निरधारन पायो॥१५॥

एक दिना की बात विंधिगिरि तीर गयो मैं।
तहाँ सरोवर दिव्य देखि मन मोद भयो मैं॥
लता औषधी गुल्म वृक्ष बेली सुख छाई।
नीर परम गंभीर स्वच्छ सब ऋतु सुखदाई॥
फूले कंज अनेक जीव सब अति सुख पावैं।
कीजै कहा बखान मनुज सुरवधू लुभावैं॥१६॥

अपर सुनो वृत्तांत तीर ताके दस मुनिवर।
इन्द्री वृत्ति समेटि चित्त कीन्हें एकागर॥
ध्यावैं हिय हरि रूप अगुन गुन उदै जहाँ तें।
लागा सुद्ध समाधि बुद्धि नहिं चलत तहाँ तें॥
बाहिर को व्यवहार भान कछु होय न जिनकैं।
भये धेयपद लीन कृपा देखी अस तिनकैं॥१७॥

मोरे मन अस भई रहौं कछु काल अबै इत।
संभाषन सुख लहौं समाधि की भये सुचिर मित॥
रह्यौं तहाँ बहुकाल दसा तिनकी तैसी ही।
ज्यौं प्रतिमा पाषान देखि सब दिन जैसी ही॥
बहुत अस्थि संघात देह पंजर तहँ पेखे।
गनती करी न जाय कूट इव परे अलेखे॥१८॥

तब संसै मन भयो कहा सौ जानि न जाई।
त्यागि चल्यौ वह ठौर सुमिरि हरि बीन बजाई॥
उर बाढ्यौ अभिलाष बात निरधार होय यह।
निश्चै कीन्हौ चित्त प्रभू बिन अपर कवन यह॥
देखे श्रीपद आय भाग्य पूरे निज लेखे।
जीवन लहै विश्राम नास करुणा दृग पेखे॥१९॥

लज्जा होत अपार करत विनती प्रभु पाँहीं।
ससै होय न नास सकुचि कारज विनसाँहीं॥
ज्यौं पावै मन बोध तोष ताको सब कीजै।
श्रीमुख तें बिन सुने चित क्यों हूँ न पतीजै॥
नारद के ए वचन सुनत हरि हिय हरषाने।
बोले करुणासिंधु भक्त अति वल्लभ जाने॥२०॥

अहो देवरिषि नैन लख्यौ सो गोप्य महा है।
काहूतें सो हेतु आजु लौं मै न कहा है॥
तोऊ तुम पर नेह अधिक मोरे मन माँहीं।
याते कहौं बखानि सुने संसै सब जाँहीं॥
ब्रह्मा के ते पुत्र दसौ जानौ प्राचीना।
विधि अज्ञा सिर धारि सृष्टि हित तप मन दीना॥२१॥

विधि निकट सर सुभग नाम अघमर्षन गावैं।
तप प्रथम हरि तोषि तहाँ वर लब्ध बतावैं॥
ता तीरथ मै आय दसौ मन धरि बिस्वासा।
लागे करन अपार कठिन तप हरि की आसा॥
तिनको अति तप तेज बढ्यौ सुर सांति न पावैं।
आय चतुर्मुख निकट बिथा अपनी सब गावैं॥२२॥

एक समय वैकुंठ नाथ नारायन जानी।
आये तिनके निकट दैन वर तप सुख मानी॥
देखि रमापति रूप दसौ मन आनद छाये।
परे दंड इव भूमि प्रभू निज हाथ उठाये॥
अति आरति उर मांहि रही भरि बहु कालीना।
सब इंद्रिन की वृत्ति भई हरि तन छवि लीना॥२३॥

बहुरि धरयौ मन धीर सकल विधि आदर कीन्हा।
अरघ पाद्य सनमानि वचन वर आसन दीन्हा॥
तेता मन अभिलाष जथाविधि सब ही कीन्ही।
प्रभु पायो अति तोष प्रीति सुचि तिन की चीन्ही॥
बोले होय प्रसन्न कही मन जो वर होई।
मांगि लेहु सब देउ संक जिन मानौ कोई॥२४॥

मम दरसन जग जीव हेतु सब अवधि श्रेय को।
तृषावंत सुख लहै नीति ज्यौं अमिय पेय की॥
तब तिन कियो विचार कष्ट हम अतिसै कीन्हौ।
एई परम निदान अपर कैसो नहि चीन्हौ॥
कीजें यातें प्रश्न संक ज्यौं मन की जाई।
बार बार तप करैं भले कै अबहीं भाई॥२५॥
दस मै मुख्य प्रधान एक सब को मन लैकै।
कीन्हौ प्रश्न विचारि जोरि कर बहु विधि नैकै॥
महाराज कछु संक एक उपजी मन आई।
दुरगम रूप तुम्हार जानि सो कापै जाई॥
तुच्छ अल्प अति अज्ञ जीव हम माया घेरे।
निश्चै का विधि होय ईस जगमै बहुतेरे॥२६॥
सबको परम निदान एक जापर नहि कोई।
सोई है यह रूप अपर कै दूजो होई॥
परम धाम को लोक सदा अव्यय थिर रहई।
जहाँ गये ते जीव बहुरि संसृति नहि गहई॥
कौन तहाँ की रीति मिलै का विधि के कीन्हे।
कहियै सब निरधारि परै ज्यौं हम कौ चीन्हे॥२७॥
श्रवण जोग्य अधिकार हमारौ जो कछु देखौं।
कृपा रावरी मुख्य सकल कारन जिय लेखौं॥
करुना करि वैकुंठनाथ नारायन बोले।
सर्वाराध्य सरूप भाषि संसै सब खोले॥
अहै हमारो रूप अपर सब को जो हेतू।
अंस कला अवतार होहिं जातें सो सेतू॥२८॥
नित्य विहारी जुगल तासु लीला सब लेखो।
बिगरें बनै अनंत अंड पल अंग विसेखो॥
जिनको नित्य विहार एक रस भंग न होई।
कला अंस जग हेतु सकल हम हैं सब कोई॥
इच्छा के आधीन रहैं पुनि तहां समावैं।
अमित कोटि ब्रह्मांड ईस गुन फिरि उपजावैं॥२९॥

कारन परम निदान तासु परम और न कोई।
कीयें नेति निषेध अवधि जानौ दृढ़ सोई॥
परम धाम गोलोक मध्य वृंदावन गावें।
बसैं तहा बहु भक्त अंगजा सखी सुहावैं॥
राधाकृष्न सरूप एक विधि निज इच्छातें।
गौर स्याम अभिराम अंग आनद जग जातें॥३०॥
विहरैं नित्य विहार सदा भक्तन सुखदाता।
जानौ दृढ़ निरधार सकल के तेई त्राता॥
तिनकी कृपा कटाक्ष पाय माया भ्रम छूटै।
कर्म रज्जु जो पास त्रास तौ लौं नहि टूटै॥
दीन्हौ उत्तर एह प्रश्न जो कीन्हौ ताको।
कहो चित्त अभिलाष जतन अब कीजै वाको॥३१॥
तब तिन हियें विचारि कह्यौ नारायन पांहीं।
दीजै सो वर प्रभू जथा हम ता पद जांहीं॥
श्रीपति बोले मंद विहसि एहो तपधामा।
सुगम न जानो बात कठिन अति जैसो कामा॥
जैसे तपतें तोष हमै कीन्हौ वर भाई!
ऐसें जन्म सहस्र कोटि बीतै हठ लाई॥३२॥
दुर्लभ तहाँ प्रवेस ज्ञान तप जोग उपाये।
रीति कछू वह और बिना सो हिय मैं आये॥
अपर न देखी आस ईस वैकुंठ रमापति।
तबही अंतर्धान भए तिनहूँ कीन्ही नति॥
रमाकांत निज लोक गए तब ते मुनिवर अरि।
अतिसै चित्त लगाय चतुर्भुज रूप हिये करि॥३३॥
परी अखंड समाधि काल बहु बीत्यौ ऐसें।
जैसो कठिन कठोर करैं तप कहियै कैसें॥
विश्व काल आधीन विपर्जय सब की होई।
एक दिना ब्रह्मांड अवधि बस रहै न सोई॥
देह काल परिणाम पाय अति होय पुरानी।
करैं तासु कौ त्याग न इते धारैं ज्ञानी॥३४॥

तप संचित वर देह आय कै प्रापति होई।
परकाया परवेस करै ज्यौं जोगी कोई॥
तैसें संग्रह त्याग देह छोड़ैं औ धारैं।
धृत्य एक रस रहै नेम सो पल न बिसारैं॥
बोल्यो जितनो काल ऊर्ध्वरेता तिनको तब।
सुनिये चित्त लगाय कहैं हमसो नारद अब॥३५॥
प्रथम सृष्टि उत्पन्न चतुर्मुख जबही कीन्ही।
तब धारी तिन देह रीति दृढ़ तपकी लीन्ही॥
बीते विधि के वर्ष अबै लौं त्रिसित जानौ।
जेहि जुग जो वयमान अवधि तन पलट्यौ मानौ॥
कोटिन कोटि सरीर तजे पुनि धारन कीन्हे।
अबहू देखि रीति नेम तैसो दृढ़ लीन्हे॥३६॥
नित्य विहारी जुगल चरन पंकज रज आसा।
वृंदावन परधाम तहा पावैं सुख वासा॥
करुनासिंधु सुभाव जुगल निज जन हितकारी।
कृपा दृष्टि की कोर जबै इन ओर निहारी॥
तब उपजै गौ प्रेम कहै सब नेमन को फल।
सुद्ध एक अनुराग भाव भावित हिय निरमल॥३७॥
ता उर मैं सब प्रकट आय कै होंहि जुगल वर।
सहचरि संग अनेक रहैं जे सेवा तत्पर॥
परम धाम गोलोक अमल अति जो वृन्दावन।
सकल उदय हिय होय धरं जानों याही तन॥
पावैंगे विश्राम कष्ट उपराम लहैंगे।
तब अधिकारी होय परमपद ताहि गहैंगे॥३८॥
धन्य आजु को दिवस देवऋषि धन्य बुद्धि तव।
प्रश्न कियो सखसार परमपद देइ गुने लव॥
जुगलविहारी नित्य नित्य वृन्दावन धामा।
नित्य विहार अखण्ड नित्य लीला गुन नामा।
कारन परम निदान सर्व पर जानो सोई।
जिहि जाने बिन मीत जीव सुख लहै न कोई॥३९॥

कह्यौ स्वल्प हम गाय प्रश्न को उत्तर जैसो।
को पावै निरधार रुप महिमा थल तैसो॥
नारद पायो बोध चित्त मैं निश्चै आई।
ज्यौं पावौं पद एह करों सो वेगि उपाई॥
इनतें वक्ता अधिक अपर को है जग माही।
कीजै प्रश्न बहोरि त्यागि संका प्रभु पाहीं॥४०॥
कीन्ह्यौ विनय प्रनाम दास की रीति लखाई।
बोले जुग कर जोरि हरषि नारद सकुचाई॥
महाराज को हेत सदा जन पर अधिकाई।
जो कीजै व्यवहार एक सो भक्त न लाई॥
करुनासिंधु सुभाव आपको सब दिन देखैं।
श्रीमुख के ए वचन सुनत नहि तृप्ति विलेखैं॥४१॥
मोमैं दोष अनेक एक तिनमैं अति भारी।
थिरता गहै न चित्त फिरौ निसदिन जग सारी॥
उर बाढ़ी सुनि चाह परम पद श्रीमुख गायो।
श्रम को होय न लेस देस चाहत सो पायो॥
तिनकौ कष्ट निहारि हारि मन टूटत आसा।
कृपा रावरी ओर पेखि उपजत विश्वासा॥४२॥
नाथ हाथ सब अहै कहैं श्रुति संत सदाहीं।
दुर्लभ सो वह बात कवन जो श्रीकर नाहीं॥
अनहोनी प्रभु करौ मेटि करमन को रेखा।
जानत हैं सब कोय बहुत नैननहुँ देखा॥
अज्ञ मंद मतिहीन दीन जगजीव दुखारे।
पुरुषारथ अति हीन मरैं लव विषै विसारे॥४३॥
निसदिन चिंता एक उदर भरि तिय अभिलाषैं।
हरि चरचा रस जन्म कोटि बीतैं नहिं चाखैं॥
ऐसो जिनकी रीति परमपद ते किमि पावैं।
आरतबंधु बखानि आपको जस श्रुति गावैं॥
प्रभु कह्यौ समझाय मुनिन को तप अति भारी।
चित न सनमुख होत चाह मन भई अपारी॥४४॥

कीजै करुना सोय होय सुनतें सुख जाके।
छिन छिन बाढ़ै मोद भये अधिकारी ताके॥
पावें गत संदेह धाम वृन्दावन सोई।
जुगलविहारी नित्य निरखि नैनन सुख होई॥
नारद के ए वचन सुने अनिरुद्ध गुसाईं।
लागे करन विचार बार कछु बोले नाहीं॥४५॥
कीन्हौ मनमैं ध्यान जुगल वपु हियरें आयो।
जो उत्तर अंग रूप ताको अस पायो॥
बोले मृदु मुसुकाय अहो नारद मुनि ज्ञानी।
साधु संग सुख होय कहै को ताहि बखानी॥
उपकारी जग दोय ईस जन ताके सांचै।
दीन दुखी सुख हेत नाच कितने नित नाचैं॥४६॥
अब सुनिये निरधार प्रश्न को उत्तर जो है।
मति सम कहौं बखानि बात अति दुर्लभ सोहै॥
गहै एक विश्वास कल्पना त्यागै नीकै।
मिटै मोह सब अंग प्रीति जुत समुझै जीकै॥
अवतारी जो एक अवधि जापर कोउ नाहीं।
इच्छा सक्ति उदोत भई ताके मन मांहीं॥४७॥
इच्छा के आधीन प्रगट माया दरसानी।
नैन कोर की ओर लखै जोरें जुग पानी॥
नित्यविहारी स्याम अल्प दृग देखो जबही।
अमिति कोटि ब्रह्मांड रचे बहुविधि ते तबही॥
तिनमैं जीव अनेक विषै परि और न जानै।
अपनौ रूप बिसारि सत्य माया तन मानै॥४८॥
देह सौख्य के हेत क्रिया लघु दीरघ ठानै।
बीतैं कल्प अनेक विषैं ते तृप्ति न मानै॥
सुक अस्थि औ मेद मांस मज्जा लोहू त्वच।
विष्ठा मूत्र विकार लार नख लोम भरे कच॥
नव इंद्री हू द्वार वहै नरकन की सामा।
असुचि स्रवै दुरगंधि सदा केवल मल मामा॥४९॥

या प्रकार की देह ताहि सर्वोपर मानी।
छिन छिन भोग विलास देइ सेवैं सठ प्रानी॥
परम इष्ट जेहि जानि प्रेम सौं सेवन करियै।
मिलै सोइ परिनाम बात सांची मन धरियै॥
निश्चै दृढ़ अनुराग नर्क तन सेवैं जेई।
कोटिन ब्रह्मा जाहि नर्क हठि पावैं तेई॥५०॥
माया वस परिजीव रूप अपनो भूलै जो।
ईस रूप दुर्ज्ञेय ताहि भूलै अचरज को॥
नित्यविहारी प्रबल सक्ति माया निज जानी।
जीवन की यह दसा देखि करुना मन आनी॥
जो कोउ रचै बनाय सदन ताकी अस रीती।
राखै वामैं द्वार दोय सो नीति पुनीती॥५१॥
और परै अवकाश लहै जो वामैं रहई।
मेरो घर ब्रह्मांड-अमित श्रुति सब दिन कहई॥
वामै करियै द्वार उभै ग्रहदोष न होई
परमारथ वर नाम कहै स्वारथ सब कोई॥
स्वारथ को यह रूप करै सो निज सुख लागी।
परमारथ सहि कष्ट दीन सुख देहि सुभागी॥५२॥
जितनौ जग वेवहार सकल स्वारथमय जानौ।
कृष्न विषै अनुराग मूल परमारथ मानो॥
स्वारथ को उपदेस जीव कह माया करई।
परमारथ उपदेश होय सोय तब उर वरई॥
जग यह सदा प्रवाह कर्म वस सब दिन ऐसैं।
अपरनहूँ की रीति काल त्रय थापौं तैसें॥५३॥
दयासिंधु हिय मांहि जतन ऐसौ वर भावैं।
जा को होय न लेस जीव मेरौ पद पावैं॥
जग मैं जतन अनेक दोष सबही के माहीं।
तामें अति करि कष्ट नष्ट फल अवधि लहाहीं॥
माया दृढ़ बलवान जतन एकौ नहिं मानै।
मेरे है आधीन जीव सो मोहि न जानै॥५४॥

जाने बिन उरवार होय नहिं कोटि उपाई।
दुरगम मेरौ रूप जानि सो कैसें जाई॥
मैं ई अपनो रूप जतन करि आप जनावौं।
जीव लहैं विश्राम जगत गुरु पदवी पावौं॥
संप्रदाय यह चलै शिष्य गुरु नातौ मेरौ।
माया बंधन कटै होय सब भांति निबेरौ॥५५॥

ऐसी मन मै धारि बहुरि कछु कियो विचारा।
मेरौ नित्य विहार रहै सब दिन इक सारा॥
माया लहै न संक मोहि बिनु करियै कैसी।
गुरु पदवी अति भार वस्तुहू सोहै तैसी॥
जौ राखौं उपदेस रूप को याके माहीं।
जीव विषै आधीन चित्त की थिरता नाहीं॥५६॥

कीन्हौ यह सिद्धांत नाम औ वस्तु कहैं द्वै।
कीजै ताकौ भिन्न सकै नहिं सो क्यों हू ह्वै॥
बोध वस्तु को होय जबै लहियै कछु नामा।
नाम उदै किमि होय वस्तु पावैं बिनु ठामा॥
जो ध्यावैं मम रूप जोग अष्टांग सुसाधी।
सुद्ध सबै अंग होहिं चित्त अतिसै निरुपाधी॥५७॥

अन्य वासना स्वल्प फुरै तौ देह धरै पुनि।
साधै जन्म अनेक सिद्ध पावै कोऊ मुनि॥
नाम क्रिया नहिं और जीह जौ सुमिरन करई।
तौ पावै मम रूप बात ऐसी लखि परई॥
है यह सुगम उपाय जीव पावैं मेरौ पद।
गुरु पदवी सो भार लहै जुग जुग महिमा हद॥५८॥

जो होती कछु जतन और कल्यान हेतु है।
सर्वोपरि अति उच्च गुरु-पद धर्म सेतु है॥
यामैं धर ते सोइ चित्त नारद उन मानौ।
हरि श्रुति संत महंत सिद्ध संमत यह जानौ॥
गुरु शिष्य व्यवहार एक हरि मिलिवे कारन।
अपर न दीसै हेतु किये बहु भाँति विचारन॥५९॥

तुमहू तो गुरु कियो नेक हरिसौ पथ भाषी।
प्रभु कह्यौ अपराध बड़ौ भुगतौ चौरासी॥
गुरु महिमा निज नेम अहो नारद तुम देखी।
कष्ट मेटि छिन माहिं परम सुख दियो विसेखी॥
हरि अपनी मरजाद आप थापी गुरु होई।
कियो नाम संचार मंत्र उपदेस्यो सोई॥६०॥

अपर एक वृत्तांत सुने अति आनद होई।
उपजै दृढ़ विश्वास लहै नहि संसै कोई॥
हरि मन मै यह गुनी जीव माया आधीना।
तर्क वितर्क अनेक लहै अति बुद्धि मलीना॥
प्रथम नाम उपदेस बहुरि करि वेद दृढ़ायो।
तौऊ भई न प्रीति अंत जब तन को आयो॥६१॥

परयो मोह के सिंधु जीव सब चेत गँवायो।
थापी नीति पुनीति पंचमुख सोइ सुनायो॥
नारद सकल उपाय सिद्धि याही तें होवैं।
यामैं करि संदेह मूढ़ ते सरवस खोवैं॥
पतित उधारन नाम सदा श्रुति टेरि सुनावैं।
नाम दान के कियें गुरू अति उच्च कहावैं॥६२॥

आगम निगम पुरान समुझि नीकैं उर धरई।
जोग जज्ञ तप दान नेम व्रत संजम करई॥
सुने गुने मन मांहि अपर साधन बहु भांती।
एक एक जौ करै कोटि कोटिन विधि पांती॥
श्रीगुरु मुखतें नाम सुनै नहि इन बल मानी।
व्यर्थ क्रिया सब होंहि परै रौरव अभिमानी॥६३॥

राधा कृष्न सरूप जुगल श्रीनित्यविहारी।
परमधाम गोलोक सुखद वृन्दावनचारी॥
जुगल नाम उर धारि प्रेम भरि सुमिरन कीजै।
अनायास परधाम कृपा तिनकी सौं लीजै॥
नारद सुगम उपाय कही परधाम लहन की।
महिमा नाम सरूप समुझियै गति न कहन की॥६४॥

गोपेस्वर सनकादि समागम अति सुख दाई।
अब बीतै कछु काल होयगो जानौ भाई॥
इन बातन की रीति सकल विधि तहा सुनौगे।
नित्य विहारी धाम मिलै पल हियें गुनौगे॥
यह सब भयो प्रसंग देवऋषि तुमरे आयें।
कहिये कहा बखानि जथा सुख साधु सुपायें॥६५॥

तब नारद कर जोरि दंडवत किये प्रनामा।
उर बाढ़्यो उतसाह अधिक पायो विश्रामा॥
महाराज की प्रीति सदा भक्तन पर ऐसी।
किमि कहिये सो रीति हिये उपजत है कैसी॥
नाथ कृपा अस करो चरन सरवस्व तुमारे।
हिय तें टरै न रूप जीह नित नाम उचारे॥६६॥

करन सुनै गुन गान नैन तव रूप निहारैं।
श्री प्रसाद धरि सीस नासिका गंध सुधारैं॥
करैं प्रनाम सुअंग चरन रज परसि सुहावैं।
कर परिचरजा लहैं चरन परदच्छिन लावैं॥
साधु सग दिन रैन मिलै अतिसै रुचि होई।
सकल ठौर गुन सार गहै मन दोष न कोई॥६७॥

करि प्रनाम कर जोरि देवऋषि अस्तुति कीन्ही।
विदा हेतु हिय जानि वृत्ति प्रभु आयसु दीन्ही॥
प्रभु आसिष धरि सीस देवऋषि चले सुखारे।
जुगल नाम सौं प्रीति करी अति चित्त सभारे॥
जहाँ जहाँ मन लगें भजन निरूपाधिक होई।
तहाँ करैं निरवाह काल आसा मन सोई॥६८॥

श्री ललिता मुसुकाय कही गोपेश्वर जानौ।
जुगलविहारी नित्य सेव्य कारन ए मानौ॥
नाम रूप की रीति जानि ऐसी जिय धारौ।
इन तें जब अनुराग होय श्रीकृपा निहारौ॥
नाम रूपतें प्रीति रीति परधाम लेन की।
अति ही सुगम उपाय करी प्रभु स्वपद देन की॥६९॥

जे बाधक इन माहि सुनौ नीकैं मन लाई।
त्यागे तिनको संग नीति ऐसी सुखदाई॥
जे त्यागत हैं नाहि छेम पूरौ सुख चाहैं।
सर्प रहै घरमाहि संक औ हानि सदा हैं॥
औषधि चाहै पथ्य अन्यथा रोग बढ़ावैं।
तजि कुसंग हरि भजै साधु संमत श्रुति गावै॥७०॥

प्रथम बासना मूल रूप ताके द्वय गावैं।
परम सुद्ध है एक अपर अति असुचि बतावैं॥
साधु संग मिलि होय चाह हरि कैसे पावैं।
परम सुद्ध सो जान संत मन ताहि मनावैं॥
कामी कुटिल मलीन विषै आधीन सदा जे।
उपजैं तिनके संग चाह हठि नर्क प्रदाते॥७१॥

गुरु तैंलै उपदेस सकल विधि निश्चै कीजै।
हानि लाभ उरआनि चित्त विपरीति न भीजै॥
असद् वासना हेत अपर देवहि नहि ध्यावै।
निज कुटुंब तैं प्रीति सत्य दृढ़ता नहि ल्यावै॥
धन अभिलाष निवारि देह अभिमान गँवावै।
जरती आगि विचारि नारि के निकट न जावै॥७२॥

नर तन पाय विचार सार ऐसो सर्वोपरि।
भजिये सब तजि कृष्न चित्त निष्ठा दृढ़तर करि॥
सबको संमत जानि आपु जिय माहि विचारै।
सत्य असत्य निहारि वस्तु नीको उर धारै॥
मन इन्द्री गति हेतु देह व्यापार जहाँ लौं।
निरपै कीजै जाहि बांधिये नेह तहालौं।७३॥

माया जनित निकाय विश्व तामै सुख मानै।
होय अन्यथा रूप छिन छिन ताहि न जानै॥
इन्द्री सुख लव हेत अपर देवन हठि ध्यावै।
करै न मूढ विचार गर्भ नर्कै पुनि जावै॥
स्वान पूंछ गहि पार कहां अंबुधि को जाई।
जो नर आसा करै देव सुख तहाँ न भाई॥७४॥

सब को यह सिद्धांत कृष्न इच्छा जग होई।
कारण सो परिणाम तासु पर ईस न कोई॥
जगतनाथ प्रभु नाम कहैं निसि वासर प्रानी।
अन्य देव की सेव करैं पांवर अज्ञानी॥
ज्यों निज पति हित त्यागि नारि पर पुरुष लुभावैं।
जग निंदा तिहिं होय नर्क बसि चैन न पावै॥७५॥

देव कर्म के मीत नित्य अपनौ सुख भावैं।
अल्प विघ्न जौ लहैं देह धन वेगि नसावैं॥
अतिसै करि विश्वास भाव श्रद्धा दृढ़ सेवैं।
जो पावैं तिन लोक अंत गर्भै पुनि लेवै॥
सदा सूर्य कहँ सेय अरुन बिन पादहि देखो।
संभु अराधे नाम वृकासुर तथा विलेखो॥७६॥

हर वल्लभ अति बान तासु भुज कृष्न विदारे।
विश्व रूप सुरराज तोषि तन प्रान बिसारे॥
भज तैंई जौ विघ्न होय तौ नास देखियै।
करै कोउ अपमान क्रोध पुनि कहा लेखियै॥
तोऊ तिनतें प्रीति करैं मतिमंदमहा नर।
भजैं विरोधें मुक्ति देहिं तिन विमुख होंहिं खर।७७॥

काम क्रोध भय लोभ द्वेष संबंध नेह जो।
जिहि तिहिं भाँति लगाय चित्त श्रीकृष्न गेह सो॥
ऐसें प्रभु कहँ छाड़ि अनत जे मन भटकावैं।
भ्रमण करैं संसार कालत्रय शर्म न पावैं॥
निसि दिन माया फंद परि विमुख लहैं दुख भार।
धन्य प्रभू श्रीकृष्न हैं तऊ लगावैं पार॥७८॥

सुनौ सुहाती बात कहैं हम या प्रसंग मै।
जैसी जन पर कृपा बसै श्री जुगल अङ्ग मै॥
एक समय विधि सभा भरी सब ही तहँ आये।
करै उर्वसी नृत्य गान गंधर्व सुहाये॥
गंधर्वन मैं मुख्य चित्ररथ भूप कहावै।
उपवरहण अस नाम तासु सुत रूप सुहावै॥७९॥

कृष्न कथा सौं प्रीति कृष्न गुन नीकैं गावै।
जितनी कृष्न रहस्य भेद तिनके प्रगटावै॥
कृष्न भक्त वर छाय जुगल सुख नाम उचारै।
जुगलमाधुरी छटा हियें सुखसागर धारै॥
ब्रह्मा कही पुकारि रासमंडल की लीला।
उपवरहन कहु गाय सुनै सबही सुचि लीला॥८०॥

तब तिन कियो प्रनाम जोरि कर सीस नवायो।
महाराज मै धन्य आजु अतिसै सुख पायो॥
महिमा कृष्न बखान अपर को जानै जग मै।
सबको हित कल्यान कीजियै थापि सुगम मै॥
बड़े करैं जो रीति लोक उपदेश हेत है।
महाराज सरवज्ञ सकल हिय करिय चेत है॥८१॥

सुनियें करौं बखान कृष्न क्रीड़ा सुखदाई।
महारास की रीति छन्द बहु मुनि जस गाई॥
कीन्ह्यौ गान प्रबन्ध रास को रूपक छायो।
परमानन्द समुद्र सभा विधि सहित समायो॥
उपवरहन के हियें जुगल छवि छटा लखानी।
भयो प्रेम के वस्य नेमतन दसा भुलानी॥८२॥

अश्रु पुलक रोमांच कंठ गद्गद उर भीज्यौ।
गान प्रबन्ध अनीति जानि सबको मन खीज्यौ॥
विधि मान्यौ अपमान आपनौ सभा तथाही।
बोले अधिक रिसाय चतुर्मुख अपर जथाही॥
महाक्रूर दुरवृत्त मत्त उपवरहन एरे।
होय यथाविधि दंड तबै नासैं मद तेरे॥८३॥

इनहूँ पायो चेत देखि तब सभा अनैसी।
कोपागिन तें जरै सकल मुख बानी तैसी॥
उपवहरन जिय माहि गुनी तन प्रान गये अब।
अन्तरमुख करि वृत्ति कृष्न पदशरन भये तब॥
नाथो नाथ जनपाल जुगल मेरे हितकारी।
देव अगिन तें जरौं वेगि सुधि लेहु विहारी॥८४॥

जैसी आरति भई ताहि को कैसें गावै।
आरति बंधु दयालु स्याम हिय छोभ जनावै॥
भक्त कहावैं वत्स भक्तवत्सल हरि बानौ।
यामैं बहुत प्रमान रीति यह सब दिन मानौ॥
प्रगट्यौ तबै विमान सभा के निकट सुहायो।
मुरलीनाद सुनाय ताहि आगमन बतायो॥८५॥

अतिसै उदै प्रकास सभा विधि चकित निहारैं।
अरैं अगेक प्रनाम तेज देखत नहिं पारैं॥
सबके पाछे खड़ौ भक्त उपवरहन नामा।
जुगल रूप सो लखै तेज भीतर सुखधामा॥
कीन्हे दंडप्रनाम जोरि कर अस्तुति ठानी।
राधाकृष्न सरूप विमल बरने वर बानी॥८६॥

श्रीमुख गिरा उदोत भई सब कान परी जो।
रूप न दैखें कोऊ श्रवन सुनि चित्त धरी सो॥
उपवरहन मम प्रान भक्त यह निश्चै जानौ।
जिन्है एक गति मोरि मोहि तेई गति मानौ॥
ब्रह्मा भक्त न होय परै चौरासी जाई।
भक्त कोऊ तन होय मोहि सोई सुखदाई॥८७॥

जे तन लौं अभिमान त्यागि मेरे पद गहहीं।
निसि वासर हिय मांहि रूप मेरौं ते लहहीं॥
तिनही के मैं निकट रहौं ऐसी मम बानी।
दुर्लभ है यह रीति जात नहिं क्यौहूँ जानी॥
विविध वस्तु अभिमान मानि जग मोह बढ़ावैं।
ते मतिमन्द विमूढ़ मोहि सपने नहिं पावैं॥८८॥

अंतरध्यान विमान भयो ऐसें कहि बानी।
ब्रह्मा सभा समेत लाज बूड़े बहु पानी॥
अहो भक्त को रूप धन्य श्रीवदन बखान्यौ।
निज पदवी अभिमान मानि हम सो नहिं जान्यौ।
उपवरहन बैठाय निकट विधि मान बढ़ायो।
प्रभू कृपा को पात्र सोई सर्वोपरि गायो॥८९॥

तब विधि कियो विचार क्रोध सबके तन जोई।
देवन की यह रीति क्रिया कोउ व्यर्थ न होई॥
सो समेटि तिन नारि रची व्यभिचार सरूपा।
सबही तें पति भाव हिये तन छद्म अनूपा॥
विकसित ज्यौं वर कंज वदन तैसौ दरसावै।
श्रवन अमिय के तूल वचन रचना रसनावै॥९०॥

निज स्वारथ के हेत प्रीति सब अंग जनावै।
उरग नम्र ह्वै डसै उलटि विष देह चढ़ावै॥
तैसें सो करि प्रीति लोक परलोक नसावै।
ज्यौं विषलता विचित्र किये संग्रह दुख पावै॥
निंदा वेद पुरान करै ताकी अधिकाई।
विषै बहुत जग मांहि नारि सर्वोपरि गाई॥९१॥

सुनिये ताको हेतु अधिक बंधन ज्यौं नारी।
जितनी जगत उपाधि प्रगट याही तें सारी॥
शब्दादिक ए पंच विषै जग प्रबल कहावैं।
एक एक तें नेह लाय सर्वस्व गंवावैं॥
ते पाँचौं इक ठौर नारि के अंग बसैं निति।
पंचभूत के फंद परैं पुनि को पावत मिति॥९२॥

वचन काम के मंत्र सुने ताके वस होई।
रूप तिया को देखि कीट दीपक गति सोई॥
रस की कहियै कहा अधर अमृत थल गावैं।
गंध पाय नर मत्त भये मरजाद गवावैं॥
छाह परस जौ होय सफल जीवन निज लेखैं।
यातें बंधन अधिक जगत दृढ़ अपर न देखैं॥९३॥

जे नर इनको संग करै ते तिनते भारी।
निरधन तन बल छीन भये त्यागै बरु नारी॥
कामी वचन रचाय विषै को रूप नवोनौ।
श्रद्धा अधिक बढ़ाय हियें राखैं तिहि पीनौ॥
विष्ठा मै ज्यौं जीव परैं जैसो सुख मानै।
कुटिल विषै आधार ताहि सर्वस्व बखानै॥९४॥

देखौ तियको धर्म सुगम अतिसै सुखकारी।
भोगै विविध विलास विषै पावै गति भारी॥
नीच ऊँच दुरवृत्त क्रूर कोढ़ी कुविचारी।
मिथ्या असुचि विनासशील निश्चै निरधारी॥
ऐसेहु तन मध्य भाव ईश्वर पति सेवै।
इहाँ विषै नित भोग करै हठि सुगतिहु लेवै॥९५॥

साधन अमित प्रकार करैं मुनि वृन्द अनेका।
निरवासित हिय वृत्ति धारना सब दिन एका॥
संसै तौ न जाय सोइ बाधक अति होई।
पतिसेवा को धर्म सती जरि संक विगोई॥
याको करो विचार चित्त गोपेश्वर नीकें।
ललिता मृदु मुसुकाय कह्यो समुझै सुख जीकैं॥९६॥

महाराज सरवज्ञ आप निरधारि दीजियै।
संक न उपजै स्वल्प चित्त सो जतन कीजियै॥
कौन तिया को नाह धर्म सेवा पति को है।
सरनागत मोहि जानि भनौ रूपक सब जो है॥
ललिता जू तब कह्यो सुनौ गोपेश्वर बानी।
यामैं सदा प्रमान वचन श्रीमुख परमानी॥९७॥

जुगलविहारी नित्य चरन पंकज हित सेवै।
अनवधि सक्ति अपार पार कौ तिनकहिं लेवै॥
तिनमैं जानो सक्ति एक माया जिहि नामा।
मूल प्रकृति तिहि कहै अंड कोटिन की सामा॥
ताके उभय स्वरूप ईस इच्छा तें होवैं।
अपरा कहियै एक परा त्यौं दूसर जोवैं॥९८॥

अपरा को जो रूप ताहि ऐसें मन आनौ।
भूमि आप औ अनल वायु नभ पंच पिछानौ॥
अहंकार मन बुद्धि मिले ये अष्ट कहावैं।
अपरा याकौ नाम प्रकृति कहि वेद बतावैं॥
चेतन जाकौ अंग जीव कहि जाहि बखानै।
परा प्रकृति सो होय उभय मिलि कारज ठानै॥९९॥

जाल झरोखा माहि किरनि सूरज की आयें।
तामैं देखे परैं उड़त रज कन बहुतायें॥
ऐसे ही श्री अंग रोम के छिद्रन माहीं।
अमित कोटि ब्रह्मांड भ्रमैं ते गिनि किमि जाहीं॥
स्वामी इच्छा पाय सक्ति जो गाय बखानी।
रचना अण्ड अनेक करै निज प्रभु सुखदानी॥१००॥

दोहा—उभय प्रकृति के अंग ए, जितने विश्व लखाहिं।
नित्यविहारी एक पति, अपर तिया गति जाहिं॥१॥
जो अपनो पति त्यागि कै, नारि भजै ततु और।
उभय लोक तें भ्रष्ट सो, कहूँ न पावै ठौर॥२॥
जे अपनो पति सेवहीं, लिये पतिव्रत धर्म।
उभय लोक ते जस लहैं, भरैं अखंडित सर्म॥३॥
अपर धर्म सब त्यागि हठि, गहैं नाथ पद एक।
सो अनन्यता जानियैं, पूरन बहै विवेक॥४॥

सेवक सोई सराहियै, नाथ हाथ गति होय।
सेवा सुख तें सुख भरैं, अपर वृत्ति नहिं कोय॥५॥
जिनकी संगति मैं परैं, अपनो धर्म घटाय।
ते बाधक दृढ़ जानिये, उनके निकट न जाय॥६॥
जौ व्यभिचारिन नारि के, संग सती मन देइ।
अजस लहै या जगत मैं, नर्क वास हठि लेइ॥७॥
जो निज धर्म बढ़ायवैं, चाह उठै मन माहिं।
संगति करै विचारि कैं, निसदिन सुख सरसाहिं॥८॥

जे पाछे बरनन किये, जोवन मुक्ति बखानि।
लागि देखि अनुराग दृढ़, तिनतें करै पिछानि॥९॥
ते साधक या धर्म के, जे अनुरागी लोग।
स्वामी सेवा ते लहैं, सकल भाँति सुख भोग॥१०॥
स्वर्ग भोग सुख धरा को, एक छत्रपति होय।
ब्रह्मासन पाताल सब, लाभ लहै जो कोय॥११॥
जोग सिद्धि बहु भाँति की, मुक्ति मिलै सब आय।
जे जे सुख श्रवनन सुने, कहे पुरानन गाय॥१२॥

जुगल चरन अनुराग बिनु, ए सबही दुख मूल।
विधवा ज्यौं शृंगार निज, लखि पावत हिय शूल ॥१३॥
जुगल माधुरी सिंधु रस, जिन कीन्हें मन मीन।
पंचामृत रसहू परैं, तजैं प्रान ह्वै दीन ॥१४॥
अंबुद झरि लागी रहै, भरै नीर बहु ठौर।
चातक स्वाती बूंद तजि, वृत्ति गहै नहिं और ॥१५॥
ऐसे रसिक सुजान जे, कीजै तिनतैं प्रीति।
सेवक सेवा सेव्य सुख, जानै नीति पुनीति ॥१६॥
संसै निज निरवारि सब, लच्छ करै दृढ़ इष्ट।
देखै हियैं विचारि कै, त्यागै भाव अनिष्ट ॥१७॥
जहाँ जहाँ मन की अटक, तहाँ तहाँ तें खैंचि।
मिथ्या तन व्यवहार जग, तासों राखे ऐंचि ॥१८॥
अन्य वासना चित्त तें, ज्यों ज्यों होय विदूर।
परिचै इष्ट स्वरूप सों, त्यौं त्यौं बाढ़े भूरि ॥१९॥
अति विसुद्धता बुद्धि की, धीरज निश्चल होय।
सब्दादिक ते राग पुनि, देखि परै नहिं कोय ॥२०॥
बैठे थल एकांत मैं, काय वचन मन धीर।
इष्ट सेयवे जोग्य जो, भावैं भाव सरीर ॥२१॥
सेवै चित्त लगाय कै, सेवा विधि मन ल्याय।
अनवधि सुख पावै सही, नित नूतन अधिकाय ॥२२॥
गोपेश्वर अवकास लहि, बोले वचन बहोरि।
महाराज कछु बीनती, मैं भाखौं कर जोरि ॥२३॥
सुन्यौ सेव्य को रूप हम, साधक बाधक जेउ।
सेवक सेवा अंग अब, कहियै मोसौं तेउ ॥२४॥
सेवक तन सुचि जो कहैं, सेवा विधि जस होय।
करुना करि भाखौ सकल, संसै रहै न कोय ॥२५॥

छप्पै—गोपेश्वर के वचन सुने अतिसै सुखदाई।
श्रीललिता दृग कोर सखिन की ओर जनाई ॥
संमत सब को जानि हियें निज कियो विचारा।
जुगल चरन उर आनि वदन वर नाम उचारा ॥

प्रभु इच्छा जो होय कियें सोई सुख होई।
जीव लहै कल्यान जतन कीजै अब सोई ॥१॥
श्रीललिता हँसि चितय दया करुना वस सानी।
अमिय किरिनि सी श्रई वदन-मंडल ससि बानी ॥
गोप शब्द को अर्थ कहै रक्षा सब गाई।
सो रक्षा प्रभु कृपा करै बहु जगत सुहाई ॥
तिन प्रभु के श्री अंग हस्त फल जन्म तुम्हारौ।
ऐसे मुख के वचन सुनत सुख उपजत भारौ ॥२॥
आली री सब सुनौ बात जो मो मन आई।
अंगी अंग सुरीति चित्त समुझैं सुखदाई ॥
अंग व्यक्ति को नाम व्यक्ति जाकी सो अंगी।
अंगन तें उतपत्ति अंगजा सखी सुरंगी ॥
अंगन को जो धर्म ताहि मन माहिं विचारो।
नैनहूं तन रीति देखि कीजै निरधारौ ॥३॥
कर चरनादिक अंग सकल अंगी तन सेवैं।
गुन लक्षन तें नाम प्रगट सेवक अस लेवैं ॥
या तें मुख्य प्रमान अंग सेवक सब गावैं।
निज अंगन तें प्रीति अधिक सो हेतु लखावैं ॥
जे जे अपर बखानि पदारथ बहु विधि गाये।
नाते भाँति अनेक निकट अतिसै जो पाये ॥४॥
संग्रह सबको हाय हेतु ताकौ यह जानो।
निज अंगन सुख चाहि गहै अंगी लखि मानो ॥
जो अपने अनुकूल होय तौ संग्रह होई।
जानि परै प्रतिकूल त्यागि देवै सब कोई ॥
वक्र अंग जो हाय कहो ताको का कीजै।
जतन किये सुख मिलै आन विधि का जन सीझै ॥५॥
सेवक जीव सुजान रूप अपनौ यह जानै।
अंसी अंस लखाय सोइ श्रीवदन बखानै ॥
अपनो धर्म बिसारि शर्म कोऊ नहि पावै।
श्रुति संमत सद्ग्रंथ संत अस नीति दृढ़ावै ॥

यामै बहुत प्रमाण कहैं इहि दृढ़ता लागी।
समुझै तौ सुख लहै अन्यथा नर्क विभागी ॥६॥

सेवक को यह रूप सुनौ अब लच्छन ताके।
ए लच्छन परिपाक भए अधिकारी जाके॥
इंद्री विषय वियोग प्रथम दम साधन करई।
मन बुद्धि चित्त अहंकार असत की ओर न धरई॥
शीत उष्ण तन धर्म सुख दुख जो कछु आवै।
दुःख कष्ट जिय जानि सुख सौं प्रीति न लावै॥७॥

छिन छिन नासै देह जगत सो साँच न मानै।
दुःख हेतु परिणाम कर्म हरि विलग विजानै॥
भरतखंड नर देह साज दुर्लभ बनि आयो।
हरि गुरु कृपा निहारि द्वार अपवर्ग सुपायो।
चिंतामनि लै हस्त जथा सठ स्वान विडारै।
हरि मिलवे की सौंज पाय तन विषै सँभारै॥८॥
ताको कष्ट अपार बार बहु चित्त विचारै।
कृमि विट भस्म सरूप तऊ बड़ काज सुधारै॥
जौ लौं देह समर्थ रहै तौ लौं मन चेतै।
काल व्याल के वदन परयौ का रोयें खेतै॥
त्यागै तन अभिमान मान हिंसा परपीड़ा।
निंद्य करम लखि डरै गहै तातें अति व्रीड़ा॥९॥
भूत द्रोह नहिं करै भरै करुणा मन माहीं।
सकल भाँति संतोष खेद पावै कोउ नाहीं॥
हर्ष अमर्ष विमुक्त वासना उभय निवारै।
अति पवित्र ह्वै दत्त नेह आरंभ विसारै॥
सत्रु मित्र को भाव भाव सुभ असुभ जहा लौं।
कारन सबकी देह अहै गुन दोष तहाँलौं॥१०॥
ऐसो जिय धन मान आनि श्रद्धा रुचि होई।
हरि मिलिवे की चाह भई अधिकारी सोई॥
अधिकारी उपदेस जोग्य सब संमत ऐसो।
कीजै यथा प्रकास तथा तहँ उपजै तैसो॥

बिनि अधिकारी भयें वस्तु सुख देइ न पूरौ।
ऊपर मै ज्यों बीज परै उपजै नहिं मूरौ॥११॥
साधु संक हठि करै गहै अधिकार मलीनौ।
नाम लेत सुचि होय संत हरि नेह नवीनौ॥
जहाँ जहाँ मन बोध होय संकोच न ल्यावै।
ससै सब निर्मूल करै ज्यों थिरता पावै॥
थिरीभूत ह्वै चित्त जतन जो कीजै भाई।
होय वस्तु की सिद्धि अन्यथा कष्ट लखाई॥१२॥

यह सेवक कौ रूप सिद्ध साधन करि चाहै।
सेवा पिय अधिकार भयें अनवधि सुख लाहै॥
गोपेश्वर सुनि बैन चैन अतिसै जिय पायो।
स्वामी सेवक रूप जथाविधि सो मन आयो॥
साधक बाधक सुने सकल संसै हिय टारी।
कारन परम निदान जानि समुझौ निरधारी॥१३॥

अब सेवा अभिलाष चित्त अति भारी।
करि प्रनाम करजोरि सीस नय गिरा उचारी॥
अहो नाथ जस कृपा आपकी जन पर देखैं।
उपमा दीजै जाहि अपर नहिं कोउ विलेखैं॥
अपने दुख तें दुखी होहिं सबकी यह रीती।
दीनबन्धु जो होय करै आरत सौं प्रीती॥१४॥

बिना आप जन ताप समन दूजौ को करई।
वदन चंद्र तें किरिन सदा वचनामृत सरई॥
वस्तु जोग्य अधिकार आपनौ मैं नहि देख्यौ।
कृपा रावरी प्रौढ़ एक सब भांति विलेख्यौ॥
वहि निकट जो रहै शीत तम भीति न होई।
करुनामय श्री डीठि सकल साधन फल सोई॥१५॥
सो भरोस उर आनि करौं विनती प्रभु पाहीं।
आपनी ओर निहारि लाज उपजत मन माहीं॥
लाज नेह को सग रहै नहि कोटि उपायें।
कारज लखि हानि बनै हठि ताहि बहायें॥

उर बाढ़्यौ अभिलाष कहौं सो सकुच बिसारी।
करुनासील स्वभाव आपको नित्य निहारी॥१६॥
सेवक कौ दृढ धर्म आप सेवा कहि भाषी।
सो सेवा कौ रूप सुनों मैं मन अभिलाखी॥
जथा बोध मम होय जतन तैसी अब कीजै।
अपने धन मैं दान कछू दीनन को दीजै॥
दान कियें धन वृद्धि होत ऐसी श्रुति सुनियें।
धनी बिना को दान करै हिय में अस गुनियें॥१७॥
श्रीललिता हसि मंद चितै मन मोद बढ़ायो।
गोपेश्वर के वचन श्रवन सुनि अति सुख पायो॥
नित्य विहारनि कृपा सकल विधि कारज साधै।
को दुर्लभ अस वस्तु जाहि सुमिरें नहिं लाधै॥
धन्य भाग्य सो होय हिये जाके यह आवै।
नित्य विहारी जुगल चरन पंकज रस पावै॥१८॥
यह विचारि मन माहि कहन को इच्छा धारी।
गौर स्याम अभिराम सुमिरि उर नित्य विहारी॥
आनद सिंधु अगाध हियो वर वचन तरंगा।
सुनत लहै जन अचल जुगल पद प्रीति अभङ्गा॥
खुले जुगल पद ओष्ठ दंत छबि छटा लखानी।
सहचरि वृन्द अलेख कुमोदनि सी विकसानी॥१९॥
वचनामृत धुनि धार श्रवन भाजन निज कीन्हे।
तृषावन्त के प्राण अमिय पाये ज्यौं पीनै॥
जन्म दरिद्री रंक परम निधि जैसे लूटे।
वर्ण वृत्तिवर अंग स्वल्प तैसें नहिं छूटै॥
मानौ धरैं समाधि सबै तन मन तहँ लाये।
जथा वासना जन्म अमित बीतें हिय पाये॥२०॥

सोरठा—श्री ललिता निज हाथ, ताहि समैं ऊँचौ कियो।
नायो सबही माथ, वचन प्रगट मंगल भयो॥१॥
राधा राधा नाम, दंड एक सुमिरन कियो।
अति पायो विश्राम, उच्चार लागो कहन॥२॥

सेवा को जो रूप, सुनो सहेली परम प्रिय।
दंपति सुखद अनूप, जुगल माधुरीप्रद सोई॥३॥

छप्पै—प्रथम भई हम प्रगट रीति ताकी अस जानौ।
जुगल विहारी नित्य प्रिया इच्छा वस मानौ॥
श्रीस्यामा निज कंठ माल सो धरी उतारी।
करुना रस परिपूर कोर दृग नेक निहारी॥
ता माला तैं आदि ललित मेरौ तन प्रगट्यौ।
या तें ललिता नाम भयो श्रीमुख तें उचट्यौ॥२१॥
देखे जुगल सरूप परम सिंघासन राजें।
कीन्ह्यो मन उन मान भई मैं काके काजें॥
तब श्रीस्यामा मंद विहसि मेरी दिसि हेरी।
जानि परयो सब भाव मोहि हिय मिटी अंधेरी॥
कीन्हें दंडप्रनाम बहुरि पद बंदे जाई।
जुगल चरन वर रेनु हिये दृग मस्तक लाई॥२२॥
मैं भाख्यौ कर जोरि नाथ सेवा के हेतू।
प्रगट भयो मम रूप चित्त उपज्यौ अस चेतू॥
सेवा भांति अनेक एक मैं सो किमि होई।
श्री आज्ञा जो होय सीस धरि करिवें सोई॥
श्री मुख तें वर वचन भयो माला यह जोहै।
याही तें तुम भई अपर चाहौ सब सोहै॥२३॥
श्रीराधा मैं नाम सप्तधा जीहा गायो। अष्टसखी प्रकट
सात सखी ए प्रगट भई अतिसै सुख पायो॥
जैसौ मेरौ रूप सप्त ए तैसौ जानौ।
अहै अंगजा सकल नाम दूजौ श्रुति आनौ॥
एक एक तें भई अष्ट जूथापति जूथप।
गुन लच्छन सुनु नाम सबै सेवा की सूथप॥२४॥
ललिता मेरौ नाम वरन अंग गौरोचन सो।
प्रिया प्रसादी लहौं धरौं पट भूषन तन सो॥
सेवौं जुगल सरूप सदा तिनकौ सुख चाहौं।
बीरी रुचिर खवाय मुख्य सेवा सब लाहौं॥

अष्टसखी उत्पन्न भईं ए तन मेरे तैं।
सेवा को अधिकार लहैं नित मम नेरे तैं॥२५॥
सुनियें तिनके नाम सुखद श्रीमुख के भाखे।
श्रवन कियें फल देहिं जुगल पद मन अभिलाखे॥
रत्नप्रभा रति कला सुभा कलहंसी नामा।
कहै कलापिनि तथा सौभगा सब गुनधामा॥
मन्मथ मोदा साँतवी सुमुखी अष्ट प्रमान।
पट भूषन सो धारहीं मम प्रसाद गहि मान॥२६॥
ए मेरे जो दच्छ भाग अति सुन्दरि राजैं।
नाम विसाखा कहैं देहदुति दामिनि लाजै॥
भूषन वसन सुहात अंग श्रीतन के पहिरे।
सेवैं दंपति नेम प्रेम हिय अतिसै गहिरे॥
वसन रंग रुचि लखि जुगल चुनि पहिरावैं भाय।
सेवा इनकी मुख्य यह करैं सकल सुख पाय॥२७॥
अष्ट सहचरी प्रगट भई इनके अंगन ते।
माधवि मालति कूंजरी हरिनी जानौ ते॥
गंधरेखा सुभानना सौरभि चपला कहियै।
दंपति चरन सरोज प्रीति दृढ़ इन हिय लहियै॥
लहै विसाखा अंग के भूषन वसन प्रसाद।
सेवा तिनके संग मिलि करैं भरैं अहलाद॥२८॥
लखौ विसाखा दच्छ भाग तीजी सुखरूपा।
चंपकलता सुनाम देहदुति तथा अनूपा॥
भूषन वसन प्रसाद लाड़िली तनके धारैं।
जुगल माधुरी छटा नित्य जीवन आधारैं॥
भोजन सकल प्रकार विधि रचैं जानि रुचि हेत।
सेवा इनकी मुख्य यह करैं सबै दै चेत॥२९॥
अष्ट अंगजा भई अंग इनके तें जानौ।
मृगनैनी मनिकुंडला चंद्रकला सुचि मानौ॥
अपर सुचरिता मंडनी चंद्रलता रसालिका।
मिली समंदिरा अष्ट सब गुन रूप मालिका॥

चंपकलता प्रसाद सदा पट भूषन सेवैं।
तिनही के मिलि संग सकल सेवा सुख लेवैं॥३०॥
चंपकलता विभाग दाहिने जो ए देखौ।
गुन विचित्र वर धाम नाम चित्रा अस लेखौ॥
कुंकुम कैसी कांति अङ्ग पट भूषन राजैं।
प्रिया प्रसादी लहै गहै तेई तन साजैं॥
नीरपान तें आदि रस तिनमें अधिक प्रवीन।
सेवा इनकी मुख्य यह रहैं सबन लवलीन॥३१॥
अष्ट सहचरी भईं अङ्ग इनके ते जो हैं।
सुनिये तिनके नाम सुखद अतिसै श्रुति सो हैं॥
प्रथम रसालिका तिलकनी सुगंधिका नामा।
शौरसेना मेना नागरी ए मलिका अभिरामा॥
नागवैनिका तथा अष्ट ए अति सुखदाई।
चित्रा अङ्ग प्रसाद वस्त्र भूषन तन लाई॥३२॥
सेवैं जुगल सरूप संग चित्रा के नीकैं।
सेवा ही आधार सार जानै जीकैं॥
चित्रा दाहिनी ओर लखो गोरोचन तन छवि।
तुंगविद्या वर नाम अहै सब विद्या की कवि॥
भूषन वसन प्रसाद लाड़िली देहि सुघरई।
राग रागिनी गान मुख्य सेवा सब करई॥३३॥
अष्ट सहचरी भई अंग इनके ते जेऊ।
एहैं तिनके नाम सुनौ सुखदाई तेऊ॥
मंजु मेधा सुमेधिका तनुमध्या गुनचूड़ा।
बरांगदा मधुरा मधुस्यंदा मधुरेक्षना रूढ़ा॥
भूषन वसन प्रसाद तुंगविद्या के दीने।
धरि सेवैं तिन संग जुगल सेवा मन भीने॥३४॥
ए मेरे दिसि बाम सकल शोभा की खानी।
इंदुलेखा शुभ नाम कोक मूरति प्रगटानी॥
अंग वरन हरताल रंग पट भूषन जोहैं।
प्रिया प्रसादी लहैं सुखद धारे तन सोहैं॥

कोक कला की रीति जुगल मन मोद बढ़ावैं।
इन सेवा यह मुख्य कोस अधिकारिनि गावैं ॥३५॥
अष्टसखी ए भई अंग इनके तें रूरी।
समुझै तिनके नाम प्रीति उपजै उर पूरी॥
चित्रलेखा मोदनी मंदालसा भद्रतुंगा।
रसतुंगा गानकला सुमंगला चित्र अगा॥
पटभूषन तन ते धरैं इंदुलेखा जे दीन।
सेवैं तिनके संग मिलि दंपति सेवा लीन॥३६॥
इंदुलेखा दिसि वाम रंगदेवी ए जानौ।
कमल केसरी रंग अंग की कांति पिछानौ॥
धरै प्रसादी सदा लाड़िली भूषन वासा।
चित्र लिखन की सक्ति अलौकिक करै प्रकासा॥
भूषन मनिमय कुसुम के रचि दंपति पहिराय।
सेवा मुख्य प्रकार द्वै करैं सकल मन लाय॥३७॥
अष्ट सहचरी प्रगट अंग इनके तें जोहैं।
सुनियें तिनके नाम चित्त मोदक सब सोहैं॥
कलकंठी ससिकला कमला मधुबिंदा सुंदरि।
कंदर्पा प्रेममंजरी कंजलता गुनमंदरि॥
पटभूषन तेई धरैं रंगदेवी जे देहि।
सेवैं तिनके संग मिलि जुगल सेई सुख लेहि॥३८॥
रंगदेवी के वाम ओर सो नाम सुदेवी।
नित्य किसोरी दत्त वस्त्र भूषण हित सेवी॥
कच गूंथन की रीति सुघर सृंगार बनावैं।
सारो सुवा पढ़ाय चित्त अति मोद बढ़ावैं॥
जुगल अंग श्रीमाधुरी सेवैं प्रेम समेत।
सेवा इनकी मुख्य द्वै करैं सबै भरि हेत॥३९॥
प्रगट अष्ट जे भई अंग इनके ते सहचरि।
जेहै तिनके नाम श्रवन सुनि चित्त लीजै धरि॥
कावेरी मनोहरा चारु कवरि अभिरामा।
मंजुकेसि केसिका हार हीरा वरनामा॥

महाहीरा मिलि अष्ट ए दत्त सुदेवि प्रसाद।
सो धरि तिन संग सेवहीं जुगल भरी अहलाद॥४०॥
एक एक के संग अष्ट ए तत्सम मानौ।
तिनहूँ मैं संग एक कोटि त्रय जूथप जानौ॥
द्वादश कोटि समेटि ताहि कहि वृन्द बखानै।
सप्त कोटि जे वृन्द तिन्हैं बुध जूथ प्रमानै॥
ऐसे जूथ अनेक रहैं जाके आधीना।
जूथप संज्ञा तासु भनै श्रुति संत प्रवीना॥४१॥
हमै विसाखा आदि अष्ट ए मुख्य बखानी।
एक एक के संग अष्ट सहचरि परिमानी॥
तिन अष्टन मैं एक एक संग ऐसे कहँई।
जूथापति जे सखी कोटित्रय आज्ञा वहँई॥
एक अंग परिमान करै जो विधि मन लाई।
सहचरि अमल अपार आयु बीतं न गनाई॥४२॥
जौं जलनिधि की लहरि गने कोउ अंत बतावैं।
तौ सहचरि परिमान अवधि बानी गति पावैं।
सेवा जिनकैं नेम प्रेम सेवा सुख जानै।
सेवैं जुगल सरूप करैं सेवा रस पानैं॥
दंपति लाड़ लड़ाय हियं हरखैं सुख सरसं।
आनदसिधु अगाध मग्न ए ऐसो दरसैं॥४३॥
जुगलविहारी नित्य परम महिमा जिन जानी।
तिनकैं हियं न होय संक भटकैं सब प्रानी॥
कोटि कोटि ब्रह्मांड उदै थिर ह्वै विनसाहीं।
भृकुटी कोर विलास जासु समुझौ मनमाहीं॥
अस विचारि चित धारियं सेवा जुगल सरूप।
सब साधन की सिद्धि यह दृढ़ सिद्धांत अनूप॥४४॥
गोपेश्वर ह्वै मुदित चित्त अतिसै सुख पाया।
बानी विनय जनाय जोरि कर मस्तक नायो॥
बोले वचन विचारि सकल हिय परम सुहातौ।
सेवा सब निरधारि सुनै अस मन अकुलातौ॥

महाराज मम बुद्धि स्वल्प ये बात दुरूहा।
जानि परयौ कछु अंग रावरी कृपा समूहा ॥४५॥
बिनु जानै नहिं सक होत अस मोति बखानै।
सो संसै जो मेट परम गुरु ताहि प्रमानै॥
जो संसै उ भई करौं सो प्रकट निवेदन।
श्रीमुख सुधा प्रमान वचन सुनि मेटौ वेदन॥
सेवा समै सुहावती समै काल को अंग।
काल प्रकृति के संग है सो इतनाहि प्रसंग ॥४६॥
कला काष्ठा पलहु दंड मिलि जाम कहावैं।
अष्टजाम कौ भाव दिवस रजनी कहि गावैं॥
पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष, काल के अंग बखाने।
कृपा सकल निर्वाह होत इनहीं के जाने॥
त्रिगुण सृष्टि वस काल के विधि ब्रह्मांड अलेह।
काल प्रकृति गुन पर सदा आयु कहैं थल एह ॥४७॥
जैसे आज्ञा होय परम सेवा सुखदाई।
कहियै ताकी रीति करैं स्यौं चित्त लगाई॥
संसै जो हम कियो बुद्धि अपनी अनुसारैं।
जोग्य अयोग्य प्रमाण वचन राउर निर्द्धारैं॥
सकल अंग पूरी अमल दंपति अति सुखदेइ।
सेवा सोइ बखानियें सेवक मुदप्रद सेइ ॥४८॥
गोपेश्वर के वचन सुने श्री ललिता हरषीं।
जानि परयौ हिय भाव अधिक सेवा रुचि सरसीं॥
दै आदर सनमान विहँसि बानी मृदु बोलीं।
संसै की जे गांस मुदित ह्वै ते सब खोलीं॥
गोपेश्वर संसै सोई परमानंद स्वरूप।
निर्विकल्प निज चित्त करि सेवै जुगल सरूप ॥४९॥
लख्यौ लाड़िली कृपा भाव ऐसो तुम पायो।
सुनियै समै सरूप जथाविधि इहाँ सुहायो॥
ससि सूरज नक्षत्र मास ऋतु वर्ष पक्ष द्वै।
लवनिमेष परमानु दिवस निसि घटी जाम ह्वै॥

वर्तमान जिमि रहैं करैं सेवा एहि ठोरी।
तिनको सुनौ सरूप जुगल महिमा लखि ओरी ॥५०॥
ऐसें संसै करी प्रथम जब हम प्रगटानी।
तबहीं भई उपाय परम सेवा सुखदानी॥
कृपादृष्टि की कोर जबै श्री जू हँसि हेरी।
हमरे हियें अपार कला प्रगटी बहुतेरी॥
जैसें कियौ प्रबंध हम काल अंग निर्माय।
समै समै सेवा जुगल होय अधिक सुख छाय ॥५१॥
सहचरि अमित अपार प्रगट सेवा के काज।
सेवैं ते सब भांति सकल सेवा सुख साज।
इंदुलेखा तन अपर धरे ससि को नित सेवैं।
जा छिन जो रुचि लखैं तथा मृदु दै सुख लेवैं॥
निशि शोभा के चिह्न जे उडगन आदि अनेक।
इनकी सहचरि तथा ह्वै सेवैं सहित विवेक ।५२।
तुंगबिद्या उत्तुंग तेज तन दूसर कीन्हे।
सेवैं जुगल सरूप देखि रुचि रवि गति लीन्हे॥
जूथापति जे कही सहचरी इनके संगा।
दिन सुखमा ज्यौं लहै भई सेवैं तस अंगा॥
अनु प्रमाण तें आदि जे काल अंग जुगमंत।
चित्रा की जे सहचरी सेवैं तथा समंत ॥५३॥
गोपेश्वर निर्द्धारि बात समुझौ मन ऐसी।
नित्यविहारी जुगल करैं इच्छा जब जैसी॥
तैसो होय सरूप सखी सब सेवा करहीं।
दंपति मोद बढ़ाय आप ताही सुख भरहीं॥
हिय को भाव विचार जिय तैसौ प्रकट दिखाय।
समै समै सेवैं सबै आनद सिंधु समाय ॥५४॥
गोपेश्वर सुनि प्रश्न कियो निज मस्तक नाई।
अपनो भाग्य सराहि कृपा श्रीगुरु उर आई॥
अष्टजाम की रीति जथा सेवा सुखदाई।
दया कोर जन ओर हेरि कहियै सब गाई॥

जैसें बुद्धि प्रवेश मम लहै गहै मन सोय ।
दृढ़ संमत जो आपको सकल अंग सिधि होय ॥५५॥

अरिल्ल—सुनि गोपेश्वर बैन चैन श्रीललिता पायो ।
धन्य किशोरी कृपा समुझि मन ही सिर नायो ॥
जुगल चरन छवि छटा सुमिरि सब भांति जुड़ानी ॥श्रीराधे॥
अमिय धार सुखसार कही जी हौं असवानो ॥१॥
साधु मिलन जब होय सफल सोई छिन जानो ।
गोपेश्वर आनंद अधिक दोऊ दिसि मानो ॥
रसिक संत को प्रश्न वस्तु जोई प्रगटानै ॥श्रीराधे॥
उत्तर दृढ़ सिद्धांत भयें अनवधि सुख छानै ।।२॥

अहो परम सुख दैन प्रश्न सेवा को कीन्हौ ।
बिनु सेवा निज नाथ रूप काहू नहि चीन्हौं ॥
सुनियें सेवा मूल प्रभु सेवक मुददाई ॥श्रीराधे॥
नित्य विहारी जुगल कृपा जैसें हम पाई ॥३॥
परमधाम गोलोक सप्त मंडल अनमाये ।
बसैं भक्त सब ठौर प्रभू सेवैं चित लाये ॥
कारन एकै भक्ति पंच कहि भाव बखानै ॥श्रीराधे॥
च्यारि भाव की रीति चतुर मंडल परिमानै ॥४॥
वलय तीनि जे कहैं तहां सहचरि परिचारा ।
गोप्य रहस्य निकुंज केलि सुखसिंधु अपारा ॥
वृंदावन ता मध्य जहाँ विहरत पिय प्यारी ॥श्रीराधे॥
सेवैं सखियाँ नित्य भाव शृंगार सुधारी ॥५॥

अष्टजाम को रीति जथाविधि सो अब सुनियें ।
नीकें मनमैं धारि ताहि पाछैं हिय गुनियें ॥
सेवा को अधिकार मुख्य हम अष्टन हाथें ॥श्रीराधे॥
अपर सहचरी अष्ट अष्ट सब ही साथें ॥६॥
तिनकें संग अनेक जूथ पालक बहु वृंदा ।
दंपति लाड़ लड़ाय लहैं सगरी सुख कंदा ॥
इनमैं जिनतें प्रीति बढ़ै अपने मनमाहीं ॥श्रीराधे॥
रहियै तिनके लाड़ नेम सेवा सुख ताहीं ॥७॥

अपर सुनौ वृत्तांत अष्ट जे हमतें आदी ।
संप्रदाय जो लहै भाव सहचरि प्रतिपादी ॥
तौ निज गुरु के संग होय आचारज सेवै ॥श्रीराधे॥
सेवा रुचि अभिलाष मांगि तिन ही तें लेवै ॥८॥
आचारज तें अपर सप्त हम अष्टन माहीं ।
जिनतें प्रीति प्रतीति हिये श्रद्धा अधिकाहीं ॥
प्रथमाचारज सेय प्रसन्नता तिनकी लेवै ॥श्रीराधे॥
निज मनको दृढ़भाव प्रगट उनसो कहि देवै ॥९॥

आज्ञा तिनकी पाय अधिक जातें मन लागै ।
तब ताके मिलि संग लहै सेवा सुख पागै ॥
अपने करि द्वै रूप भाव ऐसो उन मानै ॥श्रीराधे॥
आदि अचारज निकट ब्रह्म वेलासन मानै ॥१०॥

बहुरि निसीथे सैन समै पद वंदै तिनके ।
सेस काल नित रहै संग सौंपैं गुरु जिनके ॥
गुरुता पूज्य प्रभाव अष्ट एकै सम जानै ॥श्रीराधे॥
मनकी अटक विचारि अचारज हू सुख मानै ॥११॥

मम पाछे यह लखौ चवर जाके कर सोहै ।
अपर हस्त वर पानदान मेरी गति जोहै ॥
स्यामानुगा सुनाम रंगदेवी की आली ॥श्रीराधे॥
इन कीन्ही अस रीति प्रीति मो पद दृढ़पाली ॥१२॥
संप्रदाय नहि लहै भाव सहचरि प्राचीना ।
दृढ़ उपजै मन प्रीति होइवैं एहि पद लीना ॥
जिनके मुखतें गहैं जुगल सेवा सुभकारी ॥श्रीराधे॥
तिनहीतें गुरभाव सिद्धि कीन्हे अधिकारी ॥१३॥

अनायास जौ हियै उपज आपैतें होई ।
संस्कार प्राचीन जानियैं दृढ़तर सोई ॥
कैसेहूँ मन दियै जुगल पद सेवा माहीं ॥श्रीराधे॥
पावै नित्य विहार अचल संसै कछु नाहीं ॥१४॥

या विधि दृढ़ सिद्धांत समुझि मन निश्चै कीजै ।
जो सेवा की रीति तहाँ ऐसें चित दीजै ॥

डेढ़जाम निसि गयें अचारज सेइ सुवावै ॥श्रीराधे॥
दै परिदच्छिन दंडप्रणाम करि बाहिर आवैं ॥१५॥
जहाँ जहाँ निज मेल सहचरी जे गुनभारी।
तहाँ तहाँ पुनि सेइ सैन को समै संभारी॥
विदा मांगि दै मोद नाय सिर हरें धरै पग ॥श्रीराधे॥
अपनी सहचरि संग लियें निज कुंज गहें मग ॥१६॥

अपनो जहाँ निवास आय ता कुंज दुवारै।
फिर ठाढ़े ह्वै जोरि हस्त श्रीकुंज निहारैं॥
दंपति सैन सुधाम आनि उर सीस नवावै ॥श्रीराधे॥
अस कहि जीहा नाम सदन भीतर तब जावै ॥१७॥

भूसन वसन उतारि पाद कर मुख निज धोवैं।
वरआसन पर बैठि हियें दंपति छवि जोवै॥
ता पाछैं शुभनाम जुगल श्रीराधा कृष्णा ॥श्रीराधे॥
कछू बार उच्चार करै पुनि राखै तृष्णा ॥१८॥

सेवैं जिनके संग सदा पीतम श्रीप्यारी।
पायो महा प्रसाद हस्त तिनकै सुभकारी॥
कंचन चौकी विसद तासु पै सो लै धारै ॥श्रीराधे।
जे जे अपने साथ भाग तिनकौ निरवारैं ॥१९॥

जे अधिकारी अपर होंहिं श्रीमहाप्रसाद के।
सबही कौं दै मोद करै भाजन तत स्वाद के॥
तब निज भाग्य मनाय आपु सेवैं धनि धनि कहि। श्रीराधे॥
इच्छा अधिक बढ़ाय तृप्ति मानै आनद लहि ।२०॥

अंग सकल जल धोय गहै मुखवास प्रसादी।
सैन ठौर निज जाय सेज बैठै अहलादी॥
बीरी महाप्रसाद सीस धरि मुख मै नावै ॥श्रीराधे॥
दंपति सेवा रीति भोर की सखिन सिखावै। २१॥

जे अपने ढिग रहैं सुवा सारो सुखदाई।
तिनतें कहै सुनाय समै लखि देहु जगाइ॥
अब सुमिरौ वर नाम जुगल आनद मुदकारी ॥श्रीराधे॥
विदा सखिन को करै सैन सब करौ सुखारी ॥२२॥

जे दंपति पद लीन सखी सेवा अधिकारी।
तिनके चरण सुगंध हिये आँनै पिय प्यारी॥
निद्रा वस तन होय रहै ताही छवि लीना ॥श्रीराधे॥
चौंकि चौंकि पुनि उठै सुपन लखि सो रस भीना ।२३॥

ब्रह्ममुहूरत समै निकट सारो सुक बोलैं।
राधाकृष्ण सुनाम सुने अपने दृग खोलैं॥
उठि बैठें निज सेज नाम मुख हियें संभारै ॥श्रीराधे॥
जुगल चरन वर कुंज चित्त भ्रमरी गति धारै ॥२४॥

राधा राधा नाम जीह रटि सखी बुलावै।
बहुरि सेज थल त्यागि देह निज कृत्य करावै।
हस्त पाद मुख धोय दंतधावनि करि नीकैं ॥श्रीराधे॥
अँतर सुवास लगाय अंग उन मर्दन लीकैं ॥२५॥

ऐसे करि अस्नान वस्त्र तन स्वल्प सुधारै।
जुगल प्रसादी पुष्पमाल ते सकल संभारै॥
वर भाजन मै धारि सीस धरि बाहिर आवै ॥श्रीराधे॥
जमुना विमल प्रवाह तीर ताके तब जावै ।२६॥

करि प्रणाम बहुभांति पैठि भीतर कटितोई।
तुलसी पुष्प प्रसाद धरै धारा के मांही॥
मज्जन अंग सुहाय वस्त्र भूषन तन धारैं ॥श्रीराधे॥
तिलक आदि शृंगार आपनौ मुकुर निहारै ॥२७॥

संग सहेली तथा लियें आचारज कुंजा।
सैन सुथल के निकट जाय पहुँचै सुख पुंजा॥
भीतर को लखि समै पैठि पद वंदि सुबोधै ॥श्रीराधे॥
सकल अंग पुनि सेइ शिथिलता सिगरी सोधै ॥२८॥

उठि बैठैं जब सेज जीह जय कहि सिर नावै।
अस्त व्यस्त पट केस हरषि सुन्दर सुबनावै॥
सनमुख मुकुर निवेदि जोरि कर विनती करई ॥श्रीराधे॥
सहचरि मंडल मध्य दियें बाहिर पग धरई ।२९॥

आचारज तन क्रिया सौच सुख देइ करावै।
अतर सगंधि लगाय अंग उन मर्दन भावै॥

रितु अनुकूल सुनीर विमल अस्नान कराई ।।श्रीराधे।।
देह पौंछि वरवास समुभि नीकै पहिराई ।।३०।।
काल्हि प्रसादी मिले लाड़िली श्रीअंग केरे।
ललितादिक के नेम तेई तन सजैं सवेरे ।।
ए अपनी सहचरी प्रसादी तिन कह देवैं ।।श्रीराधे।।
तेऊ निज निज भृत्य देहिं ते तैसें सेवैं ।।३१।।
जो निज प्रभुके अंग लखैं सो आपु न धरई।
एक दिवस दै मध्य रीति ऐसी सब करई ।।
ऐसी रीति विचारि अचारज अंग सिंगारै ।।श्रीराधे।।
भाल तिलक सिंदूर मांग द्दग अंजन सारै ।।३२।।

भूषन मनि गन कुसुम सकल नखशिख पहिराई।
उत्तरीय दै सीस सुभग दरपन दिखराई ।।
लै प्रसन्नता भूरि सुवन वरखैं अभिरामा ।।श्रीराधे।।
धन्य भाग निज मानि करै पुनि दंडप्रनामा ।।३३।।

अभिमुख ह्वै कर जोरि लखै नैनन की ओरी।
दंपति सेवा समै विनय सो कहै निहोरी ।।
अपर सहचरी अष्ट संग अधिपति जे गाई ।।श्रीराधे।।
तेऊ तथा सिंगारि जूथपति ल्याय मिलाई।।३४।।
अप अपनौ लै वृंद जूथपति राजैं रूरी।
दंपति सेवा सौंज थार कर लीन्हे पूरी ।।
आचारज के निकट ल्याय ते सबै दिखावैं ।।श्रीराधे।
जैसी आज्ञा लहैं सीस धरि तैसी भावैं ।।३५।।

बाजे अमित प्रकार सहेली सुर सम कीन्हे।
राग रागिनी प्रगट समै लखि किये नवीने ।।
रही सेष कछु रैन लेन सुख हिय को भारी ।।श्रीराधे।।
आचारज द्दग सैन सखिन की ओर प्रचारी ।।३६।।
दंपति सेवा समै जानि चलिवें जिय धारी।
चतुर सहेलिन रचे पाँवड़े स्वच्छ सुखारी ।।
श्रीआचारज कही उठत मंगल मुखवानी ।।श्रीराधे।।
जयति जयति श्रीजयति सदा राधा ठकुरानी ।।३७।।

तथा सहेली सकल सोई धुनि उच्च उचारैं।
शब्द कुंज प्रतिध्वनि श्रवन सुनि सबै सँभारैं।।
अष्टदिसा जे अष्ट कुंज पहिलैं कहि गाई ।।श्रीराधे।।
तहाँ तहाँ ते निकसि मिलीं एकै थल आई।।३८।।
अपनी अपनी दिसा जूथ बहुवृन्द बनायें।
मंजुल गति सब वाद्य गीत मंगल धुनि छायें ।।
परम निकुंज सुधाम सप्तमंडल जो गायो ।।श्रीराधे।।
प्राची दिशि के द्वार अग्रवर चौक सुहायो ।।३९।।

रंगदेवी की कुंज तासु दिसि निकट सुहाईं।
याते पहिलैं निकट चौक के तेई आई ।।
भोर समै कौ राग रंग वरषत करवीना ।।श्रीराधे।।
राधा राधा नाम रटैं सब तार सलीना ।।४०।।
अग्निकोण तें तथा सुदेवी जू हित आवैं।
भारी संग बनाव नाम राधा मिलि गावैं ।।
दच्छिन दिसि तें जूथ संघ श्रीललिता आँई ।।श्रीराधे।।
महिमा मंगल गान प्रगट राधा छवि छाँईं ।।४१।।

तथा कोण नैरित्य विशाखा वेगी आवत।
जूथ वृंद बहु संग नाम राधा सुर गावत ।।
चंपकलता प्रदच्छिण दै पश्चिम तें आँईं ।।श्रीराधे।
जूथ लिये बहु संग वदन राधा धुनि गाँई ।।४२।।

वायुकोण तें जूथ अमित लै चित्रा धाईं।
मंगलगान प्रबंध नाम राधा धुनि छाँई ।।
उत्तरदिसि तें चलीं तुंगविद्या रसभीनी ।।श्रीराधे।।
जूथप संग अनेक नाम राधा धुनि कीनी ।।४३।।

तथा कोण ईसान इंदुलेखा आवत सत।
जूथप सहचरि संग नाम राधा रस वरषत ।।
नाना तान तरंग सबै गावत इमि आवत ।।श्रीराधे।।
जुगल माधुरी मत्त छटा तैसी छलकावत ।।४४।।
मिलीं परस्पर अष्ट चौक तामैं अंग लाई।
अपर सहचरी पुष्प अंजली नभ वरषाई ।।

जाको जो व्यवहार तथा पद वन्दन कीन्हे ।।श्रीराधे।।
मंगल आसिष पाय मोद भरि अति सुख लीन्हे ।।४५।।
मिलि बैठीं तिहि ठौर सकल मंगल गुन गाये ।
दंपति छवि उर आनि सिंधु आनन्द बढ़ाये ।।
सेवा समै निहारि चित्त इच्छा अस कीन्ही ।।श्रीराधे।।
जुगल माधुरी सुधा प्यास जिय भई नवीनी ।।४६।।
मो ललिता तें आदि अंगजा अष्ट प्रधानी ।
दोय दोय मिलि संग रहैं सब दिन परमानी ।।
मिली विशाखा मोहि आय अतिसै मन चायें ।।श्रीराधे।।
चंपक लता सुहाग संग चित्रा गर लांयें ।।४७।।
तुंगविद्या के संग इंदुलेखा छवि देहीं ।
मिलीं सुदेवी जाय रंगदेवी रंग लेहीं ।।
अष्ट अष्ट जे कही संग इनकें सुखदाई ।।श्रीराधे।।
जिनको जिनतें मेल जुग्म द्वै अति छवि छाई ।।४८।।
ऐसें सबकी रीति चित्त उन मान कीजिये ।
सहचरी वृन्द अपार जूथ किमि अन्त लीजिये ।।
जुग्म हौन को हेतु श्रवन सुनि ऐसें गहिये ।।श्रीराधे।।
सेवा जुगम सरूप समै एकै निरवहियै।।४९।।
अपने अपने जूथ वृन्द मंडल बहु कीन्हे ।
गावत समै सुहात राग मंजुल सुरभीने ।।
जुगलविहारी नित्य परस्पर नेह बढावैं ।।श्रीराधे।।
गावैं तेई प्रबंध अर्थ सोई मन भावैं ।।५०।।
पहुँचीं परम निकुंज निकट ऐसें जब जाई ।
सैन कुंज दृग परी दंडवत करी सुहाई ।।
नींद संक मन मानि मौन गहि सब ही ठाढ़ो ।।श्रीराधे।।
बिनु पानी ज्यौं मीन तथा अभिलाषा बाढ़ो ।।५१।।
भोर समै के चिह्न जानि पंच्छी रव कीन्हे ।
श्रीराधा रट नाम कहै सारौ सुर झीने ।।
सुकी रटै सुर मंद नाम श्रीकृष्ण सुखारे ।।श्रीराधे।।
श्रवन परी धुनि कछू स्याम दृग अल्प उघारे ।।५२।।

मंद मंद श्रीवदन नाम राधा कहि गावैं ।
परम माधुरी सिंधु अर्थ ताके बहु भावैं ।।
सो धुनि सुनि श्रीप्रिया नैन अंबुज कछु खोले ।।श्रीराधे।।
चातक ज्यौं जल स्वांति पाय पीतम जै बोले ।।५३।।
श्रीप्यारी मुख कहैं लाल को नाम बखानी ।
गुन सुभाव रस रूप नेह की अवधि प्रमानी ।।
मिली परस्पर डीठि सिंधु रस के दोउ सरसे ।।श्रीराधे।।
वेला पट विलगाय लहरि कर सौं कर परसे ।।५४।।
प्रीतम हिय ह्वै गौर स्याम जिय प्यारी तैसें ।
लाल रटैं मुख कृष्ण प्रिया राधा धुनि जैसें ।।
विवस भये स्वर उच्च कहैं दोऊ रस भीने ।।श्रीराधे।।
हमैं आदि सखि शब्द सुने तन मन तहाँ दीने ।।५५।।
सफल होंहिं दृग तबै जबै दंपति मुख देखैं ।
जुगल वदन ससि छटा पांन करि जीवन लेखैं ।।
इंद्री वृत्ति समेटि चित्त ताही दिसि लायें ।।श्रीराधे।।
परमानंद अपार लह्यौ धुनि आहट पायें ।।५६।।
सिरहानौ श्री सेज बिछी दच्छिन उत्तर पग ।
चहु दिसा चौद्वार सेष जाली समीर मग ।।
जो कहिये कछु रूप सेन मंदिर को गाई ।।श्रीराधे।।
बानी रहत लजाय नैन जीहा नहिं पाई ।।५७।।
चारि द्वार पै खरे जुगप हम आदिक चातुर ।
सुनी अमी धुनि कांन भई मति अतिसै आतुर ।।
उत्तर दिसि जो द्वार तहां मैं संग विसाखा ।।श्रीराधे।।
शनैः शनैः पग धरें हरें लखिबे अभिलाषा ।।५८।।
गई कुंज के निकट बैन सुनि निश्चै पायो ।
श्रीराधा रट नाम वीण स्वर स्वल्प बजायो ।।
चंपकलता विचारि संग चित्रा पूरव ज्यौं ।।श्रीराधे।।
सारंगी स्वर मंद नाम राधा प्रगटैं ज्यौं ।।५९।।
तुंगविद्या के संग इंदुलेखा दिसि दच्छिन ।
निकट बजायो आय मुरज राधा राधा तिन ।

लसैं सुदेवी संग रंगदेवी त्यौं पच्छिम ।श्रीराधे॥
मुरली निकट सुनाय कही राधा धुनि उत्तम ॥६०॥
अपर सहचरी अष्ट अष्ट तेऊ पुनि आंई ।
तब लागी बहु भीर जूथ नहिं गनत सिरांहीं ॥
सेज निकट हित रहीं अंगजा सखी रैन जे ।श्रीराधे॥
कवरी वसन सुधारि जोरि कर लखैं नैन ते ॥६१॥
श्री स्यामा दृग कोर सैन जब ही तिन पाई ।
प्रगटी चरण सरोज तहा पुनि तबै समाई ॥
ता पाछे सब द्वार खुले पट आकस मादी ।श्रीराधे॥
जय जय जय धुनि करैं सहचरि अति अह्लाही ॥६२॥
कीन्हे दंड प्रणाम जोरि कर मस्तक नायो ।
श्रीराधा लै नाम देहरी सीस लगायो ॥
स्यामा चरण सरोज विमल मन भ्रमरी कीन्हे ।श्रीराधे॥
सो प्रताप उर धारि विनय पग भीतर दीन्हे ॥६३॥

परिदच्छिन दै सबै द्वार उत्तार तहां आई ।
भीतर करै प्रवेस चरण सनमुख सिर नाई ॥
प्रथम अष्ट हम आय जुगल पद वंदन कीन्हे ।श्रीराधे ।
लागी सेवा करन अंग लखि आलस भीने ॥६४॥

अष्ट अष्ट जे अपर समै लखि तेऊ आंईं ।
जूथापति सहचरी संग बहु भीर सुहांईं ॥
पद वंदन करि सबै जोरि कर मंडल ठाढ़ी ।श्रीराधे॥
सेवा कीजे सौंज हस्त लीन्हे रुचि बाढ़ी ॥६५॥

कोऊ सीतल नीर कोउ दरपन कर धारी ।
पानदान कोउ लियें अतर भाजन सुखकारी ॥
अंजनपात्र सुधारि कोउ चंदन बहु जाती ।श्रीराधे॥
पुष्पाभरण विचित्र लिये कोउ नाना भांती ॥६६॥

काहूके कर चंवर मोरछल छत्र सुहावै ।
सूरजमुखी प्रकास सुखद काहू कर भावै ॥
कोऊ विन्न अनूप रंग रंगी कर लीन्हे ।श्रीराधे॥
क्रीड़ा कीजे वस्तु अपर ताही विधि कीन्हे ॥६७॥

काहू कर सिंदूर पात्र मणि भूषन अपरा ।
कोऊ मुरली लिये कमल कोऊ हितपरा ॥
पुष्प छरी कोउ लियें लकुट कंचनमनि तैसें ॥श्रीराधे॥
काहूके कर लसैं चित्रपट रीझत जैसें ॥६८॥
समै सुहाती वस्तु अहै जे भोजन केरी ।
बहुत जतन तें लिये सखी हित सौं बहुतेरी ॥
जे जे जिनके हस्त वस्तु सबको कहि गावै ॥श्रीराधे॥
महिमा प्रभू विचारि जानि जिय मस्तक नावैं ॥६९॥

सहचरि जूथ अपार हिये दंपति पदप्रीति ।
ताही की बढवारि मनावत सेय सुनिती ।
नैन चकोरी तृषित जथा ससि ओर निहारै ॥श्रीराधे॥
जुगलमाधुरी छटा तथा जीवन उर धारै ॥७०॥
सेवा करि सब अंग सुनौ जब आलस छूटे ।
गोपेश्वर दृग खुले निरखि हम अति सुख लूटे ॥
अंग मोरि एहि ओर अंगरि जमुहाई लीन्ही ॥श्रीराधे॥
जै आनंद बखानि सबन चुटकी मृदु दीन्ही ॥७१॥
श्रीप्यारी मम कंध भुजा अति हित सौं धारी ।
तथा बिसाखा ओर लाल सुख दियो अपारी ॥
मंद विहसि वर वचन कहत दसनावलि उघरी ॥श्रीराधे॥
अहो भाग्य लखि मानि धन्य सखियन की सुघरी ॥७२॥
श्रीमुख वचन प्रवाह सुधा ऐसें मृदु बोले ।
ए ललिते का भोर भयो कमलन मुख खोले ॥
श्रीमहारानी भोर आप इच्छातें होवै ॥श्रीराधे॥
इच्छाके आधीन काल आदिक. दृग जोवै ॥७३॥
रंगदेवी रंगभरी चरण सेवैं उर लावैं ।
वार बार निज सीस रीझि दृग लै परसावैं ॥
ऐसें ही रस पगी सबै सब आँगन लागी ॥श्रीराधे॥
सेवैं जुगल सरूप छिनै छिन अति अनुरागी ॥७४॥
जानि हिये को भाव उठैं मन ऐसी आई ।
मै बोली कर जोरि विनय बहु भाँति सुनाई ॥

श्रीमहारानी सकल करैं अभिलाषा ऐसी ॥श्रीराधे॥
उठि बैठैं जौ आप निरखि छवि जीवै तैसी ॥७५॥
तथा विसाखा लाल ओर विनती बहु भाखी ।
भक्त मान सुख दैन प्रभू सो हसि अभिलाषी ॥
गहे सखिन श्रोइस्त दोऊ कोउ केस समेटैं ॥श्रीराधे॥
अपर उभै श्रीकंध सखी कर मंजुल भेटैं ॥७६॥
पहिले पीतम उचकि उठे मुख कहि श्रीराधे ।
सहचरि जय जय भाषि निरखि नैय अति सुख लाधे ॥
मुरि प्यारी की ओर लखे पिय सुधि बुधि भूले ॥श्रीराधे॥
आलस रस के सिंधु भरे श्रीअङ्ग अमूले ॥७७॥
बहुरि धीर जिय धारि नैन अम्बुज सुख लीन्हे ।
श्रीप्यारी मुख चंद्र छटा पीवत दृग पीने ॥
बार बार बलिहारि लेत सुख सिंधु झकोरैं ॥श्रीराधे॥
अए प्रिये हित उठौ हस्त गहि भाखि निहोरैं ॥७८॥
मंद विहसि श्रीप्रिया देखि दृग कियो लगेहैं ।
सो सोभा पिय निरखि होत नहि क्यौंहूँ सोहैं ॥
बाहु लता सुख सेतु दाहिनो पीतम लीन्हीं ॥श्रीराधे॥
मै ललिता दिस बांम तथाविधि तैसी कीन्ही ॥७९॥
कवरो सखी समेटि पीठि परसैं हिय हरषैं ।
जय जय शब्द उदोत उठत फूलन मुद वरषैं ।
बैठे जुगल अनूप अङ्ग लगि अङ्ग सुहाए ॥श्रीराधे॥
चहूँ ओर सहचरी आइ तकिया बहु लाए ॥८०॥
ऊचे विमल विचित्र बृहत दर्पन सुभ तीनी ॥
रंगदेवि त्रयसखी धरे सनमुख रसभीनी ॥
तहां देखि प्रतिबिंब आपनो आप लुभावैं ॥श्रीराधे॥
पाछैं जे सहचरी खरी लखि मृदु मुसुकावैं ॥८१॥
बहुरि मध्य जो मुकुर तहां मिल जुगल निहारैं ।
अरझि परस्पर नैन विहसि रीझत बलिहारैं ॥
पुनि अङ्गन तन हेरि अलक विथुरी कहुँ अंजन ॥श्रीराधे॥
कहूँ लग्यौ मुखराग अरुण रेखा मन रंजन ॥८२॥

देखि रहे गति भूलि पलक छवि सिंधु पगाने ।
दिये सुदेवी हस्त दोउ रूमाल भिगाने ॥
अरस परस रूमाल लियें हसि पोंछि निहारैं ॥श्रीराधे॥
कबहूं दरपन ओर हेरि तन प्रभा सुधारैं ॥८३॥
एक हस्त लै अलक अपर कर चिबुक लगावैं ।
उमग हियें अनुराग विवसता छिन छिन पावैं ॥
सहचरि वरषैं कुसुम सिंधु आनन्द समानी ॥श्रीराधे॥
जुगल माधुरी छटा मीन मन जिन सों पाना ॥८४॥
वर सुगंधि जा मांहि उष्ण जल झारी मनिमै ।
चंपकलता सुजान खरी आगे जुग करलै ॥
श्रीस्यामा दृग कोर दई तिन मस्तक नायो ॥श्रीराधे॥
तबही भाजन विमल हरित मनि को तह आया ॥८५॥
चौकी मनिमै सेज निकट चित्रा लै धारी ।
तापै कुसुम बिछाय धरयौ शोभा जन भारी ॥
भाजन हूँ के मध्य दूर्वा अंकुर धारे ॥श्रीराधे॥
शीतलता ज्यौं लहैं जुगल श्रीनैन निहारे ॥८६॥
रंगदेवी ढिग आय प्रणत ह्वै विनै सुनाई ।
श्रीमहारानी चरण धोइवैं हिय हुलसाई ॥
श्रीइच्छा रुख पाय चरण कर लै हित धोवैं ॥श्रीराधे॥
तथा सुदेवी लाल ओर ताही विधि होवैं ॥८७॥
चरण धोय सुखपाय पोछि शुभ चैल सुहाए ।
पुनि अपने कर धोय जुगल श्रीहस्त धुवाए ॥
तथा वसन वर पोंछि वदन श्रीचंद्र धुवावैं ॥श्रीराधे॥
दंपति मन अनकूल सहचरी लखि सुख पावैं ॥८८॥
मैं ललिता श्री ओर विसाखा पिय दिसि सोहैं ।
मीन मीन पट हस्त लिये मुख जुगल विजोहैं ॥
अवसर पाय लुभाय वदन ससि हित अंगुछाये ॥श्रीराधे॥
नीकैं चिकुर सुधारि पुष्प गुथि बेनी लाये ॥८९॥
दृग अंजन सुभ सारि तिलक रचना रचि नीकी ।
अलकैं जुग लटकाय श्रवन ढिग अटकनि जीकी ॥

कीर विनिंदक तुंड लसै नासा पर कलिका ॥श्रीराधे॥
चिबुक बिंदु अनुरूप कपोलन पत्र मकरिका ॥६०॥
तुगविद्या पिय रचैं इंदुलेखा ढिग प्यारी।
चंदन रंग अनेक हस्त पद पृष्टि सुधारी ॥
अङ्गन वसन सँवारि सुवन आभरण अनेका ॥श्रीराधे॥
नखसिख तें पहिराय जथाविधि सहित विवेका ॥६१॥

अतर सुगंध सुवासि पुष्प थलकमल सुहाए।
जुगल हस्त श्री दिये लिये ते नासा लाये ॥
अति प्रसन्न ह्वै जुगल परस्पर नासा लावैं ॥श्रीराधे॥
दर्पन सनमुख लिये सहचरी विहसि दिखावैं ॥६२॥

अवसर इच्छा जानि विसाखा औ मै दोऊ।
भोजन कौ लखि समै जोरि कर भाख्यौ सोऊ ॥
नैन सैन रुख समुझि करी सौ वेगि उपाई ॥श्रीराधे॥
धूप दीप दै प्रथम स्वल्प आचवन कराई ॥६३॥

चौकी दीरघ राखि थार तापै ह्वे धारे।
धार उष्ण जो दुग्ध सुगंधित भेद सँवारे।
नाना रस की रीति तथा दधि के बहु भेदा ॥श्रीराधे॥
माखन भिन्न प्रकार स्वाद अनगनती केदा ॥६४॥
घैया भेद विचित्र मलाई तथा सँवारी।
मेवा विजन रूप रचे सो छप्पन कारी।
वरन वरन मनि विमल कटोरा भरि भरि धारे ॥श्रीराधे॥
शंखोदक तिन मांहि पत्र तुलसी लघु सारे ॥६५॥

कीन्ही विनै बहोरि प्राण जोवन सुख दीजै।
उत्कंठित सब कोइ आप भोजन रुचि कीजै ॥
जुगल विहारी नित्य परम निज जन सुखदाई ॥श्रीराधे॥
विहसि थार तन हस्त कियो जय जय धुनि छाई ॥६६॥
प्रेम भरी सहचरी नाम गुन वस्तु वखानै।
स्वाद भेद रस रीति रूप सो दंपति मानै ॥
नेह नवेली अली जथा भोजन करवावैं ॥श्रीराधे॥
खात खवावत दोउ परस्पर अति सचु पावैं ॥६७॥

सकल भाँति दै मोद मनोरथ सबके पूरे।
निज भक्तन सुख हेत करैं लीला गुन भूरे ॥
जब जानी कछु वृत्ति हठी भोजन रुचि नाही ॥श्रीराधे॥
तबहीं लिये उठाय जतन आचवन करांही ॥६८॥
भाजन अचवन हेत उभै राखे सुचि आंनी।
खरिका कनक सुधारि देत कोउ गेरत पानी।
दीनी द्रव्य विशुद्ध चिकन ताकर ज्यौं जाई ॥श्रीराधे॥
अंगुछाये श्री हस्त वदन पट अमल सुहाई ॥६९॥
पदपंकज पुनि धोय पोछि पट सीस नवावैं।
अपर देत मुखवास कोउ बीरी लै आवैं।
हसि हसि दंपति लेत परस्पर कर मुख देवै ॥श्रीराधे॥
मंद चितै मुसुकाय सहचरी सो सुख लेवै ॥१००॥

अतर सुगंधि बनाय दई श्रीहस्त न दोऊ।
दर्पन विमल सुधारि धरै लै सन्मुख कोऊ ॥
मंगल समै निहारि आरती मंगल साजैं ॥श्रीराधे॥
मंगल गीत उदोत विविधि बाजे हित बाजैं ॥१०१॥

मै ललिता ढिग आय जोरि कर सीस नवाई।
लै वलाय गनि अष्ट अञ्जली सुमन सराई ॥
जुगल विहारी नित्य चरण पंकज पुनि वंदी ॥श्रीराधे॥
मंगल आरति थार लियो कर हिय आनंदी ॥१०२॥

मंगल गीत सुहात वाद्य मंगल सुखदाई।
मंगल जय धुनि होत कुसुम वरषा वरषाई ॥
प्रथम चरण दिसि च्यारि वारि बार ह्वै हृदय घुमाई ॥श्रीराधे॥
श्रीमुख सनमुख एक सप्त सवाँग सुभाई ॥१०३॥

बारि आरती थार धरयो कर धोय बहोरी।
पुष्प अञ्जली एक दई सखियन चहुं ओरी ॥
नाना भाँति प्रणाम करैं भीतर कोउ बाहिर ॥श्रीराधे॥
जय श्रीराधा कृष्ण इहै धुनि छाय रही चिर ॥१०४॥

निकट आय श्रीचरण परसि कर मस्तक लावैं।
सावधान ह्वै सकल वाद्य सर एक मिलावैं ॥

मंगल समै विचारि राग धुरे सुर गावैं ॥श्रीराधे॥
नृत्य करैं भरि प्रेम देखि दंपति सुख पावैं ॥१०५॥

जुगल विहारी नित्य सखिन इच्छा पहिचानी।
कुंज अनौसर तबै सहचरी धारैं पानी॥
तहां सुगंधि सिचाय कुसुम रचना बहु करहीं ॥श्रीराधे॥
दंपति आय निहारि मोद अतिसै ज्यौं भरहीं ॥१०६॥

अपर सहचरी रचैं पांवड़े ह्वांतें ह्वांलौं।
जैसी इनकैं प्रीति बुद्धि सो कहौं कहां लौं॥
हम तें आय सुनाय कही तिन सगरी बाता ॥श्रीराधे॥
दंपति सोई विचारि उठे भक्तन सुखदाता ॥१०७॥

अष्ट सहचरी चहूँ ओर मंडल हम दीन्हे।
नित्य विहारी जुगल मध्य आनद भरि कीन्हे॥
दिये परस्पर बांह कंध पग मंद सुधारैं ॥श्रीराधे॥
सहचरि बरषैं कुसुम तोरि तृण हंसि लखि वारैं ॥१०८॥

नाना भांति विनोद करत कौतूहल भारी।
वचनामृत मृदु कहत सुनत हरुवैं मगचारी॥
कही अनौसर कुंज जाय पहुँचे तिहि द्वारी ॥श्रीराधे॥
भीतर जुगल सरूप गये सखियां भई न्यारी ॥१०९॥
तहां होय जो रीति सुनै हम नैनन देखैं।
प्रगट अङ्गते होहिं अङ्गजा अपर विशेखैं।
कुंज बृहत विस्तार बनी रचना अति प्यारी ॥श्रीराधे॥
भिन्न भिन्न ह्वै रूप दोऊ विहरैं कछु वारी ॥११०॥

तहा अङ्गजा संग अङ्ग सेवा सब करहीं।
दंड एक परिमा सखी ते आनद भरहीं॥
इहाँ द्वार हम खरी सकल जिय चाह अपारी ॥श्रीराधे॥
बीतें कल्प अनेक मनो पल विना निहारी ॥१११॥
अति आरति मन मांहिं कबै दृग रूप निहारैं।
करुणा सील सुभाव जुगल जनहूँ न विसारैं॥
द्वार आइ वें हेत लाड़िली इच्छा कीन्ही ॥श्रीराधे॥
चहूँ ओर सहचरी जोरि मंडल रसभीनी ॥११२॥

सुखद पावड़े रचित भूमि गति मंद पधारैं।
श्रीस्यामाजू प्रथम निकट आँईं तिहि द्वारैं॥
तबै सखी ते समै जानि श्रीअंग समानी ॥श्रीराधे॥
आकस मादक पाट खुले हम लखि हरखानी ॥११३॥

वारहिं वार प्रणाम किये हिय धरि छवि नीकैं।
रचे पावड़े चित्र मोद लखि उपजै जीकैं॥
दोय दोय हम रूप किये अपने असजानी ॥श्रीराधे॥
एक अङ्गते संग चलै स्यामा सुखदानी ॥११४॥

ऐसें मंडल मध्य होय प्यारी पगधारैं।
अपर जूथ सब खरे पीय आगमन निहारैं॥
श्री इच्छा अस भई स्नान की कुंज चलैं मग ॥श्रीराधे॥
आली संग विनोद करत आए ताही लग ॥११५॥
भीतर कियो प्रवेस कुंज के मध्य सिंघासन।
कहियै कहा बनाव देख रीझत प्यारी मन॥
विमल नीलमनिमई पीत नग अरुण विचित्रित ॥श्रीराधे॥
चारि हस्त परिमान चहूंदिसि ऊपर भूमित ॥११६॥

लसैं तीन सोपान दिसा चारौ लघुनाई।
कोमल ताकी अवधि परस ऋतु सम सुखदाई॥
श्रीस्यामा जू जाय तहाँ बैठी मन हर्षैं ॥श्रीराधे॥
सेवा समै विचारि सहेली तत्पर दर्षैं ॥११७॥

इहाँ सहचरी खड़ी लाल पाछें तें आए।
प्रेम भार पद वंदि पावड़े रचे सुहाए॥
तिनके मंडल मध्य चले निज जन सुखदाई ॥श्रीराधे॥
स्नानकुंज जो अपर तहां जावैं मन आई ॥११८॥

कीयो कुंज प्रवेस तहां सिंघासन ऐसो।
पीतमई मनि मुख्य अरुण नग नील लसै सो॥
सबै भाँति सुख रूप तहां बैठे हँसि प्यारे ॥श्रीराधे॥
सेवैं सखी अपार समै सेवा सुविचारे ॥११९॥
सेवैं दोऊ ठौर सहचरी प्रेम पगानी।
कितनी बाहिर कुंज समै गावैं मृदु बानी॥

चित्रा चित्र बनाय दंतधावनि लै आई।
जामैं विसद सुगंधि मृदुल अतिसै सुखदाई।
श्रीस्यामा श्रीहस्त लई चित्रा नय हरखी ॥श्रीराधे॥
चूरण दंत विशुद्ध हेत मेना लै सरखी ॥१२८॥

गीतालाप विनोद वार्त्ता अति सुख छावैं।
परमानंद समुद्र परी सहचरी लुभावैं॥
इतने मैं श्रीप्रिया दंतधावनि करि निवरी ॥श्रीराधे॥
ससिमंडल श्रीवदन धोय पोंछत मिलि सिगरी ॥१२९॥

ता पाछें मैं लई सलाका अंजनकी कर।
नैन भक्त सुख ऐन क्षीन रेखा खैची वर॥
पारिजात कौ पुष्प परम सौरभ मृदु सुंदर ॥श्रीराधे॥
रचना वचन सुनाय विनय सो दीहथौ श्रीकर ॥१३०॥

इंदुलेखा लखि समै. विमल दरपन कर लीन्हे।
सनमुख ठाढ़ी आय प्रिया पद नेह नवीने॥
श्रीजू पुष्प सुगंधि लेंहि हँसि मुकुर विजोहैं ॥श्रीराधे॥
चहूँ ओर सहचरी सुवन वरषैं लखि मोहैं ॥१३१॥

तहाँ लाल ढिंग रहैं सकल हम तन दूसर धरि।
सेवा जथा प्रकार करें सो सुनियें चित करि॥
विविध सुवासित नीर सीर औ उष्ण विचारैं ॥श्रीराधे॥
जाविधि अति अनुकूल होय लखि तथा सुधारैं ॥१३२॥

कलकंठी लखि समै स्वेत मनि चित्रित चौकी।
लै सिंघासन निकट धरी नय प्रीति अलौकी॥
मधुबिंदा मनि अरुण बृहत भाजन तहँ धारथौ ॥श्रीराधे॥
जल अंकुर ता मध्य पुष्प मनि की धरि सारौ ॥१३३॥

रंगदेवी कर जोरि नम्र ह्वै सनमुख ठाढ़ी।
चरण धोइवे हेतु हियें अतिसै रुचि बाढ़ी॥
करैं मनोरथ पूर लाल निज जन सुखदाई ॥श्रीराधे॥
श्रीपद चालन देखि रंगदेवी ढिंग आई ॥१३४॥

हियें नैन धरि सीस चरन निजहस्त लिये हित।
परम सुगंधित द्रव्य लिये कंदर्पा है तित॥

भीतर सखी प्रवीन नीर बहु भेद बनावैं ॥श्रीराधे॥
सीत उष्ण अनुकूल जानि वरगंध मिलावैं ॥१२०॥

रंगदेवी ढिंग आय प्रिया के सीस नवायो।
चरण धोइवे हेतु हियौ को भाव जनायो॥
नाना भाँति सुगंध द्रव्य पदकंज लगाई ॥श्रीराधे॥
अपर नीरजुत गंव देत झारी कर भाई ॥१२१॥

मंजुल पट लै पौंछि परसि मस्तक चखलावैं।
दच्छिन उर पर वाम चरन ऐसे पधरावैं॥
बहुरि विसाखा आय जोरि कर वंदन करई ॥श्रीराधे॥
हस्त धोइवे हेत चित्त अभिलाषा भरई ॥१२२॥

श्री इच्छा जिय जानि हस्त अपने कर लेवैं।
विविध सुगंधित द्रव्य लेप श्रीकर युग सेवैं॥
विमल सुवासित नीर सहचरी झारी भरिकर ॥श्रीराधे॥
गेरत धार विचारि विसाखा रुख लखि तत्पर ॥१२३॥

अति आनंदित होय धोय श्रीकर अंगुछाए।
दच्छ हस्त श्रीगुल्फ वाम घूंटू पधराए॥
सिंघासन धरि सीस भई सनमुख छबि देखैं ॥श्रीराधे॥
धन्य मानि निज भाग्य सफल जौवन अति लेखैं ॥१२४॥

सुभग सुदेवी हस्त लिये झारी सिर नावैं।
उर अतिसै अभिलाष कलूला हमैं करावैं॥
श्रीजू को लखि वदन मंजुकेसी रुख जानी ॥श्रीराधे॥
भाजन धरथौ अपर दंतधावन हित आनी ॥१२५॥

तामैं पुष्प विचित्र दूब अंकुर करि पानी।
राजहंस तन स्वल्प बने मनि के लघुमानी॥
ता भाजन के मध्य धरे ते विविध सुहावैं ॥श्रीराधे॥
लहैं वायु संचार लुढ़कि बूड़ैं उतरावैं ॥१२६॥

देखि सखिन को भाव प्रियाजू हस्त पसारथौ।
तबै सुदेवी विनय मंजु गति पानी डारथौ॥
भरि भरि जल श्रीवदन कलूला भाजन डारैं ॥श्रीराधे॥
राजहंस तन परै बिहँसि सो खेल निहारैं ॥१२७॥

विमल सुवासित नीर भरे झारी कर सुन्दरि ॥श्रीराधे॥
निज स्वामिनि रुख ओर लखैं गुन निधि सब सहचरि ॥१३५॥
लै लै सोई द्रव्य चरन लावत सुख पायें।
सुन्दरि झारी नीर धार गेरत चित लायें॥
नेह नीर पदकंज धोय वट पट अंगुछाए ॥श्रीराधे॥
वाम ऊरू पर चरण दच्छ गति पधराए ॥१३६॥
जुगल चरन कर परसि हिये चख मस्तक लाए।
अभिमुख ठाढ़ी लखैं नैन चातक ससि पाए॥
निकट सुदेवी आय विनैजुत सीस नवावैं ॥श्रीराधे॥
धोवैं श्रीकर कमल चित्र अभिलाष बढ़ावैं ॥१३७॥
प्रीतम क्रिया कटाच्छ कोर तिनकी दिसि हेरे।
विनै भार सिर नाय सकुचि बैठी झुकि नेरे॥
सहचरि परम विनीत संग तैसी तिनके हैं ॥श्रीराधे॥
झारी भरी सुनीर द्रव्य सुभकर जिनकें हैं ॥१३८॥
लाल पसारयौ हस्त सुदेवी नै कर लीह्नयौ।
द्रव्य विसद आमोद लेप नीकी विधि कीह्नयो॥
नीर धोय पट पोंछि जुगल कर कमल सुहाए ॥श्रीराधे॥
वाम बाहु श्रीगुल्फ अपर घूँटूँ धरि भाए ॥१३९॥
सनमुख पिय को रूप सुदेवी लखि मुसुकाँहीं।
इंदुलेखा लै नीर विमल झारी लग आई॥
मन उत्कंठा अधिक सीस नै भाव जनावैं ॥श्रीराधे॥
लाल कलूला करैं मोद छिन छिन हम पावैं ॥१४०॥
प्रीतम हस्त उठाय इंदुलेखा तन हेरे।
धन्य भाग्य निज मानि विनै इनहूँ जल गेरे॥
चंपकलता विचित्र मंजु दांतुनि लै आंई ॥श्रीराधे॥
सो दीन्ही श्रीहस्त लई पिय अति मन भांई ॥१४१॥
चूरण वरण अनूप दंत मंज्जन के हेतू।
चंद्रकला कर लियें देत रुख लखि करि चेतू॥
गान प्रबंध विनोद वार्त्ता मंगल होवैं ॥श्रीराधे॥
दंतधावन करि चुके पीय मुख मंडल धोवैं ॥१४२॥

मृगनैनी पट दियो वदन श्रीकर पोंछत लसि।
मैं अंजन दृग सारि चिबुक परस्यो अंगुरी हंसि॥
तबै विसाखा विहसि केतकी पुष्प सुहायो ॥श्रीराधे॥
पीत वरन वर गंध जानि प्रीतम जिय भायो ॥१४३॥
हिय नैनन सो लाय लाल नासां परसावैं।
देखत प्यारी रूप छटा उरमैं उमगावैं॥
चित्रा दर्पन लियें खरी सम्मुख दिखरांवें ॥श्रीराधे॥
प्रीतम ता दिसि हेरि सखिन जिय मोद बढ़ावैं ॥१४४॥
श्रीस्यामा के निकट इहां सहचरि मुद भरहीं।
अरी होत अतिकाल चलौ उन मर्दन करहीं॥
पिस्ता शुद्ध बदाम पीत करपूर सुकेसरि ॥श्रीराधे॥
नाना भांति सुगंधि मेलि पीस्यो भाजन धरि ॥१४५॥
शीत उष्ण अनकूल कियें लै मो ढिग आई।
मैं विनती कर जोरि करी श्रीजू के पांहीं॥
महाराज सहचरी सकल अभिलाषा भरहीं ॥श्रीराधे॥
श्रीइच्छा जौ होय अंग उन मर्दन करहीं ॥१४६॥
मेरौ राख्यौ मान स्वामिनी मंद लखीं हंसि।
हम सबहीं निज भाग्य मानि पद सीस दियो खसि॥
अमल अमोल अनूप अतर सौरभ्य नवीनौ ॥श्रीराधे॥
हीरक मनि वर सुभग कठोरैं करि सो लीन्हौ ॥१४७॥
सो अंगुरी लै छिरकि वार त्रय धरनी आगैं।
करि प्रनाम ह्वै दच्छ गई मै पृष्ठि विभागैं॥
केस खोलि गति मंजु अतर लै मांग लगायो ॥श्रीराधे॥
तथा विसाखा रंगदेवि उर बांहु सुभायो ॥१४८॥
चंपकलता लगाव मृदुल चित्रा उरु जानू।
जुगल चरन त्यौं लगी इंदुलेखा लहि मानू॥
श्रीमुखमंडलचंद्र तुंगविद्या हित लावैं ॥श्रीराधे॥
तथा सुदेवी पीठि लगी अतिही सुख पावैं ॥१४९॥
अपने अपने चित्त मोद भरि अतर लगायो।
उन मर्दन लखि समै सहचरिन धरयौ सुहायो॥

जा उबटन तें अतर चिकनता अङ्ग न रहई ॥श्रीराधे॥
कांति मृदुलता उमग पीतता बल तन लहई ॥१५०॥
सो तिन लै लै विहसि बहुरि श्रीअंगन लायो।
कछू वार गति हरें देखि रुख सकुचि छुड़ायो॥
जल भीनौ लै मृदुल हस्त पट पोंछे अंगा ॥श्रीराधे॥
स्वल्प उष्ण गुन भूरि नीर पट भरि बहुरंगा ॥१५१॥
करि झारी सो नीर लियें चहुँ ओर सहेली।
हम सब हस्ताकार हस्त पट जुग कर मेली॥
श्रीअंगन कर फेरि करावैं सुभ अस्नाना ॥श्रीराधे॥
सहचरि परम प्रवीन धार गेरैं सुखधामा ॥१५२॥
इच्छाके अनकूल सुखद मज्जन करवायो।
कोमल वसन अनूप बहुरि श्री अंग अंगुछायो॥
अपर सहचरी केस हस्त लीन्हे मुद पावैं ॥श्रीराधे॥
हम सिगरी कर जोरि सीस नय विनै सुनावैं ॥१५३॥
महाराज जौ आप खड़े होवैं करुणा करि।
तौ हम लहैं अनंद विसद साटी श्रीअंग धरि॥
श्रीइच्छा पहिचानि किये ठाढ़े चहुँदिसि लगि ॥श्रीराधे॥
साटी अमल अनूप विसाखा पहिराई पगि ॥१५४॥
पहुँच्यौ आय विमान वनिक अतिसै सुखदाई।
देखत बनै सरूप जात नहि क्यौं हूं गाई॥
सभाकुंज आकार बन्यौ मनि कांम अलेखा ॥श्रीराधे॥
लहै खेचरी चाल तासु मै इहै विसेषा ॥१५५॥
दोऊ कुंज के मध्य उतरि लाज्यौ मंगलमै।
मों सों कह्यौ सुनाय सहचरी समाचार लै॥
या ठौरीतें रचे पांवड़े सखियन जानौ ॥श्रीराधे॥
जो विमान के मध्य सिंघासन तह लगि मानौ ॥१५६॥
श्रीस्यामा जू उतरि पांवड़े चरण पधारे।
चहूं ओर हम आदि कियें मंडल सुखभारे॥
स्नान कुंज के द्वार निकट श्रीजू जब आईं॥ श्रीराधे॥
वरन वरन पोसाक लियें सहचरि मन भाईं॥१५७॥

पुष्प सुभग बंधूक सोइ रंग चित्त सुहायो।
कटि घांघरौ अपार प्रभा सो लै पहिरायो॥
उत्तरीय सो रंग कंठ लौ ओढ़ि सुहांवै॥ श्रीराधे॥
पाछै सहचरि केस हस्त लीन्हे सुख पावैं॥१५८॥
कोउ लीये वर छत्र सीस चामर दिसि दोऊ।
सूरजमुखी विभाग उभै लीन्हे कर कोऊ॥
मोरपंख आकार लगी मनि नाम मोरछल॥ श्रीराधे॥
दूनो ओर विलास करैं पाछे आली कल॥१५९॥
बाजे भांति अनेक मिलें स्वर मंद सुहांवैं।
जै श्रीराधे नाम कहै सखि मंगल गावैं॥
सहचरि मंडल मध्य प्रिया जू ऐसें आवैं॥ श्रीराधे॥
उमगि सहेली सुमन अंजली हसि बरषावैं॥१६०॥
सुखमा सिंधु अपार लहरि आली छबि छाई।
जो विमान के मध्य सिंघासन ता ढिग आई॥
मंगल शब्द उदोत भयो श्रीराधे नामा॥ श्रीराधे॥
श्रीस्यामा जू जबै कियो तापै विश्रामा॥१६१॥
चहूं ओर सहचरी सुभग तकिया बहुलावैं।
दच्छ बाहु श्रीउरू दच्छ तिन लागि सुहावैं॥
भोर समै कछु स्वल्प शीत को रूप विचारैं॥ श्रीराधे॥
हरित वरन पट सुखद अपर श्रीअंग सुधारैं॥१६२॥
वाम चरन कर लियें इंदुलेखा सहरावैं।
रंगदेवी कर वाम दियो पट चित्र दिखावैं॥
मस्तक घूमैं स्वेत छत्र लखि इंदु लजैं तिहिं॥ श्रीराधे॥
कोऊ मोरछल चमर अपर बहु सौज खरी गहि॥१६३॥
केश हस्त लै सखी खड़ी पाछे सुख पावैं।
अपर मुकुर कर विमल तथा सनमुख दिखरावैं॥
राग रागिनी भेद समै लखि चतुर उचारैं॥ श्रीराधे॥
गौर अंग छवि सिंधु लहरि भरि नैन निहारैं॥१६४॥
पीय निकट अब सुनौ सहचरी जो सुख पावैं।
सेवा समै विचारि करैं तन मन तह लावैं॥

नीर समै अनकूल सहचरी ताहि सवारैं ॥ श्रीराधे ॥
अतर अमोल अनूप कोऊ लै भाजन धारैं ॥१६५॥
उनमद्द सुख रूप सखी रचि ताहि बनावैं ।
समाचार हम निकट आयते सकल सुनावैं ॥
मैं सनमुख कर जोरि विनै बहु भाति जनाई ॥ श्रीराधे ॥
महाराज श्रीअंग अतर लांवै जिय आई ॥१६६॥

निज भक्तन सुखदैन लाल जिय मैं सो धारी ।
बलि बलि करैं प्रणाम सबै अति कृपा निहारी ॥
प्रथम भूमि त्रय वार छिरकि पुनि मस्तक नावैं ॥ श्रीराधे ॥
अंग अंग हम आदि मंजु गति विहसि लगांवैं ॥१६७॥

केस देस मै लगी विसाखा दच्छ भुजा धरि ।
रंगदेवि भुज वाम हृदय चित्रा आनद भरि ॥
तुंगविद्या दिसि पृष्ठिपगो अति मोद बढ़ावै । श्रीराधे ।
चंपकलता सुजान इंदुलेखा पद लांवैं ॥१६८॥

श्रीजुग चरणसरोज सुदेवी तन मन दीन्हे ।
सबही वचन विनोद कहैं सुनि तिहि रसभीन्हे ॥
उनमदन अनुकूल वरण सुभगंध अनेका ॥ श्रीराधे ॥
जो जाही अंग रहीं लगावैं सहित विवेका ॥१६९॥

श्रीअंग अति सुकुमार सखो अतिसै परवीनी ।
छिन छिन बाढ़ै मोद उभै दिसि सौ विधि कीन्हीं ॥
नीर विमल जुत गंध समै अनुकूल सुहावैं ॥ श्रीराधे ॥
भरि झारी चहुँ ओर सखी कर लियें लखावैं ॥१७०॥

मै भाखी कर जोरि प्रभू आली जिय भांवैं ।
श्रीआज्ञा जो होयं सुखद अस्नान करांवैं ॥
दृग अंबुज की सैन पाय बलि मस्तक नावैं ॥ श्रीराधे ॥
मंजुल पट कर पहरि अंग धोवैं सुख पावैं ॥१७१॥

अपर सहचरी धार देत झारी रूख जानी ।
नीकी भांति सुधारि अङ्ग सेवैं सुखदानी ॥
लै कोमल जल भोन वसन श्रीतन अंगुछावैं ॥ श्रीराधे ॥
केस भार अतिलंब आलिमा सोधि गंवावैं ॥१७२॥

करी विसाखा विनै आप जो ठाढ़े हूजै ।
धौत वस्त्र कटि देस धरैं उपरना दूजै ॥
चहूँ ओर सहचरी अंग लगि ठाढ़े कीन्हे ॥श्रीराधे॥
अरुन वरन सुभ चीर उभै ते श्रीअंग दीन्हे ॥१७३॥

सुखद पावड़े रचे सखिन ह्वांते विमान लौ ।
प्रीतम हिय दृग चाह प्रिया मुख सुधापान कौ ॥
जानि हियैं को भाव कियो मंडल चहुफेरी ॥श्रीराधे॥
स्नान कुंज के द्वार निकट ठमके कछु वेरी ॥१७४॥

धोती अरुन अनूप उपरना अपर सजाये ।
पाछैं सहचरि केस लंब लीन्हे कर भाये ॥
स्वेत छत्र श्रीसीस चमर घूमै दोउ ओरी ॥श्रीराधे॥
अग्र उभै रविमुखी मोरछल पृष्ठि सुदोरी ॥१७५॥

बाजे विविध प्रकार सखिन एकै सुर कीने ।
मंगल नाम उचारि राग गावत गति झीने ॥
सहचरि मंडल मध्य भये बाहिरि पग धारैं ॥श्रीराधे॥
जय जय मंगल शब्द सहेली हरखि उचारैं ॥१७६॥

हस्ती हंस लजात मंदगति पिय पग धारैं ।
वरखैं अंजलि सुवन सखी सो छवि उर धारैं ॥
एक सखी अतिचतुर जाय आगें सुधि देवै ॥श्रीराधे॥
श्रीललिता तिहि देंहिं निछावरि सिरकर लेवैं ॥१७७॥

अपनो भाग्य सराहि द्वार पुनि वेगी आवै ।
श्रीस्यामा छवि हियें पीय लखि अति सुख पावै ॥
धारै जुगल सरूप अचल उर नेह नवीने ॥श्रीराधे॥
यापै मेरौ मोह अधिक सो मो पद लीने ॥१७८॥

लाल निकट अति जानि कहै सो समाचार सब ।
पुष्प थार संग लियें द्वार हमहू आवैं तब ॥
देखि स्याम कौ रूप नैन अरझैं नहि डोलैं ॥श्रीराधे॥
करि करि विविधि प्रनाम सुवन वरखैं जय बोलै ॥१७९॥

प्रीतम श्रीकर हस्त धारि नय भीतर ल्यावैं ।
अरस परस दृग मिलैं अचल पद गति नहि पांवैं ॥

कछू वार इमि रहैं दोऊ धरि धीर निहारैं ॥श्रीराधे॥
जुगल रूप निधि उमग सहचरी लहरि सभारैं ॥१८०॥

कहैं विसाखा बैन छत्र दिसि डीठि न दीजै।
बिसरि गइ मग चाल अबै आरंभ कहीजै॥
सकुचि पीय जिय मांहि लखैं सखियन की ओरी ॥श्रीराधे॥
जय भाषैं बलिहारि दोउ ओरी तृण तोरी ॥१८१॥

लटकि चलै दै दच्छ सिंघासन सनमुख आये।
नैन पिया से निकट प्रिया छवि सुधा सनाए॥
श्रीस्यामा हसि बांह गही पीतम अंग डोलैं ॥श्रीराधे॥
महाराज सो पान धरै पग हम सब बोलैं ॥१८२॥

रसिकराय पिय जाय सिंघासन बैठे जबही।
जय, जय राधाकृष्ण जुगल जय उचरैं सबही॥
जुग सरूप के मध्य स्वल्प तकिया दीरघ धरि ॥श्रीराधे॥
वाम अंग पिय उठकि भए अभिमुख आनद भरि ॥१८३॥

अल्प शीत पहिचानि हरित पट सुभग उठायो।
श्रीस्यामा अंग दच्छ सहारैं तकिया लायो॥
पीतम हूँ तन वाम भार उपवर्हण दीन्हे ॥श्रीराधे॥
तुंगविद्या पिय दच्छ चरन सेवत कर लीन्हे ॥१८४॥

तकिया हू पर बांह परस्पर मिलि करतें कर।
अपर जुगल श्रीहस्त चित्रपट लखैं सोई वर॥
पीय केस कर लिये सहचरी विहसि सुखावैं ॥श्रीराधे॥
दोऊ ओर सिर छत्र मोरछल चमर सुहावै ॥१८५॥

नृत्य करैं सहचरि सारी सनमुख रसभीनी।
बाजे मंजुल बजैं राग गति लै सुर झीनी॥
लहि प्रबंध को अंत सखी झुकि तोरैं तानैं ॥श्रीराधे॥
नित्यविहारी जुगल विहसि श्रीदृग सनमानै ॥१८६॥

तबही उठ्यौ विमान जानि रुख जुगलविहारी।
सहचरि बरषैं कुसुम कहै जय, जय बलिहारी॥
बापी कूप तडाग बाग उपवन आरामा ॥श्रीराधे॥
सरिता सर गंभीर कंज फूले अभिरामा ॥१८७॥

डोलै मंद समीर लता लोलैं द्विज बोलैं।
कौतुक भाँति अनेक लखैं दंपति सुख सोलैं॥
मंद मंद गति जान चलै रुख लै सुखदाई ॥श्रीराधे॥
यह नीकी हँसि वस्तु परस्पर कहै लखाई ॥१८८॥

झोंक वायु की लगैं अलक उड़ि मुख पर आवैं।
चितै परस्पर अरझि चित्त कर गहि सुरझावैं॥
चलन विवस कर हलै केस कोउ नेक तनाई ॥श्रीराधे॥
दोऊ ओर दृग सिकुर सुभग नासा सी गाई ॥१८९॥

तबै दंतकी पंक्ति खुलै लखि चख झपि जाँहीं।
तैसे हीं रहि जात उभै छवि माँहिं समाँहीं॥
सबै सहचरी वृन्द सिंधु सुख थाह न पावैं ॥श्रीराधे॥
बहुरि उमगि धरि धीर खोलि दृग अहा सुनावैं ॥१९०॥

अहा शब्द सुनि श्रवन सकुचि दृग दंपति खोलैं।
लखै परस्पर रूप छटा छवि डीठि न डोलैं॥
अपनी अपनी अलक नापि लघु दीरघ भाखैं ॥श्रीराधे॥
हेरि सखिन की ओर कहैं यामैं ए साखैं ॥१९१॥

नित्यविहारी जुगल नैन ताही रस भीने।
करुणा कोर कटाच्छ लेस हमरी दिसि दीन्हे॥
सो सुखमा उर धारि वारि तन मन सिर नावैं ॥श्रीराधे॥
जय बोलैं सखि शब्द कुसुम अंजलि बरखावैं ॥१९२॥

श्रीस्यामा जू कृपा जासु पर पूरी करहीं।
गोपेश्वर दृढ़ नेम तेई यह सुख अनुसरहीं॥
साधन जतन उपाय बेद बहु भाँति बतावै ॥श्रीराधे॥
एक एक सौ वार करै हठि सिद्धि लहावै ॥१९३॥

विना कृपा लवलेस देस सो हाथ न आवै।
इहै सर्व सिद्धांत सार निर्धार कहावै॥
कृपापात्र जिमि होय जतन ताकी यह एका ॥श्रीराधे॥
कहि आये अब कहैं करैं सो सहित विवेका ॥१९४॥

गोपेश्वर सुख सिंधु मगन ह्वै सीस नवायो।
प्रेम पुलकि भरि नैन जोरि कर गुरुमुख चाह्यो॥

देखि रहे कछु वार कह्यौ चाहत नहि कहहीं ॥श्रीराधे॥
पूरन कृपा निहारि विवसता सब अंग लहहीं ॥१९५॥
चंपकलता सुजानि जानि सो रीति अनोखी ।
मंद विहसि झुकि हस्त गह्यौ कहि वचन सुपोखी ॥
अरी नैन पट खोल भट्ट हम जानी चोखी ॥श्रीराधे।
गोपेश्वर धरि धीर कहौ जो हिय कछु घोखी ॥१९६॥

सकुचि सीस पद नाय वचन बोले सुखरूपा ।
अहो नाथ मैं धन्य धन्य श्रीकृपा अनूपा ॥
दुर्लभ को अस वस्तु हस्त गत होय न सोहै ॥श्रीराधे॥
श्रीगुरुचरण सरोज रेणु सिर धारत जोहै ॥१९७॥

सकल भाँति जन ताप मेटि निज सम सुख देहूं ।
या हो तें अति उच्च गुरू पदवी जस लेहूं ॥
श्रीमहिमा को कहै बुद्धि को ऐसी पावै ॥श्रीराधे॥
दीनबन्धु श्रीनाम चित्त अति मोद बढ़ावै ॥१९८॥

महाराज श्रीवदन कथनि सरिता सुख पूरी ।
अकस्मात् सन्देह मिटें मुद उपजत भूरी ॥
श्रीमुख तें जों सुन्यौ कृपा श्रीपद कछु जान्यौ ॥श्रीराधे॥
अल्प बुद्धि अति मंद संक मन मैं अस आन्यौ ॥१९९॥

आप कही बहु गाय कुंज सुख पुंज अनूपा ।
मंडल भेद विचित्र सुथल सो जान्यो रूपा ॥
कौन समैं व्यापार कुंज कौं नीकस हो हो ॥श्रीराधे॥
सो कहियै करि कृपा बुद्धि मेरी दिसि जोही ॥२००॥

भूषन वसन अनेक रंग नाना विधि गाये ।
पुष्पनहू की जाति वर्ण बहु भाँति सुहाये ॥
चंदन वस्तु अनेक मिलें सो तथा देखिये ॥श्रीराधे॥
जे जे सेवा सौंज भिन्न आकार लेखिये ॥२०१॥

मिश्रित भयें बिचित्र चित्र जे अहैं पदारथ ।
जा ऋतु मै जो रीति भेद विधि होय जथारथ ॥
अपनी रुचि के कियें चित्त निश्चै नहि पावै ॥श्रीराधे॥
सेव्य हियें कछु वृत्ति और यह अपर करावै ॥२०२॥

तौ सेवा सुखपूर उभै दिसि कैसे मानै ।
सकल भाँति सरवज्ञ आप हिय की सब जानै ॥
अल्प बुद्धि अविवेक बहुल संसै मन धरई ॥श्रीराधे॥
लाज प्रतिष्ठा भीति गहैं नहिं कारज सरई ॥२०३॥

नीति अनीति विचारि यथा अनुसासन होई ।
मुख्य हमारौ धर्म सीस धरि करिबें सोई ॥
गोपेश्वर के वचन सुने अतिसै सुखपायो ॥श्रीराधे॥
श्रीललिता लखि प्रश्न अंग मन मोद बढ़ायो ॥२०४॥

सकल सखिन की ओर कोर दृगकंज निहारै ।
सरद विनिंदित कमल वदन हंसि वचन उचारै ॥
अए प्राण आधार सबै याकी दिसि हेरौ ॥श्रीराधे॥
पूरण लह्यौ प्रसाद हियें श्रीस्यामा केरौ ॥२०५॥

विंजन विविधि बनाय खवावै जौ काहू रचि ।
ता मुखते रस भेद सुनै तौ होय सफल पचि ॥
सेवा विधि अति प्रीति सुनी गुनि हिय इनु राखी ॥श्रीराधे॥
सत्य सत्य महाराज सखिन बानी असभाषी ॥२०६॥

बाढ़्यो अति उत्साह तासु को उत्तर भाखैं ।
जिनै प्राणप्रिय भक्त करैं पूरी अभिलाषैं ॥
गोपेश्वर मम प्राण सुनौ या को जो भेदा ॥श्रीराधे॥
अति आनंदित होय चित्त नासै सब खेदा ॥२०७॥

प्रथम कुंज की रीति कहैं जामैं जो सेवा ।
पदभूषन शृंगार कुसुम ताहू को भेवा ॥
मंडल परम निकुंज कह्यौ सत कुंज बखानी ॥श्रीराधे॥
चारि खंड मै एक पंचविंसति परमानी ॥२०८॥

अष्ट दिसा त्रय पंक्ति सबै चौबीस गनाई ।
मध्य सभा श्रीकुंज परम रमनीय लखाई ॥
नित्य नेम निसि सैन तहां निश्चै जिय जानौ ॥श्रीराधे॥
आजु ईहां पुनि भोर और इमि चारि प्रमानौ ॥२०९॥

अष्टदिसा जे कहै अष्ट मंडल सुखदाई ।
एक एक के मध्य तथा सत कुंज गनाई ॥

तिनके भये विभाग स्वल्प मंडल दस गाए ॥श्रीराधे॥
पंच पंच द्वै खंड तेऊ करि विलग बताए ॥२१०॥

चारि दिसा ते चारि मध्य एक मंडल भाई।
एक एक मै भिन्न भिन्न दस कुंज लखाई॥
अष्ट कुंज दिग अष्ट मध्य इक सभा बखानी ॥श्रीराधे॥
एक शेष जो रही अनौसर सो परमानी ॥२११॥

दच्छिन दिसि जो अहै बृहत मंडल इमि जानो।
ललित लगीं मनि मुख्य अपर सोभा हित मानो॥
मंडल ललित अनूप नाम ताको सुखदाई ॥श्रीराधे॥
मेरे सो आधीन तासु सेवा मै पाई ॥२१२॥

हरित वरन मनि मुख्य अपर सुखमा के हेतू।
मंडल सो नैरित्य कोण है अति सुख सेतू॥
मंडल हरित बखानि नाम ताहू कौ गावैं ॥श्रीराधे॥
अहै विसाखा हस्त तहां सेवा ए भावैं ॥२१३॥

पश्चिम दिसि जौ लखौ बृहत मंडल सुखदाई।
पीत वरन मनि मुख्य अपर सोभा हित लाई॥
मंडल पीत उचारि नाम इत लेवैं सबहीं ॥ श्रीराधे॥
चंपकलता प्रधान तहां सेवा इन निबहीं ॥२१४॥

मंडल जो वायव्य कोण देखो अतिभारी।
सकल रंग मनि जरी बराबरि चित्रित सारी॥
मंडल चित्र अमोल नाम ताको इत कहंहीं ॥ श्रीराधे॥
चित्रा अधिपति तहां एई सेवा सुख लहंही ॥२१५॥

उत्तर दिसि अति विमल बड़ो मंडल जो गावैं।
लसै नीलमनि मुख्य अपर सोभा अधिकावैं॥
नील नाम अस कहै इतै मंडल सब गाई ॥ श्रीराधे॥
तुंगविद्या अधिकार तहां की सेवा पाई ॥२१६॥

मंडल जुत विस्तार कहैं ईसान कोण जो।
स्वेत वरन मनि मुख्य लगी सुखमा अपार सो॥
मंडल स्वेत प्रमान नाम ताको इत जानौ ॥ श्रीराधे॥
इंदुलेखा हैं मौलि तहां सेवा इन मानौ ॥२१७॥

प्राची दिसि गुण भूरि कहैं मंडल जो गाई।
धरा कंज आकार मुख्य मनि अपर सुहाई॥
नाम गुलावी लहैं बोध ताको इत करही ॥ श्रीराधे॥
रंगदेवी परधान तहां सेवा सुख भरहीं ॥२१८॥

वरनै विमल बखानि बहि कोणे वर मंडल।
हरिचंदन रंग मुख्य लगीं मनि सुखद सुमंगल॥
गहैं संदली नाम तासु मंडल कों इत हैं॥ श्रीराधे॥
सकल सुदेवी हाथ काज सेवा के तित हैं ॥२१९॥

अपर कह्यौं षट्कोण जंत्र इनते जो बाहिर।
कोण कोण गत कुंज सुने पंचासत माहिर॥
पंचासत को प्रथम एक मंडल पुनि पंचा॥ श्रीराधे॥
एक एक मै कुंज भनी गनती दस संचा ॥२२०॥

अष्ट दिसा कहि अष्ट मध्य वर सभा बखानी।
अनौकास की एक रीति सब ठौर प्रमानी॥
जो सेवा जिहि ठाम समै लखि जैसें होई ॥ श्रीराधे॥
क्रम पद्धति सब कहै चित्त दै सुनिये सोई ॥२२१॥

लै मंडल संकेत वार इत अष्ट कहावैं।
ललित वार पुनि हरित आठ ऐसें क्रम गावैं॥
जा दिन जोई वार तासु मंडल मैं जावैं॥ श्रीराधे॥
दंपति करै विलास सखा सेवा सुख पावैं ॥२२२॥

जेहि मंडल जो रंग वार को नाम जथाहीं।
ता दिन सोई रंग वसन अंग तथाहो॥
ता ऊपर जो रंग अभूषन सोभा पावं ॥श्रीराधे॥
नील पीत ते आदि जोग समुझैं सुख छावैं ॥२२३॥

कुसुम रंग ता संग लगें सोभा अधिकाहीं।
या क्रम तें आभरन सुवन पट श्रीतन मांही॥
भोजन समै विचारि सुखद जब जैसे देखै ॥श्रीराधे॥
भोजन विधि व्यवहार सबै दिन ऐसे लेखै ॥२२४॥

षट् मंडल षट्कोण जंत्र पर कहे सुनाई।
षट रितु की षट रीति भिन्न सेवा तह गाई॥

अष्ट मंडल मै रहै सोय जागैं दिन मांही ॥श्रीराधे॥
तीजे प्रहर विहार हेतु षट मंडल जांही ॥२२५॥

जा रितु की जो रीति तेउ मंडल षट तैसे ।
सेवैं सखी सुजान लहै दंपति सुख जैसे ॥
कछू वार तहं रहैं सकल सेवा मुद लेहीं ॥श्रीराधे॥
बहुरि नित्य व्यवहार अष्टमंडल चित देहीं ॥२२६॥

विधि क्रम ऐसें कहैं जुगल इच्छा सर्वोपरि ।
रुचि इच्छा पहिचानि सबै सेवैं हित सहचरि ॥
जो अपनौ अभिलाष सोऊ विनती करि भाखैं ॥श्रीराधे॥
निज भक्तन सुख देहि जुगल जन को मन राखैं ॥२२७॥

यामै औरौं हेतु सुनौ सो कहैं बखानी ।
जिन सेवा की रीति गही आछें पहिचानी ॥
ता उर मै निति बसै जुगल अतिही सुखमानी ॥श्रीराधे॥
जो हरिकों अणु देइ लेइ सो मेरु समानी ॥२२८॥

तन मन सकल प्रकार जुगल पद जिन उरझायो ।
अचरज यामै कहा प्रभू ता उर सुख पायो ॥
भक्त कृष्ण कौ हृदय कृष्ण हिय भक्त कहावैं ॥श्रीराधे॥
शिव चतुरानन व्यास भक्त यह बात दृढ़ावैं ॥२२९॥

तौ अपने मन माहिं जबै जैसी रुचि होई ।
हृदय विराजै जुगल प्रेरना तिनकी सोई ॥
ऐसें सेवा रीति होय सब दिन सुखभारी ॥श्रीराधे॥
इच्छा रुचि दोऊ ओर एक जानौ निरधारी ॥२३०॥

परम निकुंज स्थान कह्यौ सतकुंज खंड चौ ।
रैन तहां नित सैन भोर पुनि रीति वहै सो ॥
प्रात समै उठि चलैं दिवस मंडल सखि भाखैं ॥श्रीराधे॥
जुगल परस्पर हेरि प्रेम तिनको मन राखैं ॥२३१॥

दंपति कृपा कटाक्ष करैं जा मंडल ओरी ।
सबै सहचरी सिमिटि सुखद सेवै तिहि ठौरी ॥
सेवा को मुद देहिं सोई अपनो हित मांवैं ॥श्रीराधे॥
सरिता प्रेम प्रवाह उभै परि नेम बहावैं ॥२३२॥

ललित वसन वर आजु जुगल श्रीअंग सुहावैं ।
सेवा सकल प्रकार ललित मंडल की गावैं ॥
नित्यविहारी जुगल सङ्ग मेरे पद दीन्हौ ॥श्रीराधे॥
मैं ललिता अस नाम तासु पूरौ फल लीन्हौ ॥२३३॥

पानदान कर लिये चवर पाछें जो ठाढ़ी ।
श्यामानुगा सुनाम प्रीति ललिता पद गाढ़ो ॥
तिन विमान की बात सुनी अलकैं अरुझा छानी ॥श्रीराधे॥
ताही छवि सनि रही कही मुख तैसी बानी ॥२३४॥

एहो मीति विमान नीति गति मंजु चलौ किन ।
अरझि रहे मन केस ठमकि छवि देखि रहौ छिन ॥
श्रीललिता जू कान परी बानी अति प्यारी ॥श्रीराधे॥
नेक मुरकि दृग कोर तासु की ओर निहारी ॥२३५॥

तिनहूँ जय धुनि करी सीस नय भाग्य मनायो ।
श्रीचित्रा सो भाव प्रगट बानी वर गायो ॥
महाराज अब जान रीति सुनिवें अभिलाखा ॥श्रीराधे॥
यह सेवा संकेत समुझि पायो सुख लाखा ॥२३६॥

श्रीललिता सो बात सुमिरि हिय अति सुख भींजीं ।
श्रीचित्रा दिसि हेरि कही तुमपै मैं रीझी ॥
शिष्टाचार प्रचार भयो सबही सुख पायो ॥श्रीराधे॥
अस जीहा वर नाम उचारि श्रीपद सिर नायो ॥२३७॥

गोपेश्वर की ओर हेरि हसि प्रेम लखायो ।
पुनि विमान को भाव कहन मन मोद बढ़ायो ॥
आली री सब सुनौ जुगल ऐसे रस भीने ॥श्रीराधे॥
मंद मंद गति यान चलत वन के सुख लीन्हे ॥२३८॥

दोय दंड दिन चढ्यौ जानि विनती मै कीनी ।
महाराज शृंगार समै वेला सुखभीनी ॥
करैं सबै अभिलाष भरैं उत्कंठा मन मै ॥श्रीराधे॥
नीकी भाँति सिंगार लखैं ए चख श्रीतनमै ॥२३९॥

सदा भक्त सुख हेत करैं सब विधि आचरना ।
श्रीइच्छा रुख जान परी हम तबहीं चरना ।

ता छनि विमल विमान ललित मंडल के द्वारें ॥श्रीराधे॥
मम अनुशासन पाय उतरि लाग्यौ हित भारैं ॥२४०॥

झनतकार जय शब्द भयो धरनी परसाने।
जे मंडल गत अमित सहचरी हरखी जाने॥
कोलाहल अति छयो हरषवस एरी हेरी॥श्रीराधे॥
कहैं परस्पर द्वार जान आयो अस टेरी॥२४१॥

दश मंडल के दोय खंड ते प्राची पश्चिम।
प्राची दिशि जे पंच मध्य तिनमै जो उत्तिम॥
ताहूँ मैं दिग अष्ट अष्ट वरनी वर कुंजा॥श्रीराधे॥
आगन बीच विसाल सभाथल है सुखपुंजा॥२४२॥

सबही मंडल मांहि अनौसर कुंज कही भिन।
अष्टदिसा जे अष्ट विलग तिन ते सो दच्छिन॥
प्राची दिसि जे पंच कहे मंडल सुखदाई॥श्रीराधे॥
तिन पाँचन के मध्य अहैं जो मंडल भाई॥२४३॥

ता मंडल के मध्य सभा वरकुंज बखानी।
ताके उत्तर भाग कुंज शृंगार प्रमानी॥
कोलाहल रव सुन्यो अपर कुंजन जे सहचरि॥श्रीराधे॥
प्रेम विवस शृंगार कुंज दिसि आवैं दरवरि॥२४४॥

परमानन्द उमाह परस्पर मिलि सुख लेखैं।
वेगि चलौ री वीर द्वार दंपति छवि देखैं॥
मंगल द्रव्य अनेक भाँति सजि थार लिये कर॥श्रीराधे॥
सुखद पावड़े रचे चित्रपट पुष्प लाय वर॥२४५॥

जुगल चरन अनुराग एक जीवन जिनके नित।
गावत मंगल चार हरषजुत चली यान तित॥
डोठि पर्‌यौ जब जान सीस जय जय मुख बोले॥श्रीराधे॥
निकट आय सुख पाय दंड इव परै न डोलैं॥२४६॥

उठैं निहारैं रूप प्राण तन सर्व सवारैं।
धूप दीप दै विहसि थार आरती उतारैं॥
चहूँ ओर जय सोर कुसुम वरषैं सुख सरसैं॥श्रीराधे॥
आनंद लहैं अपार सीस दंपति पद सरसैं॥२४७॥

तब सनमुख हम अष्ट आय विनती नय भाखौं।
महाराज शृंगार कुंज चलिवै अभिलाखौं॥
नित्य विहारी जुगल उठैं लै नाम परस्पर॥श्रीराधे॥
मंडल च्यारयों ओर करैं आठौं लखि अवसर॥२४८॥

उभै ओर लगि च्यारि चतुर पाछें सुख सेवैं।
अपर सहचरी वृंद किये मंडल मुद लेवैं॥
जान उतरि सोपान मंजु गति भूमि धरे पग॥श्रीराधे॥
कौतुक होत अपार चलैं शृंगार कुंज मग॥२४९॥

चामर छत्र सुहात मोर छल हंसमुखी द्वै।
मंगल वाद्य मिलाय सखी गावैं हरषित ह्वै॥
रचना कुञ्ज अनूप लखत आवत सुख भारे॥श्रीराधे॥
मंगलमय शृङ्गार कुंज पहुंचे तिहि द्वारे॥२५०॥

भीतर कियो प्रवेस जहाँ सिंघासन सोहै।
वानिकता सुनि हारि धीर को जो नहिं मोहै॥
पाद पीठि लगि खरे अरे वानी विस्तारैं॥श्रीराधे॥
अरस परस हठि कहैं प्रथम पग आप सुधारैं॥२५१॥

एक संग सोपान चरन धरि मोद बढ़ावैं।
अंग सहारौ लेहिं झुकैं सुखसिंधु बहावैं॥
मानस करि अभिलाष पूर बैठे रसभीने॥श्रीराधे॥
तकिया मृदुल अनेक सखिन चहुँ ओरी दीन्हे॥२५२॥

धन्य मनावैं भाग्य आपनौ धन्य कुंज कहि।
दंपति जहाँ सिंगार हेत राजै प्रमोद लहि॥
मंडल कियें अपार सखी ठाढीं चहुँ घाँहीं॥श्रीराधे॥
जुगल माधुरी प्रभा लखैं हँसि चित्त सिहाँहीं॥२५३॥

अष्ट अंगजा मुख सबैं मिलि मतौं विचारैं।
अब कीजै शृंगार सखिन की ओर निहारैं॥
अपर सहचरी चतुर भाव लखि सीस नवावैं॥श्रीराधे॥
जे जे सेवा सौंज थार भरि भरि लै आवैं॥२५४॥

ललित वसन तन जानि स्वेत मनि मुक्ता भूषन।
हरित कोर चहुँ ओर जरे नग विमल अदूषन॥

रंग भेद बहुभाँति सकल रतनन के गहना ॥श्रीराधे॥
लै आई सहचरी बने नूतन सुभ बरना ॥२५५॥

पीत पुष्प अंग मध्य नीलिमा कछू सुहाई।
तिन कुसुमन के रचे अभूषन थाक लगाई ॥
पुष्प जाति बहुभाँति गूथि आभरन अनेका ॥श्रीराधे॥
आले बसन सुगोप्य किये दै जल को सेंका ॥२५६॥

मंजुल सकल सुगंधि मिलो चंदन बहु जाती।
देखत उपजै मोद तथा भाजन धरि पाँती ॥
लै आई कोउ अतर अपर दरपन अंजन बर ॥श्रीराधे॥
स्यामानुगा सुधारि सुभग सिंदूर लियें कर ॥२५७॥

जे शृंगार अपार पदारथ अति सुखदाई।
बरन विचित्र बनाय सखी ते हित रचि ल्याई ॥
आय दिखावैं सकल देखि हमहूँ मुद पावैं ॥श्रीराधे॥
मन मै करै विचार विनै का भाँति सुनावैं ॥२५८॥

दिन अभिमानी सखी आय बाहिरतें टेरी।
चारि दंड दिन चढ्यौ विनै पहुँचैं जन केरी ॥
कान परी वह टेर हेरि श्रीजू हसि कहँहीं ॥श्रीराधे॥
ए ललिते धुनि कहा सुनी या दिसि कछु लहहीं ॥२५९॥

मैं पायो अति हर्ष जोरि कर मस्तक नायो।
महाराज दिन च्यारि दंड आयो कहि गायो ॥
बहुरि करी विज्ञप्ति सबै उत्कंठित मनमै ॥श्रीराधे॥
मंगलप्रद शृंगार लखैं ए चख श्रीतन मैं ॥२६०॥

मंद विहसि भ्रूलता कोर कंपी रुख जान्यौ।
उर बाढ्यौ उत्साह समै शृंगार प्रमान्यौ ॥
चहूँ ओर सहचरी खरी भरि नेह सु ही के ॥श्रीराधे॥
जुगल रूपके मध्य कियो अंतर पट नीकै ॥२६१॥

रंगदेवी सिर नाय लाडिली पाछे ठाढ़ी।
गई सुदेवी लाल ओर हित की अति गाढ़ी ॥
श्रीजू सनमुख भई विसाखा पियकें सोहैं ॥श्रीराधे॥
चंपकलता सुजान प्रिया भुज वाम बिजोहैं ॥२६२॥

श्रीपीतम भुज दच्छ गहें चित्रा हित पागी।
ललित लाडिली चरण इंदुलेखा अनुरागी ॥
तुंगविद्या निज नेह पीय पद पद्म लगायो ॥श्रीराधे॥
जुगल अंग इमि अष्ट परसि अति भाग्य मनायो ॥२६३॥

अपर सहचरी वृंद सौंज लीन्हे रुख देखैं।
जा छिन जाको काम जहांतें प्रगट सरेखैं ॥
रंगदेवी श्रीकेस सूति बेनी रचि गांथैं ॥श्रीराधे॥
स्वेत मध्य मनि लाय सुवन नाना नग सांथैं ॥२६४॥

गंडा दै दै मध्य पंच लर छोर सुहाई।
लर लर झूमक तीनि सुवन मनि रचे लगाई ॥
बारहि बार निहारि सुधारैं चित्त अरूझैं ॥श्रीराधे॥
एरी चोटी बनी अमल सखियनतें बूझैं ॥२६५॥

श्रेणी ह्वै शृंगार अंग बेनी हठि सेवै।
या ही तें सब ठौर सुजस पुरौ सो लेवै ॥
मैं लीन्हौ पट मंजु हस्त कछु नीर भिगानौ ॥श्रीराधे॥
श्रीमुख मंडल पोंछि हियो लखि अधिक जुड़ानौ ॥२६६॥

रचना तिलक अनेक भांति रचि सुभग बनाई।
विविपाटी के मध्य रेख सिंदूर सुहाई।
उभै कपोल न फबे पत्र मकरी छवि लहहीं ॥श्रीराधे॥
नैन दया के ऐन रेख अंजन मन गहहीं ॥२६७॥

श्रीनासा पर कली स्याम रंग चिबुक बिंदु त्यौं।
अलकैं दोउ सुधारि कुंडली भूत करी ज्यौं ॥
हियें पीय को नाम लिख्यौ चंदन बहुरंगा ॥श्रीराधे॥
अंगराग अनकूल समै लखि रचि सब अंगा ॥२६८॥

चंपकलता प्रवीन जुगल भुज तिलक रचाये।
श्रीविविचरण सरोज इंदुलेखा त्यौं भाये ॥
रंगदेवी भरि रंग लखैं बेनी की ओरी ॥श्रीराधे॥
वस्तु अनूप हु होय लगें श्रीअंगन थोरी ॥२६९॥

अंग रक्षा की रीति कंचुकी ललित सुरंगी।
कंठ बाहु कटि देस हियें सो फबी अभंगी ॥

तापर बँधी सुहात काछनी रंग अनेका ॥श्रीराधे॥
जा ढिंग जो सुख देत रंग पचरंग विवेका ॥२७०॥

जो जाही अंग रही सखी भूषन पहिरावैं।
श्रीजू की रुचि जानि आप सोई सुख भावैं॥
किंकिणि जाल अनूप काछनी पर मै लाई ॥श्रीराधे॥
स्वेत हरित मनिमई बद्धिका हिय पहिराई ॥२७१॥

कंठसूत्र सौभाग्य तथा लर द्वि त्रि पंचा।
सप्त इकादस लसैं बड़ी छोटी सुख संचा॥
चौकी बद्धी मध्य पृष्ट हिय मूमक दोहैं ॥श्रीराधे॥
लगी धुकधुकी लरन प्रथक तेऊ अति सोहैं ॥२७२॥

कंठ चरण परिमान बृहत वनमाल विराजैं।
ताकी रचना देखि कहत अतिहीं मति लाजैं॥
बन्दी वेना सीस फूल वर मौलि सजे हैं ॥श्रीराधे॥
कुंडल मकराकार श्रवन ढिंग द्रोउ लगे हैं ॥२७३॥

करनफूल श्रुति छिद्र उभै मूमकगत लोलक।
अलक अटक मन लाल जाल प्रतिबिंबक कपोलक॥
श्रीनासा पुट वाम लसै नथ बेसरि दच्छिन ॥श्रीराधे॥
कुसुमाभरन विभूषि चित्र गति देखि रही छिन ॥२७४॥

चंपकलता सिंगारि पंच बाजू भुज दोऊ।
एक मध्य द्वै बगल हेठ ऊपर जुग सोऊ॥
हस्त पृष्ट मनि स्वेत हरितमय श्रीकर चूरी ॥श्रीराधे॥
कंकण पहुँची वलय पछेली छंनी रूरी ॥२७५॥

ता आगैं करपूर्ण दसौ अंगुरी छवि छापैं।
सुवन फवे जा भाँति जात सो कहि कहु कापैं॥
चंपकलता निहारि वारि निज कर श्रुति लावैं ॥श्रीराधे॥
ऐसें ही सब सखी निरखि हरखैं सुख पावैं ॥२७६॥

इंदुलेखा श्रीचरण जुगल भूषन पहिराये।
बिछुवा औ पदपर्ण तथा पायल मन लाये॥
ता ऊपर शृंखला तासु पर जे हरिधारी ॥श्रीराधे॥
पुष्प रचे बहु भाव पेखि नयनै बलिहारी ॥२७७॥

अरुणवरन पट सीस वार द्वै फेरि उठायो।
छोर उभै अति चित्र लागि भुज दोऊ सुहायो॥
सीत स्वल्प बनमानि रूँम पट तूसी जोड़ा ॥श्रीराधे॥
सोऊ मौलि उठाय बगल दोऊ दिसि मोड़ा ॥२७८॥

जो पीतम हिय कंज तासु प्रतिबिंब अपर वर।
सो मैं अधिक बनाय मोद हित दियो प्रिया कर॥
दरपन विमल सुधारि बृहत आगें लै धारयौ ॥श्रीराधे॥
श्रीप्यारी निज रूप आपनो तहाँ निहारयौ ॥२७९॥

नखसिख लौ अंग देखि सखिन की सेवा मानी।
सकल ठौर शृंगार भलौ इन कियो बखानी॥
हमहूं जिय भय मानि जोरि कर हियें विचारैं ॥श्रीराधे॥
बारहि बार मनाय प्रिया पद कमल निहारैं ॥२८०॥

इतनें हीं मै मंद विहसि श्रीजू हम ओरी।
दया अमीरस पूरि हेरि दृग मोद दियो री॥
श्रीमुख वर पुट ओष्ठ हले मंगल धुनि हेतू ॥श्रीराधे॥
दंत छटा प्रस्तार भयो मानौ सखि खेतू ॥२८१॥

मुद मंगल कल्यान श्रेय सुभ हित जस खानी।
सुधा सार सुख भार सुने प्रगटी असबानी॥
मेरे मन अनकूल सदा तुमरौ आचरना ॥श्रीराधे॥
अचरज यामै कहा अङ्ग अङ्गी कहि बरना ॥२८२॥

धन्य तिहारे हस्त करैं ए ऐसी रचना।
तौई तौ बस मोर करौ मूढ़ी मन कसना॥
बार बार सिर नाय परै हम श्रीजू चरना ॥श्रीराधे॥
भरि भरि नैन निहारि वारि बलि तोरैं तिरना ॥२८३॥

स्वेत छत्र श्रीसीस फिरै चामर दोऊ ओरी।
अभिमुख सूरजमुखी मोरछल तेऊ दोरी।
बीच बीच कुसुम वर सखी बरषैं मन हरषैं ॥श्रीराधे॥
अतिसै कृपा निहारि उदधि आनंद उर सरसैं ॥२८४॥

लाल ओर जे रहीं सखी देखन इत आवैं।
हमहूं पिय दिसि जाय लखैं पूरौं सुख पावैं॥

निकट होय पद वंदि सकल शृंगार निहारैं ॥श्रीराधे॥
जैसी जा अंग अधिक सजो रचना छवि भारैं ॥२८५॥

कहैं परस्पर वचन सखी मन मोद बढ़ाई।
देखौ री पिय सीस ललित वर पाग सुहाई॥
प्रथम सुदेवी केस सूति सब लिये समेटी॥श्रीराधे॥
कयू बार ते मोरि करीजू रावर फेटी॥२८६॥

अलकैं दोउ घुमाय दई श्रवनन के आगें।
ता दिसि री भरि नैन लखौ जिनि है सुख भागैं॥
भाल विसाखा खैारि अनूपम रचना कीन्ही॥श्रीराधे॥
नासा कली कपोल उभै पत्रावलि दीन्ही॥२८७॥

भृकुटि कोर मरोर हियें देखत उपजावै।
भारे सील समुद्र नैन अंजन मन भावै॥
अरुण बिंदु वर चिबुक डोठि पकरै बरजोरी॥श्रीराधे॥
वक्ष लालकैं लिख्यौ नाम प्यारी- मनु सोरी॥२८८॥

चित्रा चित्र विचित्र जुगल भुज चन्दन लायो।
देखन बनै बनाव चित्त नहिं चलत चलायो॥
अंगराग श्रीचरण त्रिभंगविद्या जुगभायो॥श्रीराधे।
बड़ भागिनि अनुराग आपनी प्रगट जनायो॥२८९॥

लखौ झुकनि सुठि बनी कुसुंभी फेटा दहिने।
पेंच देत मन पेंच लेत गोला जिय गहिने॥
ता ऊपर सिरपेंच कलंगी झुकि झुकि हालै॥श्रीराधे॥
करि मनि चित्र अनूप सुवन तुर्रा जुग जालै॥२९०॥

भाल निकट जो पेंच तहाँ समला किन पेखौ।
मोतिन की द्वै लरैं पाँति लघु झुमकी लेखौ॥
कान ढिगारैं खुले केस दोउ ओरी एरी॥श्रीराधे॥
झूमक बृहत बनाव सुवन मनि झूमै तेरी॥२९१॥

कनक सूत्र वर गांथि मध्य पन्ना जुग भारे।
श्रवनन तेई सुहात भट्ट मोती लटकारे॥
अरी कान पर धरी लरी फूलन की लटकैं॥श्रीराधे॥
कोउ मूदि मुख हसैं हस्त निज अञ्चल पटकैं॥२९२॥

अरी वीर जिय पीर होत लखि नासा ओरी।
झूमत विसद बुलाक ओष्ठ अरुणाई थोरी॥
वागौ ललित अनूप अंग लगि चुस्त फब्यौ री॥श्रीराधे॥
जे संकीरण ठाम तहाँ सुखद खुल्यौ री॥२९३॥

बांहैं चूरीदार चीनि ऊँची वंद झूमैं।
पाट बहुत संजाफ हरी बर घेरा घूमैं॥
सोने सूत सुहात चुन्यो कर मंजु भले हैं॥श्रीराधे॥
कंठा मुक्ता माल कौस्तुभ पञ्च गले हैं॥२९४॥

श्रीभुजदंडन मध्य विमल अंगद एक भारी।
मोती लर दोउ ओर बंधी झूमक लटकारी॥
पहुँची हू मनि स्वेत उभै पहुँचन जुग सोहैं॥श्रीराधे॥
दसौं आंगुरिन बीच मुद्रिका लखैं विमोहैं॥२९५॥

पीत वरन कछु झलक लखी जामा के भीतर।
चित्रा दावन पाट टारि देखै सोभा घर॥
कटि प्रदेस तें जुगल गुल्फ लौं रंग बसंती॥श्रीराधे॥
ऊरु जानु सुरुवार चुस्त सो पेखि हसंती॥२९६॥

जरी स्वेत मनि छला दसौं अंगुरी श्रीपद जुग।
श्रीगुल्फन के हेठ लरी मुक्ता बाँधी युग॥
ता ऊपर लर उभै कुसुम की झूमक लटकैं॥श्रीराधे॥
अरझि रहैं दृग हेरि सखी मन पट पद अटकैं॥२९७॥

पीत वरन चौकोर चित्र रूमाल सीस पर।
तूसी रंग अनूप दुसाला फब्यौ अधिकतर॥
श्रीश्यामा हिय कंज अपर प्रतिबिंब तासु जौ॥श्रीराधे॥
दच्छ हस्त पिय गहैं लखैं जिय प्राण प्राण सो॥२९८॥

दरपन विमल विसाल विसाखा सनमुख देहीं।
नखसिख निज शृंगार पेखि पीतम सुख लेहीं॥
महाराज शृंगार आजु अतिसै छवि भारी॥श्रीराधे॥
धन्य हमारौ भाग्य सकल दृग होत निहारी॥२९९॥

तब लाला हसि मंद हेरि मृदु वचन प्रकासे।
मंगल मोद कदंब सखी मन कंज विकासे॥

ललिते कहौ सिंगार आजु प्यारी तन का है ॥श्रीराधे॥
उत्कंठित मम चित्त नैन चाहत एला है ॥३००॥
ता छिन ताही ठौर बिसाखा घूमत आई।
नीके नैन निहारि प्रिया छवि उर धरि लाई॥
सो मेरे ढिग आय हस्त मम निज सिर लाए ॥श्रीराधे॥
धन्य एई करकंज बार बहु कहि तिन गाए ॥३०१॥

जानि परयौ सो हेत लाल जिय अति अकुलाने।
अंतरपट दिसि हेरि बहुरि मो ओर लखाने॥
ललिते वेगि उपाय करौ प्यारो लग जाई ॥श्रीराधे॥
मैं हूँ समय विचार चली चरनन सिरनाई ॥३०२॥

श्रीश्यामा ढिग जाय चरन बंदे कर जोरी।
सुखमा सिंधु अपार मीन दृग राखे बोरी॥
सूरज रस्मी जाल रंध्र ह्वै प्रगट लखानी ॥श्रीराधे॥
सारो पंजर मध्य मृदुल बोली अस बानी ॥३०३॥

चढ़यौ जाम अभिराम दिवस या मैं नहि भोरौ।
करौ भोग शृंगार जतन आलो मत मोरौं॥
तबहीं सनमुख आय रंगदेवी सिरनायो ॥श्रीराधे॥
महाराज शृंगार भोग को समै सुहायो ॥३०४॥

मैं भाख्यौ कर जोरि नैन श्रीकोर निहारी।
श्री अनुशासन होय देउ अंतर पटटारी॥
श्रीअंबुज दृग पलक हेतु पायो बिलगायो॥ श्रीराधे॥
जुगलानंद सरूप सिंधु उमगे सुख छायो ॥३०५॥

मिले परस्पर नैन लखौं पलकैं गति भूली।
एक एक छवि धाम अधिक ए इन समतूली॥
अंग अंग प्रति हेरि मंद हँसि लेत बलैया॥ श्रीराधे॥
अरस परस शृंगार सराहत रीझि रिझैया ॥३०६॥

सुनि सुनि सखी सिहात अंग फूली नहि मांवैं।
जय जय शब्द उचारि पुष्प बरषैं सिर नावैं॥
जुगल माधुरी छटा निरखि आछें उर धार॥ श्रीराधे॥
छिन छिन आनंद सिंधु मगन ह्वै लहरि संभारैं ॥३०७॥

चंपकलता प्रवीन आय चरणन सिर धारयौ।
हस्त जोरि भरि बिनै हियें श्रीवदन निहारयौ॥
दया सील वर सिंधु नैनश्री इन दिसि हेरे॥ श्रीराधे॥
धन्य धन्य जय शब्द हरषि सखियन सुख टेरे ॥३०८॥

बहु विधि सीस नवाय कही बानी गति भोरे।
महाराज अभिलाष सकल भाषैं सुख मोरें॥
मैं हूँ लाज बिसारि विवस ह्वै कहौं बखानी॥ श्रीराधे॥
आवै भोग सिंगार समै मंगल सुखदानी ॥३०९॥

अभिप्राय उनमान कियो आली सब धाईं।
अमित सौंज शृंगार भोग सजि ते लै आईं॥
सकल सहचरी वृंद आय हम कह दिखरावैं॥ श्रीराधे॥
सेवक चतुर विनीत कृपा सबके मन भावैं ॥३१०॥

नित्यविहारी जुगल हियो लखि मैं सिर नायो।
तथा विसाखा समुझि काज सोई मन आयो॥
आभूषन श्रीचरण हस्त नासा के लीन्हे॥ श्रीराधे॥
नीर धोय अंगुछाय धूप दीपक सुचि दीन्हे ॥३११॥

अमल स्वेत मनि थार उभै वर चौकी राखे।
भरे कटोरा सौंज समै जो ता अभिलाषे॥
मेवा अमित प्रकार भेद तिनके बहु भाए॥ श्रीराधे॥
मोदक जाति अनेक रचे सखियन सुखदाए ॥३१२॥

दधि माखन वर दुग्ध रची घेंया बहु रीती।
नाना विधि पकवान विमल उपजै लखि प्रीती॥
चूरन चटनी भेद मुरब्बा सुभग अथाने॥ श्रीराधे॥
त्रिविधि भांति फल सुरस कचरिया पापर आने ॥३१३॥

प्रीति सखिन की ओर देखि बिंजन अनपारा।
को पावै कहि अंत चित्त समुझैं सुखसारा॥
भरे कटोरा पांति थार धरि उभै सुहाए॥ श्रीराधे॥
मंगल भोजन हेत विनैजुत वचन सुनाए ॥३१४॥

निज जन अति सुख दैन गिरा सो मन मैं आई।
विहसि परस्पर निरखि हरखि कर लै मुख नाई॥

दंपति मोद बढाय वस्तु सुभ खात खवावत ॥ श्रीराधे ॥
रूप नाम गुन हेतु सखी कहि पृथक बतावत ॥३१५॥

अली बढावैं प्रीति पदारथ विविधि बखानी ।
युगल स्वाद की रीति जथाविधि कहैं प्रमानी ॥
सखियन को लखि हेत लेत सुख देत घनेरे ॥ श्रीराधे ॥
भोजन समै विनोद अगम जानै जो नेरे ॥३१६॥

नाना कथा प्रसंग सहचरी सुनै सुनावैं ।
गूढ़ हियें अस हेतु ग्रास द्वै कैसेंहुं खावैं ॥
नित्य विहारी जुगल भक्त हित तृप्ति सुनाई ॥ श्रीराधे ॥
तबै अली सुख पाय पात्र सब लिये उठाई ॥३१७॥

भाजन अचवन हेत अपर जुगलै वर धारे ।
कंचन खरिका हस्त दिये झारी जल सारे ॥
दै विशुद्ध हित द्रव्य जुगल अचाए आछैं ॥ श्रीराधे ॥
पट दीन्हौ श्रीचरण धोय अंगुछाए पाछैं ॥३१८॥

चूरन सकल सुगंधि मई धरि उभै कटोरी ।
श्रीदंपति कर दई सुखद मुखवास निहोरी ॥
वीरी परम विचित्र स्वेत मनि भाजन धरिकै ॥श्रीराधे॥
सनमुख मै कर लियें खरी निरखौ सुख भरिकै ॥३१९॥

हँसि हँसि दंपति लेत मंजु कर खात खवावत ।
श्रीमुख मंडल मोरि नैन भृकुटी थरकावत ॥
कबहू वंचन करत देत नहि जो मुखवावैं ॥श्रीराधे॥
सत्य जुगल सुख सिंधु श्रोत अस बहु प्रगटावैं ॥३२०॥

ए आनंद झकोर सहचरी छिन छिन पावैं ।
सेवैं जुगल सरूप तासु फल इहै मनावैं ॥
जानैं होत अवार सवारैं सुवना भरना ॥श्रीराधे॥
श्रीमुख जुग कर चरण करैं रचना बहु वरना ॥३२१॥

अतर अमोल अनूप अमल सौरभ्य सदन वर ।
मनि विचित्र रचि कुसुम सोई भरि दिये जुगलकर ॥
श्रीनासा ढिंग ल्याय लेत आमोद परस्पर ॥श्रीराधे॥
ता छिन दर्पन आनि धरयो सनमुख सुंदर तर ॥३२२॥

तहाँ लखैं प्रतिबिंब रीझि शृंगार निहारैं ।
अति प्रसन्नता पाय विहसि मृदु गिरा उचारैं ॥
अहो अंगजा सुघर लेत सुख देत अपारैं ॥श्रीराधे॥
ऐसें श्रीमुख वचन सुनै हम तन मन वारैं ॥३२३॥

समै जानि शृंगार आरती थार बनाई ।
सकल रंग मनि जाल रचे मुक्ता वर लाई ॥
पीत वरन करपूर जाल अवकास मध्य धरि ॥श्रीराधे॥
मंगल वस्तु समस्त सजी प्रसून रचना करि ॥३२४॥

चौकी सनमुख राखि थार तापै सो धारी ।
मगल दीप उदोत कियो करपूर प्रचारी ॥
चहूं ओर सहचरी कुसुम अंजलि सुभ लीन्हे ॥श्रीराधे॥
निरखैं जुगल मुखारविंद मो तन दृग दीन्हे ॥३२५॥

बाजे अमित प्रकार बजे मंगल धुनि नाना ।
दंपति सुजस बखानि करैं मधुरे सुर गाना ॥
मैं हूँ दृग भरि हेरि जुगल पद सीस नवाई ।श्रीराधे॥
जय जय गिरा उचारि कुसुम अंजलि दरसाई ॥३२६॥

चहूँ ओर जय शब्द वाद्य वर गान मिली धुनि ।
छाइ गई सब लोक वंदना करैं उठं सुनि ॥
वरसै पुष्प अपार थार मैं नय कर चारी ॥श्रीराधे॥
चारि चरन हिय उभै एक श्रीवदन विचारी ॥३२७॥

सप्त बार सर्वांग हरषि शृङ्गार आरती ।
अंग अंग छवि हेरि हियें धरि इमि उतारती ॥
सो धरनी धरि थार धोय कर पुष्प लिये भरि ॥श्रीराधे॥
जय मंगल धुनि गाय अंजली दई सिरोपरि ॥३२८॥

हरषैं वरषैं सुवन सहचरी जय जय बोलैं ।
बाहिर कुंज प्रचार करैं परिदच्छिन डोलैं ॥
जुगल विहारी नाम जीह गावैं सुख पावैं ॥श्रीराधे॥
बारबार भरि प्रेम दंडपरनाम सुभावैं ॥३२९॥

भीतर आय बलाय लेई चरनन सिर देहीं ।
जुगल माधुरी छटा पेखि सेवा फल लेहीं ॥

जो ता मंडल मध्य सभा वर कुंज बखानी ॥श्रीराधे॥
सभै तहाँ को जानि सखिन रचना मन आनी ॥३३०॥

मध्य सिंघासन विमल भक्ति बहुतन मन लागीं।
बिसद बिछौना मृदुल गेंदुवा धरे विभागी ॥
झालरि मनिमय काम अमित ऊपर वर चँदवा ॥श्रीराधे॥
अष्ट छरी नग जरी डोरि लै बांधी खंभवा ॥३३१॥

हेठ लगीं सोपान पंच चहुँ ओर सुहाई।
आस्तरण सब ठौर पेखि मन रहत लुभाई ॥
सायवान सुभ रूप लग्यौ बाहिर चौकोरी ॥श्रीराधे॥
छरी पुष्प मनिमाल जाल झूमक लटकोरी ॥३३२॥

सींचें अतर अमोल वायु लै लपटै आवैं।
मनिमय जिनके अंग गुल्म बहु धरे सुहावं ॥
सभा कुंज शृङ्गार ठाम लौं चित्र सुहाए ॥श्रीराधे॥
रचे पांवड़े वसन पुष्प नाना विधि लाए ॥३३३॥

समाचार यह सखिन आय सब हमैं सुनायो।
सुनि विचार मन माँहि मोद अतिसै हिय पायो ॥
सीस नाय कर जोरि जानि रुख हमहूं भाखैं ॥श्रीराधे॥
सभा कुंज श्रीवर्ण धरैं अस जन अभिलाखैं ॥३३४॥

नित्य विहारी जुगल सदा निज जन रुचि चाहैं।
उठिवे को उद्योग परस्पर चित्त उमाहैं ॥
कंध मेलि भुजलता दोऊ अवनी पर ठाढ़े ॥श्रीराधे॥
चहूं ओर सहचरी किये मंडल मन बाढ़े ॥३३५॥

चामर छत्र अमोल मोरछल हंसमुखी कर।
सखी लियें अनुकूल पुष्प वरषैं आनद भर ॥
जय जय मंगल शब्द वाद्य मृदु गान उचारयौ ॥श्रीराधे॥
नित्य विहारी जुगल जबैं श्रीचरण प्रचारयौ ।.३३६॥

संग सहचरी वृंद अपर कुंजन बहु ठाढ़ी।
बरषैं अतर समोय कुसुम निरखैं रुचि बाढ़ी ॥
दंपति तिन दिसि हेरि देहि परमानंद भूरी ॥श्रीराधे॥
चलैं मंद गति हंस हस्ति मद करत विदूरी ॥३३७॥

सभा कुंज ढिग आय देखि अतिसै सुख पायो।
सोई पदारथ धन्य सदा जो श्रीमन भायो ॥
चढ़त हरें सोपान देहरी नाघत एरी ॥श्रीराधे॥
कौतुक होत अपार जुगल अरि रहत खरेरी ॥३३८॥

कूँकैं कोकिल मोर चेत पावैं पग धारैं।
झुकैं विहसि लखि मंद अंग श्रीअङ्ग सभारैं ॥
ऐसें पहुँचे जाय सुखद सिंघासन पाँहीं ॥श्रीराधे॥
सहचरि चतुर प्रवीन थाँभि श्रीतन हरखाँही ॥३३९॥

सुख सरिता प्रस्रवै मोद निधि झरना झरई।
दंपति आनंद सिंधु चरन सिंघासन धरई ॥
रूप माधुरी उदधि दोऊ तकिया लगि सोहैं ॥श्रीराधे॥
भूषन वसन सवारि सहचरी निरखि विमोहैं ॥३४०॥

दीरघ ऊचौ स्वल्प मध्य तकिया जो अहई।
श्रीजू ऊरू दच्छ. वाम ऊरू पिय लहई ॥
घूँट ऊन्नत वाम प्रिया तापै भुज वाँई ॥श्रीराधे॥
ऐसें पीतम ओर बैठि बेरीति सुहाँई ॥३४१॥

पीतम को कर दच्छ वाम प्यारी कर मंजुल।
देत लेत वर पुष्प मेलि अंगुरी दल संकुल ॥
श्रीस्यामा भुज दच्छ वाम भुज पीतम केरी ॥श्रीराधे॥
पाछें तकिया बृहत तहाँ ते अरझि रहेरी ॥३४२॥

अभिमुख जुगल सरूप विमिश्रित तन मन राजैं।
उत्तर दिसि श्रीवदन किये शोभा भर भ्राजैं ॥
सीस जुगल वर छत्र श्वेत अमृत कण स्राई ॥श्रीराधे॥
चामर बगलन उभे अवधि सुखमा दरसाई ॥३४३॥

अग्र सिंघासन निकट मोरछल जुग्म सुहावैं।
सनमुख सूरजमुखी दोऊ तमचय बिलगावैं ॥
अपनी अपनी ठौर सखी ठाढ़ी सुख सेती ॥श्रीराधे॥
जे जे सेवा सौंज हस्त सोहैं तिन तेती ॥३४४॥

चंपक लता प्रवीन संग चित्रा जिनके हैं।
लगी सिंघासन अग्र खरी दंपति मन तेहैं ॥

इंदुलेखा को जुग्म तुंगविद्या दोउ बाजू ॥श्रीराधे॥
पिय प्यारी अति निकट लसैं सेवा सुख साजू ॥३४५॥

पाद पीठ के कोण पृष्ठि दिसि हूजे दोऊ।
रङ्गदेवी श्रीप्रिया अङ्ग परसैं लगि सोऊ॥
तथा सुदेवी कोण लाल ओरी अति निकटैं ॥श्रीराधे॥
ठाढ़ी चाव अपार हियें सेवा रुचि निपटैं ॥३४६॥

रंगदेवी वर जुग्म सुदेवी इनको जानौ।
तिनकी सहचरि मुख्य अष्ट मै एह पमानौ॥
कलकंठी वर नाम कहैं कावेरी दोऊ ॥श्रीराधे॥
पाछें बरी सुहात सिंघासन लागी सोऊ ॥३४७॥

ऐसें मंडल कियें सहचरी संगें लीन्हे।
जाको जस अधिकार पाँति अनगनती कीन्हे॥
ठाँढ़ी तन मन दियें जुगल पदपंकज माँहीं ॥श्रीराधे॥
सेवा सौंज अपार हस्त ते लीये सुहाहीं ॥३४८॥

अधिपति मुख्य प्रधान होय जा मंडल जोई।
ता दिन सभा समाज नृत्य अधिकारी सोई॥
मंडल ललित अनूप ईहाँ की मैं ई राजा ॥श्रीराधे॥
सहचरि कर्म अनेक एक मेरे वस काजा ॥३४९॥

याही तें लै संग विसाखा हिय हरखानी।
ठाढ़ो सनमुख जाय भाग्य पूरो निज मानी॥
अपर सहचरी वृन्द जिन्हैं मेरी गति एका ॥श्रीराधे॥
नृत्य गान वर वाद्य कुशल एकन ते एका ॥३५०॥

वाद्य मिलें सुर एक अलाप समै लखि करईं।
दंपति होंहि प्रसन्न जतन सो मन सब धरईं॥
तबही उठि हम जाय सिंघासन सीस लगायो ॥श्रीराधे॥
लै बलाय कर जोरि नृत्य को भाव जनायो ॥३५१॥

श्रीदृग अंबुज विकसि हेरि उलटे पग धरि धरि।
मिली आय विज जूथ प्रणति डग डग बहु करि करि॥
मंगल गान प्रबन्ध सप्त सुर तीन ग्राम जे ॥श्रीराधे॥
एकविंस अस कहैं मूर्छना तान अमित ते ॥३५२॥

उपज अपूरब कंठ सुर संगति नाम उचारयौ।
वर्ण वृत्ति वर जमक ललित पद सुजस प्रचारयौ॥
नृत्य भेद की कला प्रगट करि अंग दिखाई ॥श्रीराधे॥
जाकी जैसो रूप जनौ मूरति धरि आईं ॥३५३॥

देखैं सुनैं प्रसन्न होंहि प्यारी हंसि प्रीतम।
त्यौं त्यौं मो हिय हरष उमग बाढ़ैं रस नौतम॥
कीन्ही जतन अनेक जहाँ लगि ही मति मोरैं ॥श्रीराधे॥
छाय रह्यौ सुखसार चार मुद सिंधु हिलोरैं ॥३५४॥

जुगल प्रेम को वस्य जतन सर्वोपरि ऐसी।
जा विधि उपजै रीझ सक्य भरि कीजै तैसी॥
नाना तरल तरंग जीव पूरी बढ़ि धारैं ॥श्रीराधे॥
दंपति हिय उमगाय तबै हम ओर निहारैं ॥३५५॥

तथा विसाखा रीति अलौकिक बहु प्रगटावैं।
श्री प्यारी पिय पेखि मोद मन अधिक बढ़ावैं॥
अपर सहचरी वृन्द जथा अभिलाषा जाकी ॥श्रीराधे॥
नृत्य गान दरसाय रिझाय न राखत बाकी ॥३५६॥

हम सब या सुख मगन देह मन दसा भुलानी।
क्रिया कदंब प्रमाण रीझ दंपति फल मानी॥
श्रीजू मृदुल सुभाव जानि ए श्रमित भई हैं ॥श्रीराधे॥
निज निज कठ उतारि माल श्रीहस्त गही हैं ॥३५७॥

नैन सील के ऐन सैन दै निकट बुलाईं।
परमानंद समुद्र मझावत हमहूं आईं॥
अति ही कृपा निहारि परी चरनन सुख पावैं ॥श्रीराधे॥
बार बार हिय लाय परसि दृग सीस लगावैं ॥३५८॥

उठि उठि लखैं सरूप जोरि कर सन्मुख ठाढ़ी।
माल प्रसादी लहैं पान बीरी हित बाढ़ी॥
सहचरि सब सनमान पाय सुख सिंधु समानी ॥श्रीराधे॥
धन्य धन्य हम धन्य कहैं अति हिय हरखानी ॥३५९॥

अपनी अपनी ठौर पाय विश्राम सुहानी।
जुगल माधुरी छटा लखैं दृग प्यासे पानी॥

राग रंग रस पगे पंच घटिका गति जानी ॥श्रीराधे॥
पावैं श्रीजू नीर अमल अस मन हित आनी ॥३६०॥

अग्रभाग हम आय विसाखा दोऊ ठाढ़ी।
निरखैं दंपति वदन चाह सोई चित बाढ़ी॥
जानि हियै को भाव मंद हँसि हेरि परस्पर ॥श्रीराधे॥
बोले आनद कंद वचन जन पोषक जल धर ॥३६१॥

यह सेवा की रीति उभै ओरी सुखदाई।
स्वामी सेवक चाह रूप एकै दरसाई॥
सत स्वामी सो होय दास कर सर्म प्रमानै ॥श्रीराधे॥
भृत्य नाथ हिय गहै वहै तिन बिन नहिं जानै ॥३६२॥

श्रीमुख के अस बैन सुधा धारा सुख सरसे।
सहचरि अनवधि मोद लहैं श्रवनन हिय परसे॥
तन मन वचन विचार सार सिद्धांत सदा अस ॥श्रीराधे॥
फनि मनि जीवन जोग जथा दंपति पद हम तस ॥३६३॥

या विधि परम उछाह उभै ओरी अधिकाई।
नीर पान की जतन करी तबहीं सुखदाई॥
करन कलूला हेत सखी भाजन कर लीन्हे॥ श्रीराधे॥
सनमुख ठाढ़ी आय निकट अति रुख गति चीन्हे ॥३६४॥

वर झारी कर लियें अपर सहचरी निहारैं।
सर्वाधार विनोद सहित जुग हस्त पसारैं॥
करैं कलूला विसद पानि मुख लै जल डारैं॥ श्रीराधे॥
आलौं वसन सुगंधि भरयौ दै पोछि सुधारैं ॥३६५॥

अमल स्वछ मनि स्वेत रकाबी सुभग सुहाई।
तापै वस्त्र भिजोय नीर सो दियो बिछाई॥
हीरक मनि को घटित कटोरा बानिक प्यारी॥ श्रीराधे॥
निरमल नीरसु सीर पूर करि बायैं धारी ॥३६६॥

ऊपर धरि सरपोस सखी लै हम ढिग आई।
एक विसाखा ओर एक मो लगें सुहाईं॥
अपर सहचरी स्वल्प कटोरी चूरन धरिकैं॥ श्रीराधे॥
बहुत सुगंधित वस्तु गुणद एकी सम करिकैं ॥३६७॥

अति आनंदित होय रकाबी हम कर धारी।
ऊपर जो सरपोस सखिन सो दियो उघारी॥
छूटैं लपट सुगंध नीर लालच उपजावै॥ श्रीराधे॥
देखतहीं दृग हियो ऐंचि अपनी दिसि ल्यावै॥ ३६८॥

प्रथम कटोरी दई हस्त श्रीचूरन केरी।
सो मेल्यौ श्रीवदन स्वाद गुण गंध घनेरी॥
ता पाछैं मुखचंद्र नीर हित नेक नवायो॥ श्रीराधे॥
हम जय धन्य बखानि कटोरा ओष्ठ लगायो ॥३६९॥
घूंट घूंट रस लेत स्वाद तामै सब दरसैं।
जे रुचि हियें उदोत नीर मैं तेई सरसैं॥
पीवत भलें सराहि हरख बस मन अस आई॥ श्रीराधे॥
श्रीकर लिये उठाय कटोरा दोउ सुहाई ॥३७०॥
अरस परस मुख लाय पियावत पियें सुखारे।
ता छिन को आनंद कहौं का बनै निहारे॥
जुगल विहारी नित्य करैं क्रीडा इहि भांती॥ श्रीराधे॥
सकल सहचरी वृंद होय सीतल अति छाती ॥३७१॥

लै भाजन दै वसन जुगल मुख कर अंगुछाई।
बहुरि दिव्य मुखवास दई सो अति मन भाई॥
बीरी रुचिर सुवास वस्तु धरि विसद अनेका॥ श्रीराधे॥
चित्र विचित्र अनूप रूप रचि सहित विवेका ॥३७२॥

उज्वल हीरा घटित रकाबी वसन भीन धरि।
तापै बीरी राखि चातुरी अधिक प्रगट करि॥
आले वस्त्र विमूदि सखिन हमरे कर दीन्हीं ॥श्रीराधे॥
सहित विसाखा हरषि हस्त दोऊ दिसि लीन्हीं ॥३७३॥
श्रीआनन ससि छटा नैन चातक रस पागे।
वर तमोल जुत वदन लखैं उत्कंठा लागे॥
छिन छिन जन मन चाह करैं पूरी पिय प्यारी ॥श्रीराधे॥
मंजुल हस्त उठाय पान लै हसि मुख धारी ॥३७४॥
खात खवावत अरस परस अति नेह नवीने।
सरिता प्रेम प्रवाह उमग तन मन दृग भीने॥

देत लेत हठि हेत विनोद प्रमोद विवस हंसि ॥श्रीराधे॥
नखतावलि रद छटा अरुन रंग सनी बनी लसि । ३७५॥
सखी विदूषक वेस विविधि विधि बनिबनि आवै ।
कौतुक भांति अनेक प्रगट करि जुगल रिझावैं ॥
स्यामानुगा प्रवीन वीन अच्छर धुनि गाई ॥श्रीराधे॥
सारंग राग अलापि समै की रीति जनाई ॥३७६॥
डेढ़ जाम दिन बिगत भयो ऊपर बीतत अब ।
राजभोग वर समै जानि अति काल कहत सब ॥
मंडल ललित अनूप एक तामै दस गाये ॥श्रीराधे॥
पंच पंच के भाग उभै एहि रीति सुहाये ॥३७७॥
तिन पांचन मै मध्य सोई जा थल अवराजैं ।
अपर च्यारि दिसि च्यारि विमल मंडल वर भ्राजैं ॥
जो प्राची दिग अहै सुभग मंडल सुख खानी ॥श्रीराधे॥
सभा कुंज ता बीच तहा रचना अधिकानी ॥३७८॥
दिव्य सिंघासन धारि बिछौना मृदुल सुहाए ।
अतर सींचि सब ठौर सुवन बहु काम बनाए ॥
बैठे हैं जिहि ठौर तहां तें इतलौ छाए ॥श्रीराधे॥
विमल वितान बनाव पेखि मन अटकि लुभाए ॥३७९॥
झालरि चित्र विचित्र लगी मनि अति झलकांहीं ।
नगमुक्ता वर जाल कुसुम ता मध्य सुहाहीं ॥
लगि झालरि की जौर जाल ते दोऊ ओरी ॥श्रीराधे॥
रहे भूमि लौं लटकि छरी नाना रंग सोरी ॥३८०॥
मध्य पांवड़े पुष्प छौम पट सुखद रचाये ।
राजभोग सुभ साज सकल ता कुंज सुहाये ॥
दंपति चित्त प्रमोद हेत रचना बहु भाई ॥श्रीराधे॥
चतुर सहेली आय हम सब कह्यौ सुनाई ॥३८१॥
कीन्ह्यौ चित्त विचार कहैं का जुक्ति बनाई ।
सहसा आतुर वचन कथनि अनुचित प्रभु पाई ॥
सखी विदूषक एक वेस तापस धरि आई ॥श्रीराधे॥
जथा राजगृह जाय ऋषीश्वर विपिन विहाई । ३८१॥

वृद्ध स्याम स्रत देह गेह तेरैं नृप आयो ।
तप संच्यौ बहुकाल अवैं लौ तथा बितायो ॥
मंदर कंदर बैठि जोग अष्टांग उपायो ॥श्रीराधे॥
इंद्री वृत्ति समेटि चित्त निरवासित भायो ॥३८३॥
प्राण सकल करि एक चक्र षट सूधे कीन्हे ।
गुरु उपदेशित रूप सुमिरि तिन पर मन दीन्हे ॥
लागी शुद्ध समाधि बाह्य व्यापार न जानौ ॥श्रीराधे॥
का जानी जुग गए किते सौ सत्य प्रमानो ॥३८४॥
सो समाधि निर्मुक्त भई अबही ततकाला ।
क्षुधा वह्नि संतप्त देह मै लखी नृपाला ॥
जीह चपल वस दीन होन मन रस दिसि धावै ॥श्रीराधे॥
कीन्ह्यौ बहुत विचार स्वल्प थिरता नहि पावै ॥३८५॥
अहो नृपति सिर मौर सुजस तैसै सुनि आयो ।
भोजन नाना भांति मिलै मेरे मन भायो ॥
विद्या सकल प्रवीन तुंगविद्या सुनि बानो ॥श्रीराधे॥
सिद्ध निकट सिरनाय बैठि जोरे जुग पानी ॥३८६॥
अहो तपस्या धाम देहु वर जो हम चांहै ।
पाछें सो तुम कहौ करैं यामै सक नाहैं ॥
यह कल्पानो क्षुधा कृपा करि हमकौ दीजै ॥श्रीराधे॥
गावैं सुजस तुम्हार अवै बरु सरवस लीजै ॥३८७॥
हमरे भाल सुहाग नाम जिनकौ लै राजैं ।
चाहत हैं यह वस्तु वीर तिनहो के काजैं ॥
सुनि दंपति प्रिय वचन सखिन हिय भाव अपारी ॥श्रीराधे॥
विहसे जुगल किसोर हँसी नहिं थमत संभारी ॥३८८॥
सकल सहचरी चरण परै तन मन बलिहारैं ।
हास्य प्रौढ़ इमि कला करैं कौतुक सुख सारैं ॥
नित्य विहारी जुगल जानि जन जिय सुखदाई ॥श्रीराधे॥
चितये लोचन कोर हमहुँ जीवन निधि पाई ॥३८९॥
सीस नाय कर जोरि विनै सिगरी हम भाषैं ।
महाराज अब राजभोग सुख जिय अभिलाषैं ॥

देवें हर्ष अपार चित्त आनी सो बानी ॥श्रीराधे॥
उठिवे के उद्योग जुगल कीन्ह्यौ रसखानी ॥३९०॥

सहचरि कंध सहारि उतरि ठाढ़े दोउ धरनी।
उतरनि देखत बनी जात जीहा नहिं बरनी ॥
सखि मंडल ह्वै मध्य परस्पर दै गलबाहीं ॥श्रीराधे॥
चले धरैं गति मंद चरन लखि नैन सिराहीं ॥३९१॥

जुगल छत्र सिर फिरैं चमर घूमैं दिसि दोऊ।
हस्त मोरछल सखिन उभै रविमुख सी सोऊ ॥
उठै परम आमोद पाँवडे चित्र सुहाए ॥श्रीराधे॥
कुंज निकसि सोपान उतरि चंदवा तर आए ॥३९२॥

लखैं अनूप वितान जाल बगलन दोउ लटिके।
जाल मध्य विश्राम करैं पक्षी मनि घटिके ॥
डोलैं पाय समीर वेग कौतुक बहु बाढ़ैं ॥श्रीराधे॥
दंपति जा दिसि नैन दैंहिं ते पकर गाढ़ैं ॥३९३॥

या विधि आनंद मोद बढ़ावत आवत प्यारे।
राजभोग जा ठौर कुंज सो लखी सुखारे ॥
देखि भए मन मगन चढ़े सोपान गए थल ॥श्रीराधे॥
रचना सहचरि हस्त पेखि दृग परत नहीं पल ॥३९४॥

सिंघासन वर बनिक हेरि हरषे मन माहीं।
ठौर ठौर आनंद एक एकन अधिकाहीं ॥
अतिसै प्रमुदित होए चरन वर तापै धारे ॥श्रीराधे॥
जुगल सहारी लेत चहूँ दिसि सखी सँभारे ॥३९५॥

बैठत मंजुल केलि भट्ट देखत बनि आई।
बार बार सौ छटा हिये अरुझत वरिआई ॥
श्रोपदजुग लटकाय जुगल बैठे इमि सोहैं ॥श्रीराधे॥
अंग अंग सहचरी उतारत भूषन जोहैं ॥३९६॥

भूषन सकल उतारि लिये तन एक न राखे।
मध्य कियो आवरन वसन बदलैं अभिलाखे ॥
दोऊ ओर सहचरी सीस नय विनय सुनावैं ॥श्रीराधे॥
महाराज करि कृपा खड़े हूजै मुद पावैं ॥३९७॥

निज भक्तन के हेत करैं सब अति सुख पाई।
श्रीतन साटी कोर चित्र रंग अरुण सजाई ॥
धोती ललित अनूप उपरना रचि पीतम अंग ॥श्रीराधे॥
बिलग भयो पट मध्य हरखि बैठे दंपति संग ॥३९८॥

पाक सदन सहचरी भरी मन मोद अपारैं।
फूली अंग न मात सौंज मन दिये सवारैं ॥
कोलाहल अति भयो हरष वस वचन उचारैं ॥श्रीराधे॥
धरौ उठावौ लेहु देहु पूरी धुनि सारैं ॥ ३९९॥

इहाँ सहचरिन आय धरे भाजन मनि दोई।
चरन धोइवे हेत लियें झारी कर कोई ॥
चंपकलता विनीत संग चित्रा ढिग आई ॥श्रीराधे॥
श्रीपद सीस लगाय जोरि कर विनै सुनाई ॥४००॥

मन उत्कंठा अधिक ढीठ ह्वै कहत लजावैं।
जुगल चरन चख लाय धोइवे हिय हुलसावैं ॥
श्रीदृग अंबुज हेतु जानि पद कंज लिये कर ॥श्रीराधे॥
विमल सुगंधित नीर धोय पोछें पट रिजु वर ॥४०१॥

तुंगविद्या लखि समैं इंदुलेखा संग लीन्हे।
दोऊ ओर श्रीहस्त कंज धोये रसभीने ॥
रंगदेवी सुख संग सुदेवी दोऊ आई ॥श्रीराधे॥
झारी अमिय सुनीर पूरि कर लियें सुहाई ॥४०२॥

रुख उनमानि सुजान जानि अवसर जब सोई।
जल गेरत श्रीहस्त कलुला मंजुल होई ॥
अति मृदु पट अंगुछाय वदन कर सीस नवायो ॥श्रीराधे॥
सहज माधुरी अधिक निरखि सखियन सुख पायो ॥४०३॥

पाक सदन सहचरिन काज सब सिद्धि कराये।
समाचार हम निकट कान लगि सकल जनाये ॥
संग विसाखा लियें हरषि सनमुख मै आई ॥श्रीराधे॥
नम्र भई कर जोरि खरी निरखौं सकुचाई ॥४०४॥

कृपासिंधु जनबंधु विहसि दृग मो दिसि दीन्हे।
बार बार तन वारि अगम सुख हमहूं लीन्हे ॥

हस्त वंदना कियें बिनै बानी अस भाखी। श्रीराधे॥
महाराज सब राजभोग सेवा अभिलाषी ॥४०५॥

मंद हसनि श्रीवदन भई रदछटा विकासी।
जय जय धुनि सहचरी करी लहि आनदरासी॥
परमामोद प्रमोद हेत सुभ धूप सराई ॥श्रीराधे॥
पीत कपूर सुगंध पूर लै दीप दिखाई ॥४०६॥
प्रथम आचवन स्वल्प दियो पट दै हरखानी।
सिंघासन सम धरी कनक चौकी मनि आनी॥
ससिमंडल से थार काम देखत चख अटकैं ॥श्रीराधे।
धारे उभय सुधारि पोंछि मंजुल कर पटकैं ॥४०७॥

हरित अरुण मनि पीत नील सित पद्म विविधि रंग।
उभै थार चहुँ ओर कटोरा पांति सप्त संग॥
धरी कटोरी मध्य मध्य लहु स्वल्प सोऊ हैं ॥श्रीराधे॥
उडगन राजी बीच इंदु जनु थार दोऊ हैं ॥४०८॥
मुद्रित भाजन सौंज लियें कर सब सहचरियां।
मेरी मुख दृग भाव विसाखा लखि ततपरियां॥
प्रथम दिखावत खोलि देखि हम चित्त विचारैं ॥श्रीराधे॥
दंपति आनंद हेत जथाविधि थार प्रचारैं ॥४०९॥

ओदन रंग अनेक स्वाद गुण वर्ण सुहाए।
सूपा जाति अपार और ओषधी सुखद मिलाए॥
वटिका भेद अनंत सुरस देखत रुचिकारी ॥श्रीराधे॥
साक संवारे विविध रूप रसनिधि तरकारी ॥४१०॥

वटक अपरिमित भांति रचे सखियन रस पूरे।
देखत उपजै हर्ष स्वाद गुणदायक भूरे॥
कढ़ी बनी बहु जाति फुलौरी भेद अनेका ॥श्रीराधे॥
पिष्ट प्रकार सुधारि अधिक एकन ते एका ॥४११॥

सालन अमित अनंत अन्नमय जे कहि गाए।
नेह प्रीति हित सानि सखिन रसखानि बनाए॥
ससकुलि पोली पुवा पृष्ट गर्भित बहु भांती ॥श्रीराधे॥
मोदक वर्ण विचित्र जाति कितनी मन भांती ॥४१२॥

फेनी मोहनभोग जलेबी गुटिका घेवर।
इनते आदि अनंत कहे पकवान रचे वर॥
पेराहू बहु रीति तथा खोवा विधि नाना ॥श्रीराधे॥
पायस मेवा कंद मेलि रचि भेद अमाना ॥४१३॥
पय के जिते प्रकार लखे मन मोद बढ़ावैं।
दधि माखन दै वस्तु पृथक गुण नाम धरावैं॥
पाक पुष्ट बल हेत अपर वर किये घनेरे ॥श्रीराधे॥
चूरन चटनी पचन द्रव्य पापर बहुतेरे। ४१४॥

मेवा आले सुरुक दोऊ रचि विविध बनाए।
तथा मुरब्बा नाम जाति बहु धरे सुहाए॥
कचरी भांति अनेक स्वाद पूरी सुखदाई ॥श्रीराधे॥
अमित अथाने लसैं पेखि मन रुचि अधिकाई ॥४१५॥

भक्ष कहावैं वस्तु बनी अनगनतो ते है।
भोज्य पदारथ सकल भेद नाना करि जे हैं॥
सोहैं धरे अपार लेह्य के भेद अनेका ॥श्रीराधे॥
अनवधि चोस्य सरूप सखिन रचि किये विवेका ॥४१६॥

एक एक के मध्य स्वाद ए सकल प्रकासैं।
छत्तिस विंजन कहैं छवो रस पृथक विलासैं॥
पंच पदारथ सहित विमल छप्पन परकारा ॥श्रीराधे॥
जद्यपि एकै वस्तु तऊ रसखानि अपारा ॥४१७॥

भोजन कीजे सौंज एक जो वरनन करई।
निश्चै होय न तासु गिरामति वर हठ धरई॥
इच्छा रुचि मन मांहि जबै दंपति जस करहीं ॥श्रीराधे॥
प्रगट होंहि तस तबै चित्त गति लखि अनुसरहीं ॥४१८॥

प्रभु इच्छा दुर्ज्ञेय सर्व संमत यह जानौ।
कहि पावै को अंत जथारथ वस्तु प्रमानौ॥
जानै सोई प्रवीन दया करि नाथ जनावैं ॥श्रीराधे॥
मति वैभव उनमानि विविध श्रुति पार न पावैं ॥४१९॥

नित्य विहारी जुगल अंग निज तें उपजाई।
सेवा आनदसिंधु रीति श्रीमुख दरसाई॥

सहचरि भाव प्रमान लहै को का विधि गाई ॥श्रीराधे॥
जिन सेवा वस किये प्रभू तनमयता पाई ॥४२०॥

ए ई इच्छा को रूप वस्तु इच्छामय सगरी ।
प्रेम हियें अनुराग अधिक अनवधि रति अगरी ॥
दंपति रुचि पहिचानि सानि मन जे कर ल्याँई ॥श्रीराधे॥
थार कटोरा पूरि धरी ते परम सुहाँई ॥४२१॥
नीकैं सकल निहारि किये भाजन परिपूरे ।
अपर हस्त लै खरी सबै आनद मन भूरे ॥
वृन्दादल धरि पानि जुक्त शंखोदक कीन्हौ ॥श्रीराधे॥
मूल मंत्र वर नाम जुगल त्रय बार सु लीन्हौ ॥४२२॥

ता पाछैं सब सौंज मध्य सो स्वल्प प्रचारयौ ।
घंटा नाद जनाया चित्त दंपति पद धारयौ ॥
हस्त वंदना कियें प्रिया पीतम दिसि हेरी ॥श्रीराधे॥
मंद हँसे मन वृत्ति जानि सखियन की मेरी ॥४२३॥
मै हूँ चित्त विचार कियो अवगहरन नीकी ।
वार गयें गत सार वस्तु कछु ह्वै है फीकी ॥
तब ही लाज विहाय धृष्टता मन दृढ़ आनी ॥श्रीराधे॥
सीस नाय कर जोरि कही आतुरि अस बानी ॥४२४॥

महाराज ए सबै भरें अभिलाषा ऐसी ।
अब देखैं सुख नैन करत भोजन विधि जैसी ॥
होय परिश्रम सिद्धि परम सेवा फल लाहैं ॥श्रीराधे॥
चातक स्वाती बुंद जथा छिन सोई चाहैं ॥४२५॥
प्रेमविबोधक गिरा श्रवन सुनि हेरि परस्पर ।
पूर जन मन काम विहसि झुकि थार परसिकर ॥
नित्य विहारी जुगल ग्रास वर पंच वदन दै ॥श्रीराधे॥
अमित कोटि ब्रह्मांड तृप्ति हित स्वल्प नीर लै ॥४२६॥

या विधि जेंवत जुगल सखी जय जय धुनि उचरैं ।
निरखैं वरषैं पुष्प हरषि लखि समै सुसंचारैं ॥
बाहिर कुंज प्रदेस वाद्य सुर एक भए सब ॥श्रीराधे॥
समै सुहावन राग कीन गति कहैं सखी तब ॥४२७॥

भोजन विविध विलास निकट हम देखैं ठाढ़ी ।
अरस परस अनुराग नेह रति रुचि सुचि गाढ़ी ॥
नाम रूप गुण स्वाद वरन विंजन हैं जेते ॥श्रीराधे॥
तिनके तथा सरूप जुदे कहि भाखैं ते ते ॥४२८॥
जा ऊपर जो वस्तु खान की विधि सुखदाई ।
इच्छा रुचि पहिचानि जानि रुख कहैं जनाई ॥
सुधा भरी लै खरी कोउ झारी कर वेला ॥श्रीराधे॥
अपर नीर अति सीर विमल चख लखैं सुहेला ॥४२९॥
वर दाड़िम रस गहैं कोउ रस ईक्षु सुखारैं ।
जे पीवत हित देहिं गुणद रस कहे अपारैं ॥
जब जैसी रुचि लखैं समर्पैं भरिवै लाजो ॥श्रीराधे॥
मध्य मध्य सुख पाय हरषि दंपति पीवत सो ॥४३०॥

हरिचंदन मनि रचे अतर बहु भाँति सिंचाए ।
बीजै दोऊ ओर विजन हरुवैं रुख पाए ॥
रीझ होत मन माँहि वस्तु जापै अधिकाई ॥श्रीराधे॥
श्रीप्यारी सुख दैन लाल ऐसी जिय आई ॥४३१॥
मंजुल कर गहि कवल तासु गुन कहैं बखानी ।
संग लगी सहचरी अधिक वरनै मृदुबानी ॥
मंद हसनि भ्रूलता तनी नासा लघु सिकुरनि ॥श्रीराधे॥
वाम हस्त ते गहनि कुटिल लटकनि मुख चिकुरनि ॥४३२॥

अनियारे रस ऐन जाल डोरा अरुनारे ।
भारे पानिय भरे रेख अंजित कजरारे ॥
पलक झपनि श्रीहगन दुरनि कोरन कसि हेरनि ॥श्रीराधे॥
सुधा अखंडल पूर वदन मंडल तसि फेरनि ॥४३३॥
श्रीस्यामा इहि भांति जबै चितई पिय ओरी ।
भूलि गई सो बात भई गति चंद चकोरी ॥
कछु वार ईमि रहे लहे सुख मान संभारे ॥श्रीराधे॥
लखे सिथल सब अंग विवस नहि सकैं संभारे ॥४३४॥

कंपित करतैं ग्रास खसत मै जान्यो जबहीं ।
दियो सहारौ वेगि पानि निज थाम्यौ तबहीं ॥

चितये पिय मम ओर न कछु नै किये लजौहैं ॥श्रीराधे॥
मै स्यामातन हेरि समै साध्यो हंसि गौहैं ॥४३५॥
विनय करी करजोरि लाल अति कांम कठिन है।
मेरे मन मिलि चलौ होय तौ सिद्ध जतन है॥
निज कर गहि पिय हस्त कियो प्यारी मन सनमुख ॥श्रीराधे॥
मान प्रिये सनमान देई दीजै भक्तन सुख ॥४३६॥

दंपति आनदसिंधु उमगि सुख सरित बहांवैं।
गोपेश्वर श्रीचरण कृपा तें हम अवगाहैं॥
खात खवावत होत मोद कौतुक विधि नाना ॥श्रीराधे॥
पेय पदारथ अमित स्वाद रसनिधि करि पाना ॥४३७॥

सहचरि वचन प्रबंध कथा इतिहास बखानैं।
जा विधि भोजन ओर प्रीति उपजत जिय जानैं॥
कोऊ अति अनुराग भरी निज नेह जनावें ॥श्रीराधे॥
जिहि तिहि भांति खवाय कछू वर भाग्य मनावैं ।४३८॥

या विधि भोजन करत जुगल सुख लेत देत भर।
जो जाकी अभिलाष तथाविधि पूरि गहत कर॥
दोऊ सराहै स्वाद वस्तु जन मोद बढांवैं ॥श्रीराधे॥
सुनि सुनि सहचरि वृंद हरखि जय कहि सिर नावै ॥४३९॥

भोजन समै निहारि सार मुद सबहीं पायो।
देखि नैन जिय समुझि अगम सुख जात न गायो॥
जानि परयौ मन हट्यौ चाह वरवस हू नाहीं ॥श्रीराधे॥
जाय तबै हम निकट दियो अचवन कर मांहीं ॥४४०॥

सहचरि दौरि अनेक लई सब सौंज उठाई।
धारे अचवन हेत विमल जुगपात्र सुहाई॥
खरिका चित्र विचित्र कनक रचि देहिं सुधारी ॥श्रीराधे॥
गेरत नीर विचारि गहैं कर मनि भरि झारी ॥४४१॥

दई सुगंधित द्रव्य हस्त ज्यौं जाय चिकनता।
पुनि आले पट मंजु पोंछि कर वदन सुखनता॥
दोऊ ओर अचवाय हरखि नय आनद पांवैं ॥श्रीराधे॥
नेह भरी सहचरी जुगल श्रीचरण छुवांवैं ॥४४२॥

वसन झीन अँगुछाय लाय चख सिर परसावैं।
अतिसै भाग्य मनाय सिंघासन पर पधरावैं॥
नाना भांति सुगंधि वस्तु चूरन सुखदाई ॥श्रीराधे॥
हीरक मनिवर स्वल्प कटोरी धरि धरि ल्याई ॥४४३॥

विमल रकाबी वसन जुक्त तापै सो धारी।
मैउ बिसाखा निकट जाय विनती अनुसारी॥
महाराज मुखवास परम आनद मुदकारी ॥श्रीराधे॥
लै दीजै श्रीवदन निरखि हम होहि सुखारी ॥४४४॥
नित्य विहारी जुगल हस्त श्री लै मुख मेली।
अतर विचित्रत फहा दियें कर भई सु खेली॥
सहचरि वृंद अनंद लखैं दंपति छवि हरखैं ॥श्रीराधे॥
राग रागिनी भेद गाय कुसुमावलि वरखैं ॥४४५॥

ए मंडल जे पांच मध्य शृंगार बखान्यो।
राजभोग सुख गाय दिशा प्राची परिमान्यो॥
जो मंडल है बीच तासु दिसि दच्छिन कहियै ॥श्रीराधे॥
मंडल आनद कंद सौन थल सोई लहियै ॥४४६॥
ताहू मै दस कुंज अष्ट दिसि अष्ट सुहावैं।
मध्य सभा सुख धाम अनौसर एक बतावैं॥
सभा कुंज नव खंड नवन मै सप्तम जोहै ॥श्रीराधे॥
आजु दिवस हित सैन सेज रचना पद सोहै ॥४४७॥

पावा पाटी जात रूप नाना मनि लागी।
उत्तर दच्छिन पलँग बिछावैं सखी सुरागी॥
देखत ही दृग पगैं अवधि कोमलता जैसे ॥श्रीराधे॥
मंजुल सुभ्र विचित्र बिछौना कीन्हे तैसे ॥४४८॥
मनि मुक्ता वर काम झूमका परम सुहाए।
चहूं कोर चौडोरि जाल कसिते लटकाए॥
चारयौ ओर लखात जाल पाटी लगि लटकत ॥श्रीराधे॥
मनि गन ग्रथित विचित्र सुवन रचना चित अटकत ॥४४९॥

वरतुल दीरघ स्वल्प बृहत चौकोन अनेका।
जो तकिया जा ठांम रहैं धरि सहित विवेका॥

चादरि उज्ज्वल चौम सेज सरपोसित दीन्ही ॥श्रीराधे॥
पलँग लगी सब दिशा तीनि सोपान नवीनी ॥४५०॥

रंग रंग पट छाय कुसुम मुक्ता मनि लाई।
भूमि कुंज सब ठौर बिछौना रचे सुहाई॥
अतर अमोल सिंचाय पुष्प माला लटकाई ॥श्रीराधे॥
जे जे क्रीड़ा सौंज ठांम बहु धरी बनाई ॥४५१॥

कहूँ हार शृंगार कहू मनि गुल्म पुष्पमय।
हाटक मनि गठि बनै धरे द्विज जाति अमित कय॥
परम सुगंधित द्रव्य खुले भाजन ते राखी ॥श्रीराधे॥
डोलैं त्रिविध समीर लपट उपजैं सुखरासी ॥४५२॥

जिते कुंजके द्वार जाल मनि कुसुम लगाए।
परदा नाना भाँति लसैं सब ठौर बँधाए॥
तासें वाद ले कोउ कीमखापन के कोऊ ॥श्रीराधे॥
लौकिक नाम प्रसिद्ध बोध हित कहियत सोऊ ॥४५३॥

अपर मुसज्जर कहैं तथा पीलांम सुहाए।
सोने सूत विचित्र बनाती बनिक सुभाए॥
नग मोती सब जाति लगे रचना अति भारी ॥श्रीराधे॥
भीतर बाहिर खंभ पाँति जितनी रुचि कारी ॥४५४॥

उत्तिम मध्यम करि विचार तिनमैते लागे।
सायबांन चहुँ ओर बँधे बाहिर दुति जागे॥
तन मन वृत्ति लगाय रची सखियन जो रचना ॥श्रीराधे॥
देखि धारियै चित्त कहै तस होय न रसना ॥४५५॥

नीकै नैन निहारि संभारि सवारि चौप चित।
सब मिलि कियो विचार वेगि अब चलौ प्रभू तित॥
आय सकुचि मम निकट कान धुनि मंद सुनाई ॥श्रीराधे॥
सैन कुंज गत भाव सिद्धता सकल जनाई। ४५६॥

ताही समै विमान स्वल्प मनि पुष्प रचानो।
झनतकार करि शब्द कुंज गँसि द्वार लगानो॥
मध्य दिवस को गज रठ नाठन बाजन लाग्यो ॥श्रीराधे॥
श्रीतन आलस चिन्ह लेस जान्यो कछु जाझो ॥४५७॥

सिंघासन तें उतै पावड़े रचि विमान लग।
हमहूँ समै विचारि जोरि कर सीस दियो पग॥
निरखि माधुरी जुगल चित्त परमानंद पाई ॥श्रीराधे॥
विनती वार निहोरि पाय रुख सकुचि सुनाई ॥४५८॥

महाराज अभिलाष अबै सबके मन ऐसी।
सैन कुंज श्रीचरण चरैं इच्छा पुनि जैसी॥
जन अति देवें मोद मंद हँसि श्रीपद चाँरयौ ॥श्रीराधे॥
उतरत लागीं चहूँ ओर सखि अंग समारयौ ॥४५९॥

सहचरि मंडल मध्य जुगल गति मंद पधारैं।
जय कहि वरखैं सुवन सखी हित सहित निहारैं॥
बैठे आप विमान परम सिंघासन वर पर ॥श्रीराधे॥
नभचारी सो भयो चलनि ताहू की सुखतर ॥४६०॥

चढ़ि चढ़ि अपनी कुंज सखी ठाढ़ी निरखन हित।
मंगल द्रव्य मिलाय कुसुम वरखैं निकसत जित॥
धूप दीप दै अर्घ करैं नीराजन जे जे ॥श्रीराधे॥
दंपति श्रीतन छटा पेखि उर धारैं ते ते ॥४६१॥

सैन कुंज के निकट अभिरि लाग्यो वर जाना।
उतरि सखीगण मध्य दोउ चले सुजाना॥
ठौर ठौर तिहि धाम लखै रचना सुभकारी ॥श्रीराधे॥
कहै सुनैं मृदु बैन पूछि हँसि दै सुख भारी ॥६६२॥

देखत घूंमत फिरत जात जब जा दिसि ओरी।
निज कुंजन गण सखी लखैं कुसुमावलि छोरी॥
देत लेत आनंद मोद ढिग सेज पधारे ॥श्रीराधे॥
पेखि हरखि हँसि मंद सखिन की ओर निहारे ॥४६३॥

तिनहूँ तन मन वारि देखि पद सीस नवाए।
जय मंगल धुनि भई पलंग श्रीपद परसाए॥
तीन चढ़त सोपान कृपा देखो ता छिन की ॥श्रीराधे॥
अबहूँ दसा भुलात सुमिरि हिय सो तन मनकी ॥४६४॥

बैठे मोद बढ़ाय सेज प्यारी प्रीतम हँसि।
सहचरि भरी उमाह निरखि बलि नम्र होत खसि॥

तकिया धरि चहु ओर परस्पर अंग लगि राजैं ॥श्रीराधे॥
सखी सबै अनुसार साज सेवा के साजैं ॥४६५॥

कछू पिपासा जानि नीर करि जतन सवारे।
शीतल अमल सुगंध स्वाद रुचि साथ अपारे॥
स्वच्छ रकावी वसन जुक्त वेला द्वै भरि धरि ॥श्रीराधे॥
मैउ विसाखा सहित हस्त लै खरी निकट करि ॥४६६॥

पीवत चित्त प्रसन्न प्रिया पीतम हित सेती।
मध्य बखानत स्वाद जतन सखियन की जेती॥
ता पाछें लखि हरखि वसन मुख पोछन हित दै ॥श्रीराधे॥
बीरी परम मनोज्ञ धारि भाजन आगे लै ॥४६७॥

दंपति श्रीकर लेत वदन मेलत मुसुकौंवैं।
खात खवावत करत केलि आनंद भर छावैं॥
देखत जेहि रुचि होय अतर वर फहा बनाई ॥श्रीराधे॥
जुगल हस्त श्री दियो लपट ताकी मन भाई ॥४६८।

सनमुख चौकी राखि विमल हाटक मनि जरिया।
हीरक मनि को थार स्वच्छ लै तापै धरिया॥
रंग अनेक विचित्र कुसुम रचना तामै करि।श्रीराधे॥
चहूँ ओर सहचरी सुवन अंजलि ठाढ़ी भरि ॥४६९॥

मैं करसंपुट पुष्प भरे दंपति छवि हेरी।
जय जय नित्य विहार जुगल वरमुख धुनि टेरी॥
श्रीपद सीस नवाय अंजली नभ दिसि वरखी।श्रीराधे॥
बहुरि लियो कर थार आरती हित हिय हरखी ॥४७०॥

सहचरि वरखैं कुसुम गान मंगल सुरगावैं।
राजभोग सुखसार करै नीराजन चावैं॥
तन मन सर्व सवारि थार नय धरनी धारी ॥श्रीराधे॥
सुवन अंजली एक विहसि पुनि मस्तक सारी।४७१॥

परमानंद समाह पूरि परिदच्छिन लांव।
अतिसै भाग्य मनाय दंड इव नती विभांवैं॥
सब ठाढ़ी कर जोरि लियें हस्तन सुभ सामा ॥श्रीराधे॥
चमर मोरछल विजन आदि अनगनती वामा ॥४७२॥

नैनन रूप निहारि धारि हिय मोद बढ़ावैं।
छिन छिन यह सुख वृद्धि प्रणत ह्वै सखी मनावैं।
पानदान लै खरी निकट सुख जोवैं आली ॥श्रीराधे॥
सेवैं तन मन लाय वृत्ति दंपति पद घाली ॥४७३॥

छवि सागर श्रीअंग जुगल आलस रसभीने।
नैन सदन शृंगार पलक झपटनि पट दीन्हे॥
सैन सबै उनमानि सखी सब अंगन लागी ।श्रीराधे॥
श्रीस्यामा तन स्याम सुवावत सेज सुहागी ॥४७४॥

सोभा सैन निहारि लाल छवि सो मन आनी।
मूदि लिये निज नैन धेय तन वृत्ति समानी॥
चतुर सहेली जानि विहसि पिय सेज सुहाए ॥श्रीराधे॥
तकिया ठौर अनेक सुखद दोउ ओर लगाए ॥४७५॥

अंग अंग सहचरी लगी सेवा सुख लेवैं।
जा विधि निद्रा वृद्धि होय ताही गति सेवैं॥
नींद भरे श्रीअंग लेत करवट इत उत हैं ॥श्रीराधे॥
आली परम प्रवीन सुखद सेवत तित तित हैं।४७६॥

अति निद्रा भरभार पेखि दोऊ दिसि जबहीं।
हम सबही धरि मौन उठैं हरुवैं गति तबहीं॥
मंद मंद पग धरत जाल परदा कछु खोलत ॥श्रीराधे॥
सैन नहीं अस करत परस्पर कोऊ न बोलत ॥४७७॥

बाहिर कुंज प्रदेश निकसि कर जोरि सीस नय।
करि प्रणाम कछु दूरि जाय बैठैं आनद लय॥
दंड एक सुर मंद नाम श्रीराधा लेवैं ॥श्रीराधे॥
बहुरि हियें श्रीचरण धारि चलिवे चित देवैं ॥४७८॥

जाके मंडल जुगल बसौं जा दिन करि प्रीती।
ता दिन ताको कुंज सबै जावैं अस नीती॥
पट मंडल के मध्य दिसा दच्छिन मम कुंजा ॥श्रीराधे।
ताही मग सब चली सखी अनगनती पुंजा ॥४७९॥

मम बैठन को ठाम नाम कहि सभा बखानै।
धरे सिंघासन अष्ट रीति ता दिन असमानै॥

तहां जाय हम अष्ट बैठि सौ कथा चलावैं ॥श्रीराधे॥
सेवत जो विधि होय ताहि कहि सुनि सुख पावैं ॥४८०॥
छत्र चमर तें आदि लियें सहचरि हम सेवैं।
सुनैं सकल चित लाय अचल सेवा फल लेवैं॥
रत्नप्रभा वे आदि अष्ट जे मम परिचारी ॥श्रीराधे॥
सब दिन की जो रीति करै ते समै विचारी ॥४८१॥
मोर मंगला समै अवै लौं सैन समेती।
नित्य विहारी जुगल प्रसादी समिटी जेती॥
सबको अष्ट विभाग लाय भाजन धर धारैं ॥श्रीराधे॥
राखैं मेरौ अंस सप्त एहि भांति संवारैं ॥४८२॥

सप्त विसाखा आदि कुंज दिसि सप्त सुहाई।
निज आलिन के हाथ तहां ते देंहि पठाई॥
विनती भाखैं आय प्रसादी समै सुहानी ॥श्रीराधे॥
हमहूं भाग्य मनाय करैं अंगीकृत बानी ॥४८३॥

अपनी अपनी कुंज जाइ वे हेत विचारैं।
सेवा समै संभारि नेह बस उठैं न पारैं॥
उठैं मिलैं गरलाय बिछुर तें प्राण दुखित ह्वै ॥श्रीराधे॥
चलैं मुरैं गहि हस्त ठमकि पुनि धरै डगैं ह्वै ॥४८४॥

निज निज कुंजन जाय वसन भूषन उतराए।
केवल साटी धारि हस्त पद वदन धुवाए॥
वर चौकी पर बैठि संग जिन कैं जे आली ॥श्रीराधे॥
करि सबही को बोध प्रसादी दै हितपाली ॥४८५॥

सुमिरि किसोरी नाम सीस धरि सेवन करहीं।
परमानंद उमाह हियें सुख सागर भरहीं॥
अचवन करि लै वसन सेज बैंठें मृदु आई ॥श्रीराधे॥
वदन मेलि मुखवास खात बीरी हरखाई ॥४८६॥

तीजे पहर संभारि जुगल जागन की विरियाँ।
सेवा समै बताय सखी दै विदा निविरियाँ॥
दंपति छवि उर धारि नैन मूदैं चितलावैं ॥श्रीराधे॥
ताही रस ह्वै लीन काल ऐसे कछु जावैं ॥४८७॥

जो जिनके हैं संग सदा सबकी अस रीती।
करैं नित्य व्यवहार अचल दंपति पद प्रीती॥
एक अंग जो कहैं लहैं नहि अंत बखानै ॥श्रीराधे॥
सेवा भाव प्रमान कृपा तिनकी तिनको सब जानैं ॥४८८॥

सकल भाँति संपन्न सेय निज निज प्रभु सबहीं।
अपने अपने ठांम जाय विश्रामै जबहीं॥
दोय दंड परिमान काल बीत्यौ अस जानै ॥श्रीराधे॥
सुमिरि प्रिया वर नाम चित्त सेवा सुख आनै ॥४८९॥

करि मज्जन असनान वसन भूषन सजि निज तन।
जाय जगावै नाथ प्रथम जे मौलि कहै गन॥
जाको है अधिकार जहाँ जो विधि सेवा की ॥श्रीराधे॥
तैसी तहाँ बनाय अधिक रचना शोभा की ॥४९०॥

बनि बनि जूथ अपार साज मंगल सब कीन्हे।
मिले एक थल आय चित्त प्यारी पद दीन्हे॥
आनंद मोद बढ़ाय जुग्म अपनो अपनो करि ॥श्रीराधे॥
सैन कुंज दिशि चलैं मौन गहि चरण मंद धरि ॥४९१॥

आहट भीतर पाय निकट ह्वै शब्द सुनावैं।
समै सुहातौ राग वाद्य मधुरे सुर गावैं॥
जबहीं पट बिलगाय कहैं जय सीस नवावैं ॥श्रीराधे॥
अभ्यंतर पग धारि निरखि सुख सिंधु समावैं ॥४९२॥

जुगल चरन सिर लाय करैं सेवा हित सेती।
उभै और श्रीअंग परसि पावै मुद जेती॥
बातैं मंजु सुनाय कियो सब आलस दूरी ॥श्रीराधे॥
दंपति उठती वार करैं कौतुक निधि भूरी ॥४९३॥

बैठे जुगलकिसोर अंग श्रीअंग लगाई।
तकिया धरे बनाय चहूँ ओरी सुखदाई॥
अरस परस लखि मुकुर अलक उरझी सुरझावैं ॥श्रीराधे॥
उमगै आनद सरित सखी जीवन धन पावैं ॥४९४॥

मनि चौकी परधारि उभै भाजन चित्रित करि।
लै झारी भरि नीर खरी जोवैं रुख हँसि डरि॥

जानि हिये को भाव चरण धोये अंगुछाये ॥श्रीराधे॥
श्रीकर नीकैं धोय पौंछि पट सीस लगाए ॥४९५॥

श्रीमुख मंडल विमल नीर प्रक्षाल्य बहोरी।
अति कोमल वर चीर फेरि बलि नय कर जोरी ॥
सिगरे केस समेटि रुचिर जूरा रचि बांधे ॥श्रीराधे॥
कुटिल अलक ढिग श्रवन उभै लटकै छुइ कांधे ॥४९६॥

रचना तिलक विचित्र करी देखत अति प्यारी।
नासा जुगल कपोल चिबुक बिंदुल दुतिकारी ॥
नैनन अंजन रेख कुसुम श्रवनन मस्तक सजि ॥श्रीराधे॥
दर्पन सनमुख दियो परस्पर लखि मृदु हँसि लजि ॥४९७॥

सब ठाढ़ी कर जोरि लखैं छवि आनंद भारे।
विनै करी नय सीस जबै इत नैन निहारै ॥
महाराज अब समै भोग सीतल सुखदाई ॥श्रीराधे॥
सकुच विवस नहि कहैं चित्त अति रह्यौ लुभाई ॥४९८॥

मंद हसनि संकेत चलनि भृकुटी झपकनि दृग।
पाय नवायो भाल जतन द्रुत करी तथा ढिग ॥
वर चौकी पर थार उभै अति विमल धराए ॥श्रीराधे॥
भांति भांति मनि रंग कटोरा पांति सुहाए ॥४९९॥

अमित जाति फल पक्व टूटि जे तत छिन आवैं।
तिनके भेद अनेक सखी बहु स्वाद बनावैं ॥
मेवा हू अनगनित नाम तरुतें तत्कालैं ॥श्रीराधे॥
ल्यावैं सहचरि तोरि पेखि पहिचानि रसालैं ॥५००॥

कंद सुगंधित द्रव्य मेलि रचि विविध बनाए।
अम्ल तिक्त कटु लवन मिलाय अपार सुहाए ॥
पांन हेतु रस रीति नीतिजुत करी अपारी ॥श्रीराधे॥
दरसैं सिगरे भाव सुखद रुचि की अनुसारी ॥५०१॥

सीर नीर अति विमल सुगंधित लै भरि झारी।
अमृत वर गुन पूर विसद कोऊ कर धारी ॥
दाड़िम परम अनूप चित्र रस रीति सवारी ॥श्रीराधे॥
अमतरा रस इच्छु अपर बहु रचे सुखारी ॥५०२॥

गंगाजली प्रपूरि हस्त लै वेलाहू कर।
फल मेवा सब थार कटोरा मध्य किये वर ॥
धूप दीप ए सारि दियो अचवन श्रीकर जब ॥श्रीराधे॥
जन सुखदाई जुगल करन लागे भोजन तब ॥५०३॥

आनंद मोद उमाह भरे हसि खात खवावैं।
भिन्न भिन्न गुण स्वाद सखी किह रुचि उपजावैं ॥
वेला भरि भरि देत पांन हित रस रुख जानी ॥श्रीराधे॥
पीवत मध्य सराहि अहा बोलत मृदु बानी ॥५०४॥

प्रीति विवस सहचरी कहैं अब कैं यह पीजै।
अपर भनै भरि नेह घूँट द्वै याकी लीजै ॥
सबको राखत मान पान करि दोऊ प्यारे ॥श्रीराधे॥
सीतल भोजन होत लखैं सीतल चख तारे ॥५०५॥

निज अभिलाष पूरि जानि दंपति मन रीती।
भोजन प्रेम समेत करावत अनवधि प्रीती ॥
लख्यौ नयन व्यवहार अरुचिता अंग विजाने ॥श्रीराधे॥
तबही सौंज उठाय लई भाजन जुग आने ॥५०६॥

गेरत झारी नीर सखी अचवत प्यारी पिय।
दे खरिका अचवाय वसन मंजुल आलौ दिय ॥
श्रीपद जुगल धुवाय अंगौछे सीस लगाए ॥श्रीराधे॥
तकिया सुभग सवारि पलंग ऊपर पधराए ॥५०७॥

परम सुगंधित द्रव्य दई मुखवास विसद सुचि।
प्रेम नेम अनुराग नेहजुत रचि बीरी रुचि ॥
वर भाजन धरि हस्त सखी दोऊ दिसि देहीं ॥श्रीराधे॥
जानि हियै कौ भाव जुगल हँसि श्रीकर लेहीं ॥५०८॥

अरस परम मुसिक्यात खात हेरनि दृग अरुझैं।
सहचरि अतर बनाय देत कर लखि जिय लरझैं ॥
रचना पुष्प विचित्र करी मनि थार सवारी ॥श्रीराधे॥
सो चौकी पर धारि प्रथम कुसुमावलि सारी ॥५०९॥

लै बलाय नय बहुरि आरती सीतल कीन्ही।
मंगल जय धुनि पूरि सखिन पुष्पांजलि दीन्ही ॥

बारहिं बार प्रणाम करैं परिदच्छिन भावैं ॥श्रीराधे॥
दंपति छवि उरधारि सीस श्रीपद परसावैं ॥५१०॥
चौकी अपर विशुद्ध विमल लै आगे धारैं।
जो देखत सुख रूप बिछौना तथा सवारैं ॥
थार परम रमनीय धरैं तापै रुचि कारी ॥श्रीराधे॥
पानदान वा मध्य लहै शोभा अति भारी ॥५११॥
नैन चित्त लखि गहै भरी वीरी ता मांही।
स्वल्प कटोरी चहूं ओर मनि धरी सुहांही ॥
नाना भांति सुगंध द्रव्य मेवा तिन मै भरि ॥श्रीराधे॥
अतरदान बहु जाति खुले ताके जोरैं धरि ॥५१२॥
जे जे क्रीड़ा सौंज सखी कर लीन्हे सोहैं।
बीजन दोऊ ओर अनूपम करैं विमोहैं ॥
सनमुख ठाढ़ी वृन्द सहचरी राग अलापैं ॥श्रीराधे॥
उघटैं तान तरंग नृत्य बहु क्रिया कलापैं ॥५१३॥
हम अनुशासन पाय अष्ट बैठी दोउ ओरी।
च्यारि च्यारि की पाँति जुग्म अभिमुख निज सोरी ॥
मै प्यारी दिसि तथा विसाखा पिय ढिग जानौ ॥श्रीराधे॥
आमी सामी जुग्म रीति ऐसी पहिचानौ ॥५१४॥
चौकी अपर मगाय मध्य हम अपने धारी।
बिष्टर सुभग रचाय बिछाई पासा सारी ॥
खेलैं चित्त लगाय खेल सो अष्ट परस्पर ॥श्रीराधे॥
हारि जीति सुख लहैं प्रिया पीतम लखि ततपर ॥५१५॥
खेलैं खेल विचित्र होत कौतुक अतिभारी।
आनद उदधि उमाह सवन तन दसा बिसारी ॥
क्रीड़त भई अवार सार पौ एक अरानी ॥श्रीराधे॥
पासा मेरे हाथ जुगल बोलत हँसि बानी ॥५१६॥
प्यारी कहैं प्रचारि डारि ललिते पौ हैंरी।
लाल बलकि मुख भनै तीन काने अबलैरी ॥
तब श्रीस्यामा कही हाथ फेंकैं हम अपने ॥श्रीराधे॥
पौ पारैं सौ बार जीति पावौ नहि सपने ॥५१७॥

गहि लीन्ही पिय बाँह रीति सो होय न ऐसी।
हानि लाभ गति एक हाथ ललिता कें तैसी ॥
गहैं परस्पर हस्त रुखाई दृग भृकुटिन मुख ॥श्रीराधे॥
हम सबके मन चाह इहै पावैं छिन छिन सुख ॥५१८॥
नैन सैन दै कोर दोऊ मेरी दिसि हेरैं।
भृकुटी पलक जनाय काज अपनी धुनि टेरैं ॥
मै मन कियो विचार मोद उलहै दोउ ओरी ॥श्रीराधे॥
सीस नाय कर जोरि विनै बलि करी निहोरी ॥५१९॥
महाराज सहचरी सवन हिय चाह अवै अस।
खेलत भई अवार धरो राखै जस की तस ॥
रैन सैन के समै ल्याय धारैं पुनि सोई ॥श्रीराधे॥
स्वस्थ चित्त मुद बढै करैं आज्ञा जो होई ॥५२०॥
हस्त वंदना कियें नम्र ह्वै सबै उचारैं।
दिवस शेष घट दंड रीति मज्जन मन धारैं ॥
लाल करी मनु हारि कीजिये अब असनाना ॥श्रीराधे॥
जो ललितादिक कहैं अहैं सोई परिमाना ॥५२१॥
निज भक्तन सुख हेत कृपा सब दिन श्री ओरी।
मंद विहसि मृदु गिरा भई मुख ऐसे होरी ॥
बार बार बलिहोर सबै श्रीपद सिर राखैं ॥श्रीराधे॥
महाराज जन मान देई पुजवैं अभिलाखैं ॥५२२॥
जो मंडल है मध्य तासु दच्छिन जहाँ सूतें।
मंडल पश्चिम ओर अधिक रचना याहूतें ॥
सभा कुंज ता मध्य बनी बानिक अति भारी ॥श्रीराधे॥
मज्जन हेत सुनीर सखी तहाँ धरैं सवारी ॥५२३॥
अंतर पट करि मध्य ठाम द्वै भिन्न बनावैं।
स्नान हेत वर पीठ उभै धरि अधिक रचावैं ॥
लागी सखी अपार रचैं रचना चित राती ॥श्रीराधे॥
पावैं परम बिनोद हरखि दंपति जिहि भाँती ॥५२४॥
वेगि सहचरी एक आय मो सो सब गायो।
गठित विमल मनि पुष्प जान लघु लग्यो सुहायो ॥

सबको हेतु पिछानि उठे दंपति मुसुकाई ॥श्रीराधे॥
आली मंडल मध्य चले गति हँस लजाई ॥५२५॥
वसन पुष्प रचि मंजु पाँवड़े सखिन सवारे ।
निरखत हरखत आय जान बैठे दोउ प्यारे ॥
वरुण दिसा जो कुंज हेतु मज्जन कहि गाई ॥श्रीराधे॥
वाके तीर विमान मंदगति पहुँच्यौ जाई ॥५२६॥
नित्य विहारी जुगल उतरि ता मध्य पधारे ।
भिन्न भिन्न लै चलीं सखी थल जहाँ सवारे ॥
तहाँ तहाँ जन प्रीति रीति गहि राजैं दोऊ ॥श्रीराधे॥
श्रीपद कर मुखचंद्र धोय पोछैं पट सोऊ ॥५२७॥
मज्जन की विधि जथा तथा असनान करावैं ।
श्रीमन रुचि अनकूल सकल सेवा सुख भावैं ॥
प्रेम सहित अन्हवाय वसन श्रीअंग अंगुछाये ॥श्रीराधे॥
क्षौम वास सुभ रीति सुनौ जा गति पहिराये ॥५२८॥
ललित वरन पट मंजु अनूपम श्रीअंग लायक ।
कटि प्रदेस लै गुल्फ पाय जामा चिपटायक ॥
कंठ ऊरु परिजंत वरन तैसी तन कुरता ॥श्रीराधे॥
चुस्त जुगल भुज बाँह बकुम घुंडी छवि घुरता ॥५२९॥
सोने सूत विचित्र काम दोऊ पट भारी ।
डीठि परै जा ओर टरै वर वस नहि टारी ॥
सीस टोपिका दई झुकत बाँई दिसि दच्छिन ॥श्रीराधे॥
केस खुले लै हस्त सखी सुख लहैं विचछन ॥५३०॥
सहचरि दंपति अंग एक सम पट पहिराए ।
त्यागि पीठ सो उतरि भूमि श्रीपद परसाए ॥
द्वै द्वै करि निज रूप सखी संग लागी सेवैं ॥श्रीराधे॥
दै मंडल चहुँ ओर निरखि जीवन फल लेवैं ॥५३१॥
चित्रित अपर विमान पुष्प मनि रचित स्वल्प जो ।
बाहिर कुंज समीप झमकि करि शब्द लग्यो सो ।
दोऊ ओर सहचरिन पांवड़े रचे जान लौं ॥श्रीराधे॥
मंद मंद गति चले कियो मज्जन ता थल सौं ।५३२॥

अरस परस लखि रूप मिले श्रीदृग हरखाने ।
जुगल माधुरी सिंधु उमगि ढिग जान मिलाने ॥
मानौ बीते कल्प विलगता अस मन मानो ॥श्रीराधे॥
तृषित मीन तन ताप मिटैं पायें ज्यौं पानी ॥५३३॥
भेटे कंठ लगाय विवस गल बांहीं दीन्हे ।
सुवन सखी वरषाय तोरि तृण बलि हिय कीन्हे ॥
नित्यविहारी जुगल अली मंडलगत राजैं ॥श्रीराधे॥
जान मध्य वर पीठ जाय बैठे छवि छाजैं ॥५३४॥
अब उत्तर दिसि शेष पंच मंडल मैं जोहैं ।
सभा कुंज ता मध्य पेखि सबको मन मोहैं ॥
वाके निकट सुहात रास मंडल लघु नीको ॥श्रीराधे॥
नाना मनि मय काम भाव तौ अतिसै जीको ॥५३५॥
सखियन दिव्य रचाय सिंघासन तापै धारयौ ।
चदवा मुक्ता दाम अमल नग छरी सवारयौ ॥
मंजु सुखद तन परसि बिछौना सकल ठाम करि ॥श्रीराधे॥
वर उपवर्हण राखि खरी छत्रादिक कर धरि ॥५३६॥
आसा करैं विमान आगमन सबै सयानी ।
सुनी गान धुनि कान शब्द मंगल हरखानी ॥
आय निकट सो लग्यो सीस नय जय धुनि भाखैं ॥श्रीराधे॥
कुसुमावलि वरखाय परसि पद भरि अभिलाखैं ॥५३७॥
दंपति इन तन हेरि उतरि सहचरि गण लीन्हे ।
उछह्यौ हर्ष अपार रासमंडल पग दीन्हे ॥
वर सिंघासन आय दोऊ बैठे छवि सेती ॥श्रीराधे॥
अली लसैं चहु ओर भाव पूरी अति जेती ॥५३८॥
टोपी धरी उतारि वार सखि हस्त सुखावैं ।
छत्र मोरछल चमर विजन कोउ मंद डुलावैं ॥
अपर सौंज शृंगार थार भरि भरि ले आवैं ॥श्रीराधे॥
कुसुमाभरन बनाय ल्याय सब हमैं दिखावैं ॥५३९॥
परमामोद सुगंधि मेलि चंदन बहुरंगा ।
भरी कटोरी लिये खरी हिय प्रेम अभंगा ॥

हमहू समै विचारि करैं कर जोरि विनै नय ॥श्रीराधे॥
श्रीदृग संज्ञा पाय हरषि धुनि मृदु बोलै जय ॥५४०॥
अंतर पद दै मध्य जतन शृंगार विभावै।
अपनी अपनो ओर सबै श्रीतन मन लावै॥
श्रीस्यामा श्रीसीस केस मै लगी सवारौं ॥श्रीराधे॥
पाटी अलक सुधारि गूंथि मनि पुष्प सिंगारौं ॥५४१॥
रंगदेवी श्रीभाल तिलक बहु रंग रचावैं।
नासा कली कपोल पत्र दृग अंजन लावैं॥
चिबुक श्याम दै बिंदु कुंडली अलक बनावैं ॥श्रीराधे॥
हिय प्यारी पिय नाम लेखि कर चरण सुभावैं ॥५४२॥
भूषन मुक्ता श्वेत विमल मनि हरित कोर लसि।
चंपकलता प्रवीन कंठ श्री पहिरावत हसि॥
ग्रीवा लगि लर जुग्म पंच लघु दीरघ त्यौंही ॥श्रीराधे॥
हृदय बद्धिका मध्य फवे झूमक वर ज्यौंही ॥५४३॥
अपर लरो छवि भरी धुकु धुकी सहित विराजैं।
सुवन माल बिच बीच बृहत वनमाला छाजैं॥
अरुण रेख जुत मांग तहां अंगुष्ट पर्व-सी ॥श्रीराधे॥
ताही मैं सब काम ध्वजा शृंगार गर्वकी ॥५४४॥
सोइ चंद्रिका बगल उभै बृही परिमानी।
लोक सुभग ता मनौ किरिन मंडल छवि सानी॥
वंदी वेला अंग स्वल्प झुकि अवधि श्रवन लै ॥श्रीराधे॥
किरनि वंदिका मध्य केस मनि पुष्प जाल कै ॥५४५॥
कुंडल मकराकार उभै झूमक लोलक तस।
करनफूल श्रुति विवर दोऊ लोलक झूमक जस॥
रचना कुसुम विचित्र अलक आगें विधिलटकैं ॥श्रीराधे॥
वार वार दृग आय पिय के जिन ते अटकैं ॥५४६॥
श्रोनासा पुट वाम नथमंडल लटकन जुत।
बेसरि दच्छ बिभाग झुकनि बांकी मोती उत॥
मध्य बुलाक सुहात ओष्ठ उतर चलि परसैं ॥श्रीराधे॥
ससिमंडल थल बैठि मनौ ए सब ही दरसैं ॥५४७॥

वर्तुल रेखा बीच नील इंद्री वर दोऊ।
चित्र लिखित रस हेत भोगि छौ नाते सोऊ॥
इंदुमौलि हिय कसकि चाप कलुसित जुग मदके ॥श्रीराधे॥
शक्रवधू से बिंदु अपर समता षटपद के ॥५४८॥
इंद्रधनुक सिंदूर केश अंबुद समुदाई।
चंदन चित्रित मेघ होत ज्यौं संध्याई॥
सुवन बलाका संघ नखत मुक्ता बहु रंगा ॥श्रीराधे॥
इंदुलेखा तह चंद कियें अपनौ अस अंगा ॥५४९॥
श्रीस्यामा सम वदन हेतु उपमा धरि पूरी।
सहचरि वृंदन मध्य भई देखै छवि दूरी॥
कोउ सहेली कहैं रूप का वरनै एरी ॥श्रीराधे॥
अबही होत सिंगार थभौ नाहिन कछु देरी ॥५५०॥
तुंगविद्या भुजलता जुगल भूषन सब लाए।
कोहनी ऊपर भेद विजायठ पंच सुहाए॥
हस्त पृष्ठ मणिबंध लसै पहुची तह दोई ॥श्रीराधे॥
छापैं अंगुरिन दसौ पत्र कर सोभित सोई ॥५५१॥
कुसुमाभरन अनूप तासुपै सजे सवारी।
सीस लाय ह्वै दूरि मगन दृग होत निहारी॥
मैं पुनि चरन सरोज आय निज गोदी धारे ॥श्रीराधे॥
नूपुरु पायल पादपृष्ठ चुटकी दस सारे ॥५५२॥
कुसुम विभूषित किये हरषि दृग मस्तक लाए।
वाम चरन कछु मोरि दच्छ झूमत पधराए॥
दई टोपिका सीस ओर बाँई झुकती सी ॥श्रीराधे॥
सबके चख तह फसे दंत चापे कहि सीसी ॥५५३॥
श्रीजुग हस्तन दिए जलज अनुपम गुनपूरे।
सदा एक रस रहै छटा उपजत छिन भूरे॥
पाछैं निरखि उठाय रुमाल वसंती श्रोसिर ॥श्रीराधे॥
अग्र भाग लटकाय छोर कंधन दोऊ थिर ॥५५४॥
सकल सहचरी वृंद पेखि नख सिख छवि भारी।
दर्पन बृहत बनाय स्वछ लै आगें धारी॥

श्रीजू निज प्रतिबिंब निरखि दृग तहां लगाने ॥श्रीराधे॥
आप आपने रूप रीझि मन चख सकुचाने ॥५५५॥
गोपेश्वर सर्वस्व परम धन हमरे सोई।
भई संक मन मांहि डोठि लागै जिनि कोई॥
करि करि मंत्र विधान वस्तु नाना विधि वारैं ॥श्रीराधे॥
विगत निमेष निहारि अनूपम छवि उर धारैं ॥५५६॥

सखी माधवी नाम विसाखा संग रहै जो।
श्रीपीतम शृङ्गार देखि नीकै आई सो॥
निरखि लाड़िली रूप मत्त ह्वै दसा भुलानी ॥श्रीराधे॥
ता ओरी वृत्तांत पूछिवे मन हम ठानी ॥५५७॥

भई चेतना ताहि मंद स्वर कहिवे लागी।
लाल अंग शृङ्गार सुनै सिगरी रस पागी॥
प्रथम नम्र ह्वै लगी विसाखा गूथन बेनी ॥श्रीराधे॥
पाटी अलक सवारि पुष्प मनि चित्रित श्रेनी ॥५५८॥

चित्रा दृग सुख लेहि करैं रचना चंदन की।
नैनन नैन मिलाइ देहि रेखा अंजन की॥
नासा कली कपोल पत्र अलकैं भृकुटी रचि ॥श्रीराधे॥
चिबुक बिंदु सो पीत हिये वर नाम प्रिया खचि ॥५५९॥

अंगराग बहुरंग हस्त पद सुभग रचाए।
वर मुक्ता मनि स्वेत हरित जुत भूषन भाए॥
कंठा कंठ सुहात लरी जुग त्रय हिय वद्धी ॥श्रीराधे॥
शोभित असन मराल माल झूमक ता मद्धी ॥१६०॥
बिच बिच दाम प्रसून बृहत वैजंती झूमैं।
देखि रहै नहि धीर चित्त ताही दिस लूमैं॥
ऐसी मौलि सुहात चंद्रिका किरिनि तथाही ॥श्रीराधे॥
वंदी वेना अंग स्वल्प लगि श्रवनन आई ॥५६१॥

वंदी किरनिन मध्य केस तहं जाल रचाए।
कुंडल उभै विभात झूमका लोलक भाए॥
करनफूल श्रुति छिद्र जुगल झूमक लोलक वर ॥श्रीराधे॥
रचना सुवन रचाय श्रवन लटकै तिनकी लर ॥५६२॥

अलक कुंडली भूत कपोलन परसि जनावैं।
नेक निहारे डसै मनौ तन गरल चढ़ावैं॥
श्रीनासा पुट दच्छ सहित लटकन नथ जैसी ॥श्रीराधे॥
मुक्ता जुग्म अनूप वाम पुट वेसरि तैसी ॥५६३॥
सोभित मध्य बुलाक झुकनि चख चित्त लुभावैं।
लहै सहायक दंत छटा बल द्विगुन जनावैं॥
चित्रित टोपी दई सीस चित्रा झुकि दाहिन ॥श्रीराधे॥
देखि लगी दृग ढकी बुद्धि मन निज वस नाहिन ॥५६४॥

इंदुलेखा भुज दंड जुगल भूखै हिय भावैं।
मोदक दंव उमाहि सकल भूषन पहिरावैं॥
पंच विजायठ हस्तपृष्ठ पहुंची जुग चूरा ॥श्रीराधे॥
दसौं अंगूठी सजैं तथा करपत्र करूरा ॥५६५॥

अमल सुवन आभरन तासुपै कसि लसि देखैं।
सीस लाय ह्वै बिलग धन्य जीवन निज लेखैं॥
बहुरि सुदेवी आय मौलि श्रीपद परसाए ॥श्रीराधे॥
हंसि हंसि गोदी धारि प्रेम वश हियें लगाए ॥५६६॥

नूपुर पायल पादपृष्ठ अंगुरिन चुटुकी दस।
सुवन विचित्र सजाय पेखि अनुराग लहैं तस॥
चरण वाम श्रीमोरि दच्छ झूमत पधराए ॥श्रीराधे॥
रंग वसंती निरखि सीस रूमाल उठाए ॥५६७॥

अमल कमल आमोद सदन श्रीकर जुग दीन्हे।
नख सिख रूप अपार निहारि हिये धरि लीन्हे॥
दीरघ स्वच्छ सवारि मुकुर आगें दिखरायो ॥श्रीराधे॥
आप आप छवि देखि विहसि आनद भर पायो ॥५६८॥

मो दिसि हेरि बुलाय श्रवन पिय गिरा सुनाई।
लखौ लाड़िली रूप जाय जिनि होहु जनाई॥
तेरे मुखतें जानि जतन वर कीजै सोई ॥श्रीराधे॥
जुगल ओर मुद सिंधु बढ़ैं सब को हित होई ॥५६९॥
माधवि ऐसे भाषि परी मम चरण बहोरी।
एह सुख छाँड़ि न जाउँ तहाँ हा हा बलि तोरी॥

ए बातें सब होत परस्पर श्रीजू जानी ॥श्रीराधे॥
कृपा विलोचन कोर हेरि हम तन मुसुकानी ॥५७०॥
श्रीपद सीस लगाय जोरि कर नय बलिभाषी ।
श्रीमहारानी एक अली कब की अभिलाषी ॥
श्रीभृकुटी रुख पाय माधवो आगें लीन्ही ॥श्रीराधे॥
सावधान ह्वै कहौ सकल श्रीआज्ञा दीन्ही ॥५७१॥
करि प्रणाम अति नम्र भई मृदु गिरा उचारी ।
नख सिख भेद सिंगार रीति वरनी इक सारी ॥
भूषन वसन सुहात वेस दोऊ एकै सम ॥श्रीराधे॥
श्रीश्यामा को श्याम आजु सबके मन है भ्रम ॥५७२॥

सुनि उमग्यो हिय हर्ष कही श्रीमुख हँसि बानी ।
ओष्ठ अभ्र चलि पाँति नखत रद छटा लखानी ॥
ए ललिते पट मध्य बिलग कीजै अब आई । श्रीराधे॥
कौन भाँति भ्रम अहै रूप ताको दरसाई ॥५७३॥

अंतर पट कर खैंचि अली जय धुनि भनि हरषैं ।
मगन भई सुख सिंधु उमगि लखि सुवन सुवरषैं ॥
दंपति विहसि निहारि परस्पर दृग अरझाने ॥श्रीराधे॥
भये माधुरी लीन सिथल तन नैन झपाने ॥५७४॥

जो समता के हेत धारि उपमा बनि आई ।
इंदुलेखा ससि रूप वस्तु कितनी तन लाई ॥
ताहि बाँह गहि ल्याय करी श्रीसनमुख ठाढ़ी ॥श्रीराधे॥
इत उत सखी निहारि हसैं हाँसी अति बाढ़ी ॥५७५॥

पिय प्यारी दृग खोलि लखैं कौतुक जिय बाढ़े ।
मंद विहसि मृदु कहैं हँसत होरी का गाढ़े ॥
महाराज यह रूप हेत उपमा धरि आई ॥श्रीराधे॥
ज्यौं रवि आगें दीप तथा सोभा इन पाई ॥५७६॥

उपल महामणि निकट सुपचनो रति ढिग जैसें ।
जीव ईस अनुरूप सुधा मदिरा लग तैसें ॥
अंतर महत लखाय बात बहु सुमिरन आवै ॥श्रीराधे॥
होत अबै अतिकाल सुने एऊ सकुचावैं ॥५७७॥

यातें हँसी अपार होत इनकी दिसि हेरी ।
महाराज अविनीति छमा कीजै सब केरी ॥
तुंगविद्या अस भाषि इंदुलेखा ढिग आँई ॥श्रीराधे॥
भलौ बनायो रूप चलौ तुम सबै हसाँई ॥५७८॥

बाहिर तिन्हैं निकासि आय दरपन वर कर धरि ।
सिंघासन के निकट मध्य ठाढ़ी सनमुख करि ॥
दंपति तहाँ विलोकि परस्पर रीझि निहारैं ॥श्रीराधे॥
नैन प्राण मन बुद्धि सने दोऊ बलिहारैं ॥५७९॥

पीतम निज कर कमल नासिका प्यारी लायो ।
प्रिया जलद वर हस्त लाल हँसि घ्राण छुवायो ॥
हेरनि बोलनि हसनि चलनि भृकुटी चख कोरनि ॥श्रीराधे॥
उदधि उभै मुद उमग लहरि अलि मीन झकोरनि ॥५८०॥

जलचरि सहचरि लहैं हरष जीवन छिन सोई ।
पिय प्यारी निति केलि हेत इनही कें होई ॥
स्वल्प रह्यौ दिन जानि प्रणय कीन्ही कर जोरी । श्रीराधे॥
करुणाशील स्वभाव विहसि चितये हम ओरी ॥५८१॥

करि प्रणाम ह्वै निकट उतारी बलि नथ बेसरि ।
चूरन सकल सुगंध द्रव्य गुन भूरि पात्र धरि ॥
दियो जुगल श्रीहस्त पूरि मुख भलौ बखानै ॥श्रीराधे॥
सुधा अनूपम अमल कटोरा भरे प्रमानै ॥५८२॥

विमल रकावी सहित वसन तापै धरि लीन्हे ।
श्रीइच्छा रुख जानि वदन ससि योजित कीन्हे ॥
घूंट घूंट रस लेत देत अनवधि सुख भारी ॥श्रीराधे॥
अरस परस कर गहैं पियावत पिय मिलि प्यारी ॥५८३॥

बहुरि कलूला किये वदन पोंछैं मृदु पट लै ।
मन प्रसन्नता हेत सुभग मुखवास दई नै ॥
जानि परै अनुराग सखिन को ते बीरी रचि ॥श्रीराधे॥
वर भाजन कर धारि खरी लै दोउ ओरी सचि ॥५८४॥

दंपति प्रेम विलोकि लेत मुख मेलत हँसि हँसि ।
खात खवावत निरखि अली पद परसत खसि खसि ॥

महारास को ठाम बृहत मंडल जो गायो ॥श्रीराधे।
जमुना स्वल्प प्रवाह तासु चहु ओर सुहायो ।६००॥
सोभा देखि अपार जुगल मन की गति पाई ।
उतरयो हरे विमान मध्य धारा लगि आई ॥
उभै दिसा मनि घाट लता द्रुम गुल्म रत्नमय ॥श्रीराधे॥
विविधि जाति नग कंज मंजु गुंजै षटपद चय ॥६०१॥
क्यारी पुष्प विचित्र लगी जलजंत्र सुहाए ।
भूमि बालुका वर्ण अमित गुन कौतुक छाए ॥
सदा अखंडल रास महा मंडल थल आनद ॥श्रीराधे॥
नित्य विहार अपार मोद आगार सार हद ॥६०२॥

चलैं मंद गति जान बलै जल थल चहूँ पासा ।
दंपति सो छवि निरखि हरखि पुजवैं जन आसा ॥
मंडल कोर समान विमान झमकि झुकि परस्यो ॥श्रीराधे॥
जय जय शब्द उदोत भयो सबको मन हरस्यो ॥६०३॥

उतरे श्यामा श्याम अली घेरे चहुँ फेरें ।
दियें दच्छ आवर्त्त फिरैं मंडल वन हेरें ॥
सिंघासन के निकट आय ठाढ़े दोउ प्यारे ॥श्रीराधे॥
बानिक अतुलित पीठ सुखो दृग होत निहारे ॥६०४॥

चित्त प्रमोद उमाहि परस्पर बैठन के हित ।
श्रीपद वर सोपान विहसि झुकि परस कियो तित ॥
लटकि संभारैं अंग प्रिया पोतम त्यों अलियाँ ॥श्रीराधे॥
मानौ किरन समूह जुगल ससि तन संग रलियाँ ॥६०५॥

उपवर्हण श्री मेलि दच्छ भुज पीतम बांई ।
तेइ जुगल पद मोरि अपर लंबित पधराई ॥
वाम दच्छ श्रीहस्त कमल फेरत हसि हेरत ॥श्रीराधे॥
परम मोहिनी डीठि सुरस सखियन तन गेरत ॥६०६॥

भयो परिश्रम विगत अंग श्रीदंपति जानी ।
नीर पान की चाह चित्त हमहूँ उनमानी ॥
विनय भार सिर नाय जोरि कर गिरा सुनाई ॥श्रीराधे॥
महाराज दिन सेस दंड जुग संध्या आई ॥६०७॥

नीर पान अभिलाष सखी मन सबै विभावैं ।
श्रीआज्ञा जो होय क्रिया ताकी प्रगटावैं ॥
राखत छिन छिन मान जुगल जन के हित दानी ॥श्रीराधे॥
अहो भाग्य रुख पाय परम हम अपनो मानी ॥६०८॥

श्रीनासा ते विनय नथ बेसरि उतराई ।
वर भाजन जुग आनि कलूला सुखद कराई ॥
वसन पोंछि गुन द्रव्य कटोरी धरि कर दीन्ही ॥श्रीराधे॥
अधिक स्वाद जल हेत पुष्ट लखि सो मुख कीन्ही ॥६०९॥

नीर विमल अति सीर कटोरा हीरक भरि कै ।
दिये जुगल श्रीहस्त रकाबी मध्य सुधरि कै ॥
लेत घूँट सुख देत हेत लखि हसि हसि पीवैं ॥श्रीराधे॥
सखियन के आधार इहे छिन देखत जीवैं ॥६१०॥

हेरनि श्रीदृग अल्प मंद हसि बोलनि मीठी ।
गोपेश्वर तत स्वाद पाय सब लागत सीठी ॥
तृप्ति चिह्न उनमानि कलूला हरखि कराए ॥श्रीराधे॥
वसन विसद लै हस्त वदन श्रीजुग अंगुछाए ॥६११॥

दई मंजु मुखवास आस दैवें जिय बीरी ।
पानदान धरि हस्त लखैं रुख ठाढ़ी नीरी ॥
श्रीकर झुकि हसि लेत देत मुख हेरि परस्पर ॥श्रीराधे॥
क्रीड़ा सहज सुभाव मोद सर उमगत निर्झर ॥६१२॥
नथ बेसरि पहिरावत दोऊ निज कर सुख भरि ।
नैन बैन नत प्रान थकित ह्वै रहत ध्यान धरि ॥
सौरभ अति चित लाय सुवन गूँथी विवि कलँगी ॥श्रीराधे॥
बनी अनूपम चित्र पंच लर झूमत विलगी ॥६१३॥

लखैं सराहै सखी शब्द सुनि प्यारी पीतम ।
श्रीदृग अंबुज खुले कही जै नयो सीस हम ॥
ते कलँगी श्रीजुगल हस्त वर अर्पन कीन्ही ॥श्रीराधे॥
परमामोद सुगंध नासिका ढिग कर लीन्ही ॥६१४॥

कबौं दुरावत सीस नैन मुख हृदै छुवावत ।
अरस परस रस भरे सखिन हँसि हियो सिरावत ॥

घूमत मस्तक छत्र मोर छल चमर दोउ घां ॥श्रीराधे॥
सौंज अनूप अपार अली ठाढ़ी धरि करमा ॥६१५॥
सिंघासन के निकट मुख्य अप अपनी सहचरि।
दंपति सेवा हेत ठाम निज ते ठाढ़ी करि॥
जे हम आदिक अष्ट जूथ लै सनमुख आई ॥श्रीराधे॥
जंत्र वाद्य बहु भाँति एक धुनि सकल कराई ॥६१६॥

अष्ट अग्र हम खरी अपर वर वाद्य बजावैं।
राग समै अनुकूल सप्त सुर कंठ लगावैं॥
दंपति चरण सरोज हृदै धरि सीस नवाई ॥श्रीराधे॥
वाम ओर मम लगें विसाखा गुण समुदाई ॥६१७॥

ग्राम मूर्छना सहित प्रथम आलाप कियो हम।
तान ताल सुर भेद विषम सम उपज अनूपम॥
जे जे नित्य विहार प्रबन्ध परम सुखदायक ॥श्रीराधे॥
उघटे ते गति मंजु विसाखा संग सहायक ॥६१८॥

चंपकलता प्रवीन संग चित्रा निज लीन्हें।
तुंगविद्या को जुग्म इंदुलेखा चित भीने॥
रंगदेवी गुण खानि सुदेवी सहित सुहावैं ॥श्रीराधे॥
प्रथक प्रथक सब गाय चित्त दै जुगल रिझावैं ॥६१९॥

तैसें नृत्य अलेख भेद संगीत नीति गति।
अप अपनी रुचि करैं रीझि दंपति निश्चै मति॥
श्यामा श्याम विलोकि मंद हँसि सीस डुरावैं ॥श्रीराधे॥
भलें भलें श्रीवदन मान दै हमैं सुनावैं ॥६२०॥

त्यौं त्यौं उमगै चित्त हरखि नृत्यैं कल गावैं।
जुगल अमल मुखचंद्र हसत पेखैं सचुपावैं॥
चाह चौगुनी होत प्रिया प्रीतम सुख दीजै ॥श्रीराधे॥
जुगलानंद समुद्र लहरि आलोड़न कीजै ॥६२१॥
नेह विवस मन भयौ नेम कौ अंग भुलानौ।
वेला भई प्रदोष चिह्न ताको प्रगटानो॥
प्राची दिसा विलोकि पीतिमा नभ तन छाई ॥श्रीराधे॥
मनौ कामनी वदन नाह कर कुंकुम लाई ॥६२२॥

इंदुलेखा चलि उमगि स्वेतिमा फैली सब थल।
पूरयौ अति अहलाद सकल उर जिते चराचल॥
दंपति श्रीतन फवे तासु प्रतिबिंब अनेका ॥श्रीराधे॥
नख भूषन श्रीअंग अधिक छवि सुखद विसेखा ॥६२३॥

निरखि परस्पर हरखि हियें अभिलाष बढ़ाई।
सफल चाँदनी होय जुगल ऐसी मन आई॥
खरी विसाखा ठांम माधवी कर धरि वंशी ॥श्रीराधे॥
पिय चितये ता ओर दई तिन अधिक प्रशंसी ॥६२४॥

लाल प्रिया मुख हेरि टेर श्रीनाम लगाई।
ग्राम मूर्छना तान सप्त सुर उपज बजाई॥
श्याम विमोहक मंत्र नाम श्यामा को दृढ़तर ॥श्रीराधे॥
सोई कियो प्रयोग सुने को होय न इनकर ॥६२५॥

जे जे कुञ्जन माहि सहचरी कारज लागीं।
भूलि गई सो वृत्ति सकल वंशी धुनि पागीं॥
जथा गुनी पठि मंत्र सर्प आकरसन करई ॥श्रीराधे॥
विवस होय विल छाड़ि क्रिया तैसी अनुसरई ॥६२६॥

तन पट भूषन काज लाज मैं धीर भुलानी।
मत्त दसातें चली प्राण जीवन धुनि मानी॥
कोटिन वृंद विमान बैठि आवैं ता ठौरी ॥श्रीराधे॥
आतुर जूथ अनेक विकल अंबर गति दौरी ॥६२७॥
नभ थल मंडल रहीं पूरि आली धुनि साली।
नैनन जुगल निहारि धारि उर होत सुखाली॥
राग वाद्य आलाप गीत गति अद्भुत छाई ॥श्रीराधे॥
दंपति हू मन भई लहैं मुद जे सब आई ॥६२८॥
जानि हियें अभिलाष अष्ट हम निकट गई जब।
पिय प्यारी छवि धाम थाभि अंग उतरि खरे तब॥
सीतल मंद सुगंध वायु डोलै सुखदाई ॥श्रीराधे॥
अमित जाति वर सुवन प्रफुल्लित वनदुति छाई ॥६२९॥

चंद चाँदनी अमल समै सेवै चित दीन्हे।
अली चकोरी नैन जुगल ससि रस हित भीने॥

रव द्विज षटपद विपिन अंगना भूषन बाजै ॥श्रीराधे॥
वाद्य जंत्र कल गीत मनोहर सब ही राजैं ॥६३०॥
श्री प्यारी भुज दच्छ लाल अपने गर मेली ।
श्याम बाम भुज प्रिया कंठ निज दई सुहेली ॥
श्रीश्यामा भुज बाम कंध मै अपने लीन्ही ॥श्रीराधे॥
तथा बिसाखा अंस पीय दांहिन भुज दीन्ही ॥६३१॥

पिय प्यारी निज रूप अपर बिबि प्रगटित कीन्हे ॥
ऐसें ही गलबाँह परस्पर पाँती दीन्हे ॥
अष्ट सखी दै मध्य अष्ट श्रीजुगल विराजैं ॥श्रीराधे॥
या विधि मंडल किये कोटि कोटिन छवि छाजैं ॥६३२॥

जैसे फेंटी सर्प बृहत लघु आवृत होई ।
तैसें मंडल रीति स्वल्प महती गति सोई ॥
महारास आरंभ जुगल सहचरि गत घूमैं ॥श्रीराधे॥
देखत बनै अनूप गिरा मन बुद्धि न जूमैं ॥६३३॥
नृत्य भेद संगीत कला गुन प्रगटित भूरी ।
तान मान सुर ग्राम मूछंना उपजैं पूरी ॥
पग पटकनि भुज झटक लटक ग्रीवा कटि मटकनि ॥श्रीराधे॥
मंद हसनि करि नैन तारिछे हेरनि अटकनि ॥६३४॥

नासा पलक सिकोर भौंह कसि कोर मरोरैं ।
मनि मानिक हिय पैठि परस्पर हठि अरि छोरैं ॥
कुंडल ररकैं श्रवन कपोल अलक चलि परसैं ॥श्रीराधे॥
तहाँ परै प्रतिबिंब पेखि अरझै चित करसैं ॥६३५॥

उमगि उमगि अनुराग अंग श्रीअंग लगावैं ।
चर्बित बदन तमोल छके रस खात खवावैं ॥
नैन बैन तन प्राण एक ह्वै आप भुलावैं ॥श्रीराधे॥
कृष्ण मानि निज रूप लाल प्यारी दुति पावैं ॥६३६॥
पेखत विरह उदोत विवस ह्वै गिरा उचारैं ।
राधा राधा रटैं कृष्ण मुख कृष्ण पुकारैं ॥
सहचरि करैं प्रबोध निरखि बूड़ैं सुखसागर ॥श्रीराधे॥
अधिक एकतें एक जुगल नागरि तस नागर ॥६३७॥

मिलैं परस्पर हुलसि मनौ निधि चिर गत पाई ।
जय जय धुनि परिपूर सुवन बरखा भर छाई ॥
नूपुर किंकिनि शब्द हार कंकन धुनि सोहैं ॥श्रीराधे॥
बहसि बहसि लै तान जीत दै मान बिमोहैं ॥६३८॥

मिले परस्पर बांह विकर्षैं निज निज ओरी ।
मनौ सिंधु शृंगार मथैं कोटिन ता टौरी ॥
धीरज मंदर मध्य अचल बूड़ै उतरावैं ॥श्रीराधे॥
नेम लाज आधार अंग जौ परसन पावैं ॥६३९॥

जो मंडल रचि बीच कमल सो मानौ मेरू ।
दंपति सहचरि पांति जलधि अनगन चहुँ फेरू ॥
दरसै धरनी मध्य मध्य ते द्वीप सुहावैं ॥श्रीराधे॥
सांति रोष रस हेत सुरासुर से दरसावैं ॥६४०॥
नेह रज्जु दोउ ओर गहैं कर कंपित खैचैं ।
प्रगटैं रत्न अनेक तेइ सब को मन ऐचैं ॥
अधर सुधा के हेत मंजुता मध्य विकासी ॥श्रीराधे॥
कल्पद्रुम संकल्प विविधि फल करै प्रकासी ॥६४१॥

चाह उदै गण अमित अप्सरा स्वेच्छाचारी ।
मंद गवन गज लजै चपलता अस्व अपारी ॥
स्वल्प हास्य पै चंद कोटि कोटिन गहि वारैं ॥श्रीराधे॥
तहां असोभा नाहि दरिद्रा काहि सभारैं ॥६४२॥

विरह दुसह विष सरिस वैद्य ताकी ए सहचरि ।
मन प्रसन्नता जुगल धेनु कां मद मुदप्रद सरि ॥
नाम कौस्तुभ जुग्म परस्पर दंपति धारैं ॥श्रीराधे।
सखियाँ चित्त बसाय निमिष नहि ताहि बिसारैं ॥६४३॥

नेह रज्जु दृढ़ पाय धीर घूमै अति वेगी ।
शृंगार सिंधु उर माहि जीव डोलैं उद्वेगी ॥
व्याल बाल सी अलक वदन ससि गहि लपटांनी ॥श्रीराधे॥
स्रवत सुधा श्रमबिंदु ताहि निज जीवन मानी ॥६४४॥

मीन चपल दृग दुरैं जाय चय इंद्रनील के ।
पलक स्याम झपि चलैं उघरि बस परे सील के ॥

बेनी बाहु विसाल भुजग लपटै चलि गूटैं ॥श्रीराधे॥
फसें प्रेम सैवाल जाल थिर ह्वै नहि छूटैं ॥६४५॥
उभै ओर अनुराग तिमंगल उमगै भारी ।
विजय हेतु जिय धारि जुटै पुनि कहाँ संभारी ॥
कुंडल मकर विलोल अभूषन जलचर नाना ॥श्रीराधे॥
कुसुमाभरन विचित्र उपरि द्विजगन परिमाना ॥६४६॥
प्रेमावधि परिपाक रमा उपजी दृढ़ प्रीती ।
सबही के मन भई गहै वरवस असनीती ॥
तिनको अचल निवास जुगल पद सदा प्रमानी ॥श्रीराधे॥
कृपा साध्य सो अहै जतन जानी उनमानी ॥६४७॥
जुगल मोहनी अंग सुधा धाराधर वरषैं ।
चातक सहचरि प्राण बूंद पीवैं छिन तरसैं ॥
प्रेम बद्ध दृग दीठि जोरि हेरैं नहि फेरैं ॥श्रीराधे॥
काहू की भुजलता मध्य लखि एहु निवेरैं ॥६४८॥
बढ़ैं प्रेम संग रोस परस्पर चिह्न रुखाई ।
सारंग सीत निजात भौंह पलकैं सर पाई ॥
नैन थीर ह्वै रहै मनो उनमानत लछैं ॥श्रीराधे॥
छूटत कुटिल कटाक्ष वाण हिय बेधत अछैं ॥६४९॥
कोउ गिरै मुरछाय अपर घूमै इक धारैं ।
घायल वीर न टरैं चोट सौ ही बढ़ि मारैं ॥
सिथल अंग तें खसै वसन भूषन कुसुमादी ॥श्रीराधे॥
कोलाहल स्वर ह्वयो नयो मन सबै प्रमादी ॥६५०॥
जुगलानन्द विहार भार अनपार अगाधा ।
अचल अखंड प्रवाह चाह छिन सौगुनि साधा ॥
काल कोटि सत कल्प अल्प अणु सम तह जाई ॥श्रीराधे॥
दंपति रूप समुद्र लहरि माधुर्य्य समाई ॥६५१॥
रूप छके तन थके जके मन मत्त पगे रस ।
को हम थल है कहां दिवस निसि भाग सभै कस ॥
परमानन्द अगाध उदधि बूड़ी सब आली ॥श्रीराधे॥
सुरति समानी जहां तहां तैसी गति साली ॥६५२॥

सबकी दशा विचारि प्रिया पीतम विधि रूपा ।
सिंघासन सुभ जाय विराजे सुखमा जूपा ॥
कछू वार इमि गयें चेतना हमहूँ पाई ॥श्रीराधे॥
संभ्रम चकित निहारि स्वप्न सोहै का माई ॥६५३॥
लखैं परस्पर जुगल नहीं सो खेल कोऊ अब ।
दीन मीन सी भई नीर विनु सबै विकल तब ॥
गई चेतना चित्त बुद्धि मन प्राण देह तैं ॥श्रीराधे॥
ढूढ़ैं मंडल विपिन कुंज नभ दिसा जतन कैं ॥६५४॥
छिन छिन बाढ़ै कष्ट नष्ट कीन्हे तन डारै ।
दंपति आनद सिंधु विलगि विरहानल जारैं ॥
सहसा उठी पुकारि कहा जीवन धन प्यारी ॥श्रीराधे॥
सकल दोष विसराय वेगि सुधि लेहु हमारी ॥६५५॥
श्रीस्यामा मन मृदुल दया सागर अनपारा ।
मत्त भये परिणाम कष्ट उपजै निर्धारा ॥
आरत वानी सुनी सखिन की जिय अकुलाई ॥श्रीराधे॥
निज अधरन वर धारि मुरलिका सुखद बजाई ॥६५६॥
आवोरी इत चली अली सिंघासन पांही ।
बार बार अस टेरि कही वंसी धुनि माहीं ॥
आनदघन को शब्द सुने ज्यौं चातक जीवैं ॥श्रीराधे॥
भरे नीर बहु ठौर नेम स्वाती जल पीवैं ॥६५७॥
अमीय धार सी परी श्रवन बानी स्वामिनि की ।
पूरन कृपा निहारि विथा बीती सब इनिकी ॥
चलो तृषित ह्वै तहां जहां बैठे पिय प्यारी ॥श्रीराधे॥
निरखि हरखि हिय धारि धरा गहि जय धुनि धारी ॥६५८॥
उठि उठि करैं प्रणाम चरन वंदैं चख लावैं ।
जीवन तन मन वारि तोरि तृण हियो सिरावैं ॥
कियें लजौंहे नैन खरी कोउ लखै न सोहैं ॥श्रीराधे॥
त्रास भरी जिय गुनै विचारै बोल न गोहैं ॥६५९॥
जे पाली करि नेह किसोरी अपनी सहचरि ।
विमन तिन्है छिन देखि सकैं नहि धीर अल्प धरि ॥

मंद विहसि श्रीवदन कही रस सांनी बानी ॥श्रीराधे॥
भुजा पसारे दोउ अरी हम हैं अरसानी ।।६६०।।
उमगि उमगि अनुराग नाय सिर लेंहिं बलैया ।
निरखि हरखि बरषाय कुसुम आनद अधिकैया ॥
जै मंगल धुनि कहैं गहैं अरसाने अंगा ॥श्रीराधे॥
निपट चातुरी प्रगट करैं महंन श्रम भंगा ॥६६१॥

भूषन सुबन उतारि टोपिका लई सीस तें ।
बेनी बंधन खोलि केस कर अली बीस कें ॥
दंपति श्रीअंग लगी सखी सब सेवा करहीं ॥श्रीराधे॥
जुगल परस्पर परस करें तन कौतुक भरहीं ॥६६२॥

हम संमत कोउ सखी दूरि बोली घू घू करि ।
श्रीश्यामा हँसि कही अरी मैं हिये उठी डरि ॥
रंगदेवी कर जोरि सीस नय विनय बखानी ॥श्रीराधे॥
महाराज निसि गई अधिक द्विज रव भयदानी ॥६६३॥

उमगि हिये अभिलाष विसाखा नै मृदु बोलैं ।
महाराज सब मोहि कहैं निज ओठ न खोलैं ॥
श्रीप्यारी हँसि कही कहौ हित कहिवे कैसी ॥श्रीराधे॥
मैं उठि नायो सीस विनय गाई तब तैसी ।।६६४॥

सबै करैं अभिलाष चित्त छिन छिन भरि छोहैं ।
परम निकुञ्ज विलास सैन क्रीड़ा कब जोहैं ॥
नित्य विहारी जुगल सदा जन को हित चाहैं ॥श्रीराधे॥
भई गिरा श्रीवदन सोइ ललिते मन ह्वांहै ।।६६५॥

लाग्यो आय विमान रास मंडल गसि कोरैं ।
बानिक परम अनूप लखैं दृग हठि मन छोरैं ॥
रचे पावड़े विमल पीठ तें जान जहाँ लौं ॥श्रीराधे॥
दंपति उतरे भूमि सखी अंग लगी तहाँ लौं ॥६६६॥

परमानंद विनोद भरे कौतुक उपजावत ।
श्रीपद धरत विलास गवन गति हंस लजावत ॥
राजैं सुखद विमान प्रिया पीतम हित सेती ॥श्रीराधे॥
जय भनि सुबन झराय सखी नै हरषैं तेती ॥६६७॥

परम निकुञ्ज स्थान प्रथम सत कुञ्ज गनाई ।
मंडल चतुर प्रमाण दिसा चौ कहे बताई ॥
पंचविंस वर कुञ्ज बलै उत्तर दिसि जोई ॥श्रीराधे।
ललित वार दिन तहा सैन सामा सब होई ॥६६८॥

ऐसें ही क्रम फिरैं च्यारि मंडल दिन अष्टा ।
सखी सेय सुख भरैं मेटि मानस तन कष्टा ॥
तहा सहचरी वृन्द रहैं जे सेवा तत्पर ॥श्रीराधे॥
समाचार तिन सुन्यौ जान आवत अब हरवर ॥६६९॥

अष्ट दिसा मैं कुंज अष्ट त्रय पांति विराजैं ।
प्रथम मिलै जो पंक्ति जान आवत सुख साजैं ॥
सुनौ तहाँ की रीति सखी मिलि जथा बनावैं ॥श्रीराधे॥
कुञ्ज उपरि गच भूमि भाग मणि विमल करावै ॥६७०॥

एक ठौर औदुम्ब अमल नग चित्रित सोहै ।
भरयौ नीर अनुकूल स्वच्छ लखि चित्त विमोहै ॥
परी औषधी अमित गंध सुचि श्रम निरवरही ॥श्रीराधे॥
मनि निर्मित बहु जाति कमल अलि द्विज गन तरहीं ॥६७१॥

तापै तन्यौ वितान छरी नग जरी खरी शुभ ।
मनि मुक्ता वर सुवन झूमका झालरि जिय चुभ ॥
चौकी धरी अनेक तीर लखि चख अरझावैं ॥श्रीराधे॥
कुसुम बिछे चहुँ ओर वरन बहु रचित सुहावैं ॥६७२॥

चंद चादनी अमल बहै मारुत गुन खानी ॥
जूथ सहेली खरी घरी चौ निसा बितानी ।
अपर बैठिवे हेत ठाम सुभ रच्यौ बनाई ॥श्रीराधे॥
दंपति पावैं चैन पेखि यह चाह सदाई ॥६७३॥

सिंघासन नव रत्न बिछौना मंजु बिछे हैं ।
छोटे बड़े अनेक गेंदुवा सुभग लसे हैं ॥
भक्ति वितान सरूप तनी झालरि अंग नाना ॥श्रीराधे॥
अचल भाव सो छरी हरी अंकुर उलहाना ।।६७४॥

श्रद्धा भूमि सुहात बिछौना प्रीति अनूपा ।
छत्र चमर तें आदि सकल सेवा तिन रूपा ॥

ठाढ़ी सहचरि वृंद अमित निरखैं नभ ओरी ।।श्रीराधे।।
तन मन इंद्री वृत्ति दियें ससि जथा चकोरी ।।६७५।।

नाना वाद्य तरंग तान धुनि झनतकार जै ।
शब्द हुलास प्रकास अमल दिग दिसा रह्यौ छै ।।
औदुंचन के निकट आय थल जान थिरानौ ।।श्रीराधे।।
भाग्य मनावत अली परम निज वारत प्रानौ ।।६७६।।

सखी समूह समेत उतरि औदुंचन देखैं ।
मज्जन करियै पैठि जुगल मन वृत्ति विसेखैं ।।
हरैं हरैं सोपान झुकत उतरत दोउ जल मे ।।श्रीराधे।।
सहचरि धसी अनंत नीर चाहैं तस थल मे ।।६७७।।

विहरैं श्यामा श्याम नीर श्रम रास निवारैं ।
सेवैं सहचरि अंग लहै मुद अनवधि भारैं ।।
श्रीतन साटी धारि धौत पट पीतम कटि वर ।।श्रीराधे।।
वसन हस्तिका मंजु अली फेरैं श्रीवपु पर ।।६७८।

अरस परस अभिलाष मनोरथ मानस भूरे ।
प्रेम नेम अनुराग लाज धरि ते सब पूरे ।।
परमानंद अपार सार पाथोधि विलोई ।।श्रीराधे।।
भए कृतारथ अमिय पाइ प्यारो पिय दोई ।।६७९।

दंपति रुख उतमानि नोरतें निकसैं बहिरैं ।
प्रथमधा सहचरी किती पट भूषन पहिरैं ।।
अपर लगी श्रीअंग संग ए तोर खरी सब ।।श्रीराधे।।
जुगल रूप ह्वै भिन्न घाट जित चाह चढ़े तब ।।६८०।।

श्रीतन वसन अंगोछि ललित केवल सजि सारी ।
लाल अंग मृदु पोंछि उपरना धोती धारी ।
रचित पांवड़े न चले सखी मंडल मधि होई ।।श्रीराधे।।
आगें पाछें जात बात सुनि मुरि मुद मोई ।।६८१।।

हरषि हियो उमगाय जाय सिंघासन धोरैं ।
मिले परस्पर जुगल बैठिवे हेत निहोरैं ।।
दै निज जन आनंद पीठ राजें सुख पाई ।।श्रीराधे।।
सखिन गेंदुवा मृदुल जथाविधि दिये लगाई ।।६८२।।

जानि झुराने केस मेलि जूरा रचि बांधी ।
कुटिल अलक विवि श्रवण लागि लटकै मन फांधी ।।
जुग भृकुटी बिच बिंदु श्याम नासा जब सोहै ।।श्रीराधे।।
नैनन अंजन रेख लीक सुखमा की जोहैं ।।६८३।।

तिलसे उभौ कपोल बिंदु दै चिबुक सुहाई ।
अरुन बिंदु की रीति लाल मुख तथा लहाई ।।
अंजन मंडन वदन जुगल दिसि ऐसे कीन्हे ।।श्रीराधे।।
विलग होय छवि निरखि सखिन बलि पद सिर दीन्हे ।।६८४।।

कोऊ निरखि अकास नखत लै नाम बखानैं ।
अपर निसा गत भाग दंड कहि पंच प्रमानैं ।।
न्यूनाधिक्य विवाद शब्द श्रो श्रवन सुनावैं ।।श्रीराधे।।
तिन्है विसाखा बोध देइ निसि अधिक बतावैं ।।६८५।।

दंपति मृदु मुसकाय जानि हेरे हम ओरी ।
हमहूं मस्तक नाय निवेदैं बिनै निहोरी ।।
महाराज अभिलाष सबै मन मै अस धारैं ।।श्रीराधे।।
जौ अनुसासन लहैं भोग संध्या सुभ सारैं ।।६८६।।

पीतम समुझि विलास सैन पहिलें हसि भाखैं ।
ए ललिते सब प्रिया करैं पूरो अभिलाषैं ।।
तबै सहेली धारि पात्र श्रीपद कर धोई ।।श्रीराधे।।
वसन पोंछि श्रीवदन आचवन तथा सजोई ।।६८७।।

वर चौकी पर थार धारि विधि बहुत कटोरी ।
मंडल गति करि पांति थार भीतर सब सोरी ।।
मेवा सुरस विपक सुष्कता कछूक तिनमै ।।श्रीराधे।।
गुणद सुगंधित द्रव्य अमित सुचि मेली जिन मै ।।६८८।।

सकल किये घृत पक्व स्वाद रस भेद अनेका ।
लवण मिष्ट तें आदि जानि रुचि रचे विवेका ।।
विंजन भाव अनेक एक मै दीसैं सब ही ।।श्रीराधे।।
दंपति मन लखि चाह सकल प्रगटें हित तब ही ।।६८९।।

जानि सखिन जिय भाव जुगल अनवधि सुखदानी ।
भोजन रुचि उमगाय थार मेले श्रीपानी ।।

गुन लच्छन रस रूप स्वाद जे नाम कहावैं ॥श्रीराधे॥
नेह पूर हित भूरि अली विधि प्रथक बतावैं ॥६६०॥

गहनि उठावनि हस्त वदन परसनि मुख मेलनि ।
चलनि दसन मृदु हसनि अल्प हेरनि अरि झेलनि ॥
कसनि भौंह झुकि छलनि अलक मोरनि अंग डोलनि ॥श्रीराधे॥
गूढ़ भाव दरसाय सकुचि पाटव ढकि बोलनि ॥६६१॥

ए रस भोजन करत धरत उर चाहन पूरत ।
बानी स्वाद बखानि प्रगट पालत इनहूँ रत ॥
अरस परस सुख देत लेत बाढ़त रस सोई ॥श्रीराधे॥
बाहिर अपर लखाय रीति वह अंतर गोई ॥६९२॥

दंपति परम प्रवीन चतुरता अवधि उदधि विधि ।
अली अंगजा एऊ दुरै नहि जात इन्है निभि ॥
जानत भई अजान रीति सेवा असगाई ॥श्रीराधे॥
प्रभु इच्छा अनुकूल चले छिन सुख अधिकाई ॥६६३॥

जुगलानन्द समुद्र अनिल निति नेह प्रवाहा ।
उमगैं भंग अभंग तहाँ हमरौ अवगाहा ॥
गोपेश्वर इमि काल जात सुखसिंधु समाने ॥श्रीराधे॥
रूपमाधुरी मत्त छके अंगजात न जाने ॥६९४॥

भोजन ते मन वृत्ति हटी चिह्नन उनमानी ।
थार उठाए धरे पात्र अचवन हित आनी ॥
खरिचा मंजुल कनक तथा कर शुद्ध द्रव्य दै ॥श्रीराधे॥
वसन अंगौछे हस्त वदन पग धोय पोछि नै ॥६९५॥

हिय नैनन सिर लाय सिंघासन पर पधराए ।
परमामोद प्रमोद चित्त मुखवास खवाए ॥
बीरी चित्र अनूप दोऊ ओरी हित देवैं ॥श्रीराधे॥
दंपतिजन अनुराग जानि झुकि हँसि लखि लेवैं ॥६६६॥

खात खवावत विहसि होत कौतुक चित चाहै ।
निरखि सहेली हरखि सुतरु सेवा फल लाहै ॥
अतर सुगंध अनूप दई वारैं नीराजन ॥श्रीराधे॥
वाद्य भेद आलापि गीत नृत्यैं आलीगन ॥६६७॥

सभाकुंज के निकट पाँति जो तीजी गाई ।
सप्तखंड वर कुंज भूमि गच उपरि सुहाई ॥
तहाँ वियारू हेत सुखासन रचैं सहेली ॥श्रीराधे॥
दंपति लखि मुद लहैं प्रीति जिन हियें नवेली ॥६६८॥

भूमि बिछौना मृदुल साजि सिंघासन धारैं ।
विष्टर सुभग रचाय गेंदुवा चित्र सवारैं ॥
तानै विमल वितान छरी नग झालरि मोती ॥श्रीराधे॥
सुवन समस्त लगाय लजैं ससि उड़गन जोती ॥ ६९६॥

छत्र चमर तें आदि सकल सेवा की सामा ।
नौ सत कियें सिगार लिये कर लसैं ललामा ॥
नित्यविहारी जुगल एक आवनि जिय आसा ॥श्रीराधे॥
नाम निरंतर रटै जिन्है छिन सौगुनि प्यासा ॥७००॥

पाक कुंज गत अली कोटि कोटिन हित पागीं ।
विजन भेद अपार सवारैं तन मन लागीं ॥
दुग्ध सुगंधि सुवासि कंद मेवा सुचि भरिकै ॥श्रीराधे॥
मंद अगिन परिपाक सकल रस प्रगटित करिकै ॥७०१॥

दधि के भेद अनेक तथा माखन विधि नाना ।
लवण मिष्टतायुक्त सुगंधित स्वाद अमाना ॥
नुक्ती मेवा अमित साक फल मेलि रायते ॥श्रीराधे॥
द्रव्य सुगंध अनंत विमिश्रित रचे आयते ॥७०२॥

मादक पाक अनूप रूप गुन लच्छन भारे ।
स्वाद अपरिमित सुरस नाम सुनतें श्रुति प्यारे ॥
जिते भये पकवान अवधि को कहि किमि पावै । श्रीराधे॥
सखियन को अनुराग प्रगट निज रूप जनावै ॥७०३॥

तरकारी फल अन्न विनिर्मित जाति अनंता ।
पापर चूरन गुनद कचरिया स्वाद समंता ॥
नाम अथाने वृंद मुरब्बा अनवधि कहियै ॥श्रीराधे॥
पेय पदारथ सकल खानि रस की वर लहियै ॥७०४॥

भक्ष्य भोज्य औ लेह्य चोष्य षट रस सुखदाई ।
जे छप्पन परकार पदारथ पंच तथाई ॥

बिंजन छत्तिस व्यक्त व्यक्त अस आंगन गांवैं ॥श्रीराधे॥
रचैं सहेली वस्तु एक तामै सब पावैं ॥७०५॥

एक वस्तु को नाम रूप गुन लच्छन गावै।
कबहूं मिलै न अंत ग्रंथ लिखि लिखि भ्रम छावै॥
ऐसौ करि उनमान ज्ञान थिरता बुध कहहीं ॥श्रीराधे॥
संमत सर्व प्रमाण इहै समुझैं सुख लहहीं ॥७०६॥

कर्त्ता वस्तु विभाग भोक्ता जो जह जैसो।
दृढ़ निर्णय सिद्धांत पदारथ है तह तैसो॥
सखी अंगजा ठाम अमाइक इच्छा वस्तु ॥श्रीराधे॥
दंपति सर्वाराध्य जानि चूड़ामनि रस्तु ॥७०७॥

नेह प्रेम अनुराग प्रीति श्रद्धा रस सानी।
सकल पदारथ सिद्ध किये दंपति रुचि जानी॥
कंचन मनि वर पात्र जथाविधि धरि सरपोसे ॥श्रीराधे॥
सौंपैं तिनकै हाथ रहै निति जासु भरोसे ॥७०८॥

कारज तें निवृत्त भई लखि निसा विभागा।
दंपति आवनि हेत हियें उलह्यो अनुरागा॥
कोलाहल धुनि छई नई रति बोलैं डोलैं ॥श्रीराधे॥
भीतर बाहिर आय जाय आकुल गति लोलैं।७०९॥

भरैं अमित अभिलाष सफल हू हैं कब तन दृग।
करत वियारू जुगल प्राण जीवन देखैं ढिग॥
रत्नप्रभा तब आय मोहि सब हेतु सुनायो ॥श्रीराधे॥
मै दंपति दिसि हेरि चित्त उनमान बढ़ायो ॥७१०॥

तबही लाग्यो बजन जाम निसि गजर ठनाठन।
अनायास अवकास मिल्यो कहिवे बातन मन॥
चक्रवाक धुनि भई सुनी पीतम चित दैकै ॥श्रीराधे॥
चरण सीस परसाय जानि मै बोली नै कै।७११॥

महाराज अकुलात सखी सब निसि दिसि पेखैं।
श्रीतनहूँ श्रम अहै सैन सेवा सुख देखैं॥
श्रीपद चालन हेरि विनै जय धुनि भनि हरखैं ॥श्रीराधे॥
उठिवे को उद्योग जानि कुसुमावलि बरषैं ॥७१२॥

देखै नैन सिरात जाहि मन टरै न टारैं।
उतरयौ गच पर दिव्य जान स्वन करि झनकारैं॥
मृदुल पावड़े रचे जुगल ठाढ़े श्रीपग धरि ॥श्रीराधे॥
सहचरि मंडल मध्य चले गर गलबाँही करि ॥७१३॥

रम्य सिंघासन जान बीच बैठैं सुख फूले।
बढ्यौ हियें उत्साह सबन सो चलि अनुकूलें॥
मंद मंद गति घूमि तहां उतरयौ रुख पाई ॥श्रीराधे॥
जहां वियारू ठाम रची आलिन चित लाई ॥७१४॥

ज्यौं भोगी गत लहैं प्राण जीवन अपनो मनि।
त्यौं आतुर लखि चलो जुगल पद कंज अली बनि॥
निकट आय सिर धारि धरा तकि तन मन वारैं ॥श्रीराधे॥
जय भनि सुवन झराय परसि अंग नै बलिहारैं ॥७१५॥

दंपति जंत्रित प्रेम भए इनको सुख चाहैं।
उठे प्रमोद बढ़ाय परस्पर दै गलबाहैं॥
मंजु वसन रचि सुवन पावड़े चित्र सवारे ॥श्रीराधे॥
सहचरि मंडल मध्य चले झुकि हसि पगधारे ॥७१६॥

परम रम्य वर पीठ निकट दोऊ ह्वै ठाढ़े।
बैठत होत विनोद नेह अंबुधि जुग बाढ़े॥
प्यारी प्रीतम लसैं सिंघासन सखी निहारैं ॥श्रीराधे॥
तृषा विवस गतप्राण जथा लहि सुधा सुधारैं ॥७१७॥

वाद्य जंत्र सुर मिली अली कहि समै सुनावै।
गीत प्रबंध प्रवीन राग मूरति प्रगटावै॥
जतन वियारू हेत हियें उल है रुचि जैसें ॥श्रीराधे॥
अवधि चातुरी सबैं जुक्ति ठानैं मिलि तैसें ॥७१८॥

हम निरखैं दृग कोर ओर दंपति कर जोरें।
अति जन गन पर कृपा लहैं रुख विनै निहोरें॥
श्रीअंबुज दृग अल्प विकसि पल थमत झपानी ॥श्रीराधे॥
सुमिरि नाम नै जानि भाव हिय सब हरखानो ॥७१९॥

वर चौकी पर धारि पात्र विवि अमल रतन मै।
श्रीजुग चरण सरोज धोय पट पोंछि सीस लै।

हस्त कमल श्रीवदन अमल जल प्रच्छालन करि ॥श्रीराधे॥
मंजु वसन अंगुछाय हुलसि हिय चख मस्तक धरि ॥७२०॥

धूप दीप आचवन कराए हरखि सयानी।
थार कटोरा रंग विविधि मनि राखे आनी॥
थार निकट हम अष्ट खरी कर लै लखि परसैं ॥श्रीराधे॥
जथा पदारथ रूप तथा मूरति सी दरसैं ॥७२१॥

दंपति भाव बढ़ाय निरखि श्रोट्टग सुख लीन्ह्यौ।
निज जन पूरन आस हस्त झुकि वस्तु सुदीन्ह्यौ॥
भोजन करत विनोद वार्त्ता होत राग तस ॥श्रीराधे॥
कहत सुनत हसि जुगल मध्य पीवत नाना रस ॥७२२॥

नाम रूप गुन स्वाद भेद रस विधि जो जाको।
पृथक बतावत सखी रीति भोजन हित ताको॥
खात खवावत तथा वंचना करि मुरि हेरैं ॥श्रीराधे॥
तन मन इंद्री प्राण बुद्धि अरझैं न निवेरैं ॥७२३॥

नेहसिंधु रस पगे भूलि कर अनतैं डारैं।
हम श्रीकर सो भरैं जानि हसि सकुचि निहारैं॥
बात बरावैं कहै तिक्त विंजन चख मूंदैं ॥श्रीराधे॥
गोपेश्वर सब भीजि छकी सुख रस भर बूंदैं ॥७२४॥

मान बढ़ावत गाय स्वाद मुख दै सुख दानी।
सीतल अमल सुगंध बीच पीवत हसियानी॥
परमानंद उदोत भयो सखियन के हिय मैं ॥श्रीराधे॥
दंपति भोजन सुखद तृप्ति पाई लखि जिय मैं ॥७२५॥

हम सब नैकरि विनय वस्तु गुन विसद बखानैं।
लेत हमारे हेत हस्त श्री सिथल लखानैं॥
चित्त हठ्यो उनमानि वेगि ते लिये उठाई ॥श्रीराधे॥
भाजन अचवन काज धरे नग जुग्म सुहाई ॥७२६॥

गेरत झारी नीर सखी अचवन पिय प्यारी।
खरिका कनक विचित्र लिये मुख शुद्ध सवारी॥
मंजुल द्रव्य सुगंध हस्त धोये पट पोछे ॥श्रीराधे॥
श्रीजुग चरण सरोज प्रछाले वसन अंगोंछे ॥७२७॥

विविधि सुगंधित द्रव्य रचित चूरण मुखवासा।
स्वल्प कटोरी उभै धारि दै भरी हुलासा॥
दंपति श्रीकर वदन मेलि सौरभ रस घूंटैं ॥श्रीराधे॥
लखि प्रसन्नता जुगल अंग आली सुख लूटैं ॥७२८॥

अतर अनूप सुधारि फहा दोऊ कर दीन्हे।
नेह भार झुकि विहसि परस्पर नासा कीन्हे॥
उमग्यो हर्ष अपार सखी मिलि मंगल गावैं ॥श्रीराधे॥
नृत्य कला गति भेद चपलता तन दरसावैं ॥७२९॥

कौतुक करैं अनेक एक दंपति हित लागी।
पिय प्यारी लखि हसैं अली जिय होंहि सुभागी॥
तीनि पांति चौबीस कुंज तिन मध्य बखानी ॥श्रीराधे॥
सभा कुंज नौ खंड बनिक अनुपम मुद खानी ॥७३०॥

परम निकुंज विहार धाम सत कुंज पुंज हित।
नित्यविहारी जुगल सैन निसि नेम सदा तित॥
रचना रची विचित्र सखिन मन रुचि प्रगटाई ॥श्रीराधे॥
ठौर ठौर चख चित्त बुद्धि फसि रहत लुभाई ॥७३१॥

सर्वोपरि गत विपुल भूमि चित्रित मनि नाना।
परसै हस्त सुहात सिला ज्यौं एक समाना॥
तहा बिछौना मृदुल बिछे पटरंग अनेका ॥श्रीराधे॥
तापै रचना कुसुम भाँति सो विलग विवेका ॥७३२॥

श्रीमहारानी भक्ति अंग सेवा निज कीन्हे।
दंपति आनद हेत बनै रुचि समयो चीन्हे॥
अद्भुत अमल अनूप विविधि मनि सेज बिछाई ॥श्रीराधे॥
स्वल्प तीनि सोपान चहू दिसि लगी सुहाई ॥७३३॥

चौम स्वच्छ अति विसद मंजु विष्टर तापै रचि।
बार बार कर फेरि मेटि सर सुखद किये सचि॥
पचरंगी वर डोरि चतुर पायन बांधैं कसि ॥श्रीराधे॥
जाल ग्रंथि दै पुष्प नगन झूमक झूमै लसि ॥७३४॥

दीरघ वर्तुल स्वल्प बृहत चौकोर अनेका।
तकिया धरे सुधारि जथाविधि सहित विवेका॥

पाटी लगि सोपान प्रथम लौं जाल रचाये ॥श्रीराधे॥
चहू ओर मनि पुष्प भाँति नाना करि लाए ॥७३५॥

केवल सुवन विचित्र रंग सोपान रचाई।
तूल अतर वर बोरि गुप्त तिन मध्य धराई॥
नीकें नैन निहारि चित्त संकल्प मिटाये ॥श्रीराधे।
पलंग पोस सौरभ्य हरे गति हरखि उठाये ॥७३६॥

नभ दिसि तन्यौ वितान प्राण उलहैं जिहि हेरें।
मुक्ता मनि गन सुवन काम लखि हग अरभेरें॥
झालरि झूमक लरी कुसुम गुच्छा बहु लटकें ॥श्रीराधे॥
सीतल मंद सुगंध वायु डोलें उर खटकें ॥७३७॥

लिपटे मत्त मलिंद संघ मिलि शब्द उचारें।
हालैं पाय समीर उड़ैं गति मंद प्रचारें॥
छरी भरी सौभाग्य अष्ट दिसि खरी सुहावैं ॥श्रीराधे॥
मनौं दंड उद्दंड भूप श्रृंगार लजावैं ॥७३८॥

विजन मोर छल चमर अतर भाजन कर धारी।
पानदान तें आदि अपर जे सौंज अपारी॥
तंत्री जंत्र अनेक एक सुर करि मृदु गावैं।श्रीराधे॥
चंचल चित्त विलोल अली हग नभ तन लावैं ॥७३९॥

बार बार अकुलाय उमगि आगमन निहारैं।
प्यारी पीतम रूप सुधा जिन छिन आधारैं॥
ज्यौं ज्यौं आवत चढ़त चंद गति मंद कंद सुख ॥श्रीराधे॥
जुगल बिना सो ठाम वाम उर देत अधिक दुख ॥७४०॥

कलहंसी मम निकट आय सब रीति सुनाई।
मै सुनि पायो चैन ऐन तन मन मुद छाई॥
लागी करन विचार विनै की विधि अब कीजै ॥श्रीराधे॥
सेज विराजे पेखि जुगल अनवांध सुख लीजै।७४१॥

लागी नौबति झरन घरन घर मंगल छायो।
सैन समै अनुकूल शब्द सो होत सुहायो॥
दपति सो धुनि सुनो गुनो निशि अधिक बितानो ॥श्रीराधे॥
श्री पीतम हसि मन्द कही जीवन धन बानी ॥७४२॥

अये विसाखे लखौ प्रिया अंगन छवि छाई।
नैन कोर ढिग डोर अरुणिमा अधिक जनाई॥
धीर थीर गंभीर पलक प्रगटत अरसाई ॥श्रीराधे॥
मनौ विजय श्रृंगार भूप समयें निज पाई ॥७४३॥

प्रीतम संमत समुझि जुक्ति मेरे मन आई।
होय हसी गुण लसी काज निबहै सुखदाई॥
चित्रा ऊपर गिरौं औंघि निद्रा सब जानै ॥श्रीराधे॥
दंपति हेतु विचारि सैन इच्छा मन आनै।७४४॥

कीन्ही सोई उपाय हसें प्यारी प्रीतम अति।
सहचरि सब सकुचाय लाज अंगन धारी कति॥
श्रीजू मो तन हेरि कही काहो अरसानी ॥श्रीराधे॥
विनय लब्ध अवकास करी जोरें जुग पानी ॥७४५॥

महाराज या समै आप सोवत हे पलकैं।
निद्रा सेवा हेत आय श्रीअंगन झलकैं।
सूनी सेज निहारि चली सो इतही आई ॥ श्रीराधे॥
जात डरी श्रीनिकट परी मोपै खिझराई ॥७४६॥

हाँसी भई अपार मोद श्रीजू अति पायो।
पीतम संमत सिद्ध भयो आनद भर छायो॥
सबकौ अति अभिलाष जानि दंपति जिय आई ॥श्रीराधे॥
कही विहसि री चलौ मिटै तुमरी अरसाई ॥७४७॥

मधुरालाप सुगंध प्रसर धुनि रुनुझुनु छाई।
मानौ मुख्य प्रमोद प्रगट मूरति दरसाई॥
मंगल मई विमान उतरि सो निकट लगानो ॥श्रीराधे॥
पिय प्यारी ता बनिक हेरि हग मन विकसानो ॥७४८॥

परमानन्द अथाह उदधि उमगे मन दोऊ।
अंग परस्पर गहैं सखी लागी बस सोऊ॥
सिंघासन तें उतरि भूमि ठाढ़े सुख बाढ़े ॥श्रीराधे॥
रचित पावड़े मृदुल भूमि श्रीपगऊ काढ़े ॥७४९॥

सहचरि मंडल मध्य चले आवत सुख सरसें।
बैठे बिहँसि विमान अली कुसुमावलि बरषे॥

श्रीमन के अनुकूल जान गति मंद घूमि चलि ॥श्रीराधे॥
शंका मानत चित्त अनै उपजै न कोऊ हलि ॥७५०॥

मंगल भाति अपार कुंज कुंजन अति छाए।
उच्च भाग प्रासाद अली ठाढ़ी दृग लाए ॥
शुभकारी वर द्रव्य साजि कर थार सुहावैं। श्रीराधे॥
नृत्यगान सुर मंजु जान धुनि सुनि हुलसावैं ॥७५१।

कोटिन चंद्र प्रकाश भास आकास लखैं जब।
उमगि हियें अनुराग भार नै भूमि परैं सब ॥
भूरि भाग्य सों ठाम जान जाके ढिग आवैं ॥श्रीराधे॥
पेखि जुगल सरवस्व वारि पूजा विधि भावैं ॥७५२॥

दंपति रूप निहारि हियें धरि भरि सुखपुंजा।
आवत लागी संग सभा मंगल थल कुंजा ॥
सैन सेज के निकट आय जबही झलकानौ ॥श्रीराधे॥
तहाँ रही जे अली मृतक जीईं लखि मानौ ॥७५३॥

कोलाहल रव छयो नयो धरनी दिसि जानू।
सहचरि हिय दृग कंज वदन बिकसे लहि भानू ॥
मन बुद्धि इंद्री वृत्ति चित्त ए पेखि पगाने ॥श्रीराधे॥
चली देह भरि नेह मत्त गति सुरति समाने ॥७५४॥

इक टक रही निहारि निकट जकथक ह्वै ठाढ़ी।
जथा मीन गति नीर प्यास नित नूतन गाढ़ी ॥
जूथापति वर मौलि मत्स्य भारी भय जैसें ॥श्रीराधे॥
सपदि चेतना गही सकुचि लखि परै न तैसें ॥७५५॥

करि करि दण्डप्रणाम जोरि कर अस्तुति भाखैं।
सुवन अंजली सारि परसि पद भरि अभिलाखैं ॥
दंपति सेज विलोकि तोष अतिसै उर पायो ॥श्रीराधे॥
उलहनि वृत्ति निहारि सीस हम सब मिलि नायो ॥७५६॥

उठे पूर अनुराग हियें प्यारी पीतम पगि।
मेलि परस्पर बांह कंठ मंडल हमहू लगि ॥
अमल वसन रचि सुवन पावड़े चित्र सवारे ॥श्रीराधे॥
विहसि लटकि पग चलनि हेरि तन मन अलि वारे ॥७५७॥

होत विनोद अपार सार वरषत सुख आवत।
रीझि रीझि बलिहारि परस्पर हमै लुभावत ॥
करि परिदच्छिन सेज भाग दहिने ठाढ़े दोउ ॥श्रीराधे॥
विमलि मनावनि करत प्रथम पग धरत न हठि कोउ ॥७५८॥

जुगलानंद अथाह उदधि उमगे लहि वेला।
कूल पलग ढिग रुके लहरि मन अधिक उछेला ॥
जलचर सहचरि हरख बढ़त अपनी धन जानी ॥श्रीराधे॥
अधिक बूड़ि उतरात स्वास निकसत अकुलानी ॥७६०॥

विवस होय मै झुकी हस्त आयो प्यारी पद।
थीर भई मन वृत्ति बूड़ि या जथा लहै हद ॥
श्रीमृदु चरण सरोज सेज ऊपर पधरायो ॥श्रीराधे॥
पीतम हरष विशेष भयो सब मनको भायो ॥७६०॥

लटकत झूमत झुकत अंग थांभत सुख रासी।
चहूँ ओर सहचरी गहें ता रस छिन प्यासी ॥
तन मन दृग धी प्राण एक ह्वै दोउ विराजे ॥श्रीराधे॥
सखियन के उत्साह नगारे सुख भर बाजे ॥७६१॥

प्रेम विवस अनुराग भरी आली तकिया धरि।
जथा होय अनुकूल तथा ता विधि सो तित करि ॥
विवि चूमै नभ छत्र मोरछल चमर ढुरावैं ॥श्रीराधे॥
सहचरि वृंद अपार निरखि दृग हिये सिरावैं ॥७६२॥

सेवा सौंज अनंत हस्त लीन्हे सब सोहैं।
जुगल माधुरी छटा चखन पीवैं मन मोहैं ॥
श्रीजू कृपा निहारि वारि सरवस्व मनावैं ॥श्रीराधे॥
यह सेवा फल होय हमै छिन ऐसे जावैं ॥७६३॥

जंत्र मधुर सुर मिले बजावत समै सुहाए।
नृत्य भेद दरसाय गान तानन रंग छाए ॥
धरि धरि नाना वेस देस तैसो दृढ़ भावैं ॥श्रीराधे॥
दंपति लहैं विनोद अली करि जतन हसावैं ॥७६४॥

दूध पियावन हेत समै लखि रची उपाई।
एक अली बनि धेन दूसरी वच्छ सुहाई ॥

अपर दूहिवे काज गोप ह्वै दोहनि कर लै ॥श्रीराधे॥
कसि बाँध्यो गहि वत्स तासु पग नोई गर दै ॥७६५॥

धार शब्द मुख बोलि झर्र कहि दूहत ज्यौं ज्यौं।
धुनि सुनि आकुल वच्छ पूछ मुरि मारत त्यौं त्यौं ॥
उभै हियें पय लोभ परस्पर टारैं मारैं ॥श्रीराधे॥
दै तारी भनि भलें अली हसि गिरा उचारैं ॥७६६॥

कौतुक जुगल निहारि हसे अति दूध लोभ हित।
सो अवसर हम पाय तासु गुन कहे अमित तित ॥
चहूं ओर सहचरी दुग्ध को रूपक बाँधै ॥श्रीराधे॥
पिय प्यारी मन मांहि उदै रुचि रचि करि साधैं ॥७६७॥

निकट आय हम अष्ट बैठि श्रीपद लै गोदी।
मंजु पलोटैं लाय दृगन छाती करि ओदी ॥
बातैं रुचिर बनाय पाय रुख बिनती कीन्ही ॥श्रीराधे।
निसा दंड दस गई अबै मंगल रस भीनी ॥७६८॥

अनुशासन जो लहैं परम अपनौ हित श्रीमुख।
जतन करैं पय पान सकल चाहैं दीजै सुख ॥
सील सिंधु जन बंधु दया दृग कोर निहारैं ॥श्रीराधे॥
सेवा समै विचारि उमग हिय उदधि सभारैं ॥७६९॥

चोपर गमगी अमल जगमगी चौकी धरिकैं।
तापै अचवन हेत जुग्म भाजन मनि करिकैं ॥
नीर सुधा सम सीर विमल झारी कर धारी ॥श्रीराधे॥
उभै ओर लै खरी झुके लखि जुगल बिहारी ॥७७०॥

अचयें मोद बढ़ाय पोंछि श्रीमुख कर पटतें।
चूरन परमा मोद द्रव्य गुण भूरि प्रकट तें ॥
रत्न कटोरी स्वल्प धारि दंपति कर दीन्हें ॥श्रीराधे॥
विहसि मेलि श्रीवदन चर्च्य सौरभ रस लीन्हें ॥७७१॥

श्रीइच्छा तें भई धेनु कामद गुन खानी।
ताको दुग्ध अनूप सकल रसप्रद रुचि मानी ॥
सखी अंगजा तेउ रूप जस रच्यौ बनाई ॥श्रीराधे।
जथा जोग सो वस्तु चित्त समुझैं सुखदाई ॥७७२॥

स्वच्छ रकावी वसन सहित मनि स्वेत कटोरा।
दंपति रुचि पहिचानि भर्यौ हिय नेह न थोरा ॥
ढाकि जतनतें आनि दियो सो मो कर सखियन ॥श्रीराधे॥
खोलि निहारि सराहि तिन्है सुख मैलै अखियन ॥७७३॥

नेह भरी हिय हरी खरी लै मध्य जुगल कैं।
अतुलित भार अपार पेखि छवि परत न पलकैं ॥
श्रीजू मृदु मुसकाय कही पहिलें उत प्यावौ ॥श्रीराधे॥
पीतम बोले वेगि प्रथम ललिते तित जावौ ॥७७४॥

श्रीश्यामा कर छुई रकावी हस्त हटायो।
आजु आप द्वै घूंट लीजियै मन हम भायो ॥
लाल रकावो गही पानि ए प्रान पियारी ॥श्रीराधे॥
जा सुख लागैं पान करैं सो देहु विचारी ॥७७५॥

विवि सागर सुख मध्य परी मैं लैहँ हलोरैं।
छकी जकी सी लखौं दोउ बलि करैं निहोरैं ॥
नागर परम प्रवीन जुगल रस खानि सिरोमनि ॥श्रीराधे॥
दूध भयो मिस बोच प्रेम सरिता वहि अनगनि ॥७७६॥

लाल आपने हस्त कटोरा श्रीमुख लायो।
गूढ़ हियें हित भाव प्रगट सो गुन दरसायो ॥
पीतम जिय इठ जानि प्रिया अंबुज दृग फेरे ॥श्रीराधे॥
मंद हसी भूतानि चितै सुख दियो घनेरे ॥७७७॥

हरषि लई द्वै घूंट अहा कहि अधिक बखानो।
लाल वदन तन कियो लटकि श्रीगहि निज पानी ॥
दृष्टि परस्पर मिली चली बरुनी न चलायें ॥श्रीराधे॥
नेह मेह झर लगो अली लखि लेत बलायें ॥७७८॥

पियत पियावत दुग्ध मुग्ध ता छिन छिन पावैं।
उत्कंठा अति चित्त सभरि सोई सुख भावैं ॥
नैन मूँदि मन भाय पाय रस बहय पकटैं ॥श्रीराधे॥
लह्यो स्ववस शृंगार भूप जनु सरवस लूटैं ॥७७९॥

दंपति करैं विनोद मोद केवल जन लागो।
गोपेश्वर श्रीकृपा पाय हमहू तत भागी ॥

पूरे सब अभिलाष जनन के पय करि पाना ॥श्रीराधे॥
श्री अंगन सुख छयो नयो रुचि सरसत नाना ॥७८०॥

नेह भरी सहचरी गहैं झारी अचवावैं ।
मंजुल वसन अगौंछि वदन श्रीकर सिर नावैं ॥
परमामोद सुगंध द्रव्य गुणप्रद बहु जाती ॥श्रीराधे॥
धारि कटोरी दई विसद मुखवास सुहाती ॥७८१॥

दंपति श्रीमुख मेलि तासु रस लै सुख पावैं ।
वोरी चित्र अनूप अली करि जतन विभावैं ॥
हीरक मनि पट भीन रकाबी उभै सुधारैं ॥श्रीराधे॥
देत विसाखा पानि अपर नै अली हमारैं ॥७८२॥

पिय प्यारी अति लगैं पगें हित हम नै देवैं ।
जुगल हियैं जन भाव हेरि झुकि हसि लसि लेवैं ॥
वीरी श्रीरी ओष्ठ अरुण रद छटा सुहावैं ॥श्रीराधे॥
ललित झीन पट झांपि नखत राजी सकुचावैं ॥७८३॥

तन मन सने सनेह परस्पर तकिया लागे ।
कर मेलत झुकि हसत वचन अमृत रस पागे ॥
मधुर गीत धुनि सुनत गुनत चित बैन नैन झपि ॥श्रीराधे॥
विथुरी अलक सवारि जुगल दृग हेरि पलक कपि ॥७८४॥

अरसाने अंग लसैं वसै छवि हियें दोऊ दिसि ।
हरखि निहारैं अली निवारैं सकल भाति तिसि ॥
चौंकि उठे पिय सपदि अनत प्यारी भ्रम मानी ॥श्रीराधे॥
सोभा अपरमपार लखी श्रीतन अरसानो ॥७८५॥

एक टक रहे निहारि टारि नहि सकत लाल दृग ।
मनौ राग वस भयौ अंग थकि रह्यो जथा मृग ॥
वार वार वलिहारि हरखि हमरी दिसि देखैं ॥श्रीराधे॥
नैननही करि सैन बैन धुनि प्रगट न लेखैं ॥७८६॥

पीतम सहचरि लागि जतन ते श्रीअंग धारे ।
हरें हरें सरकाय गेंदुवा चतुरन टारे ॥
लाल अली रंगरली करावैं सैंन सुखारे ॥श्रीराधे॥
अलकैं वसन सवारि दिये तकिया मृदु सारे ॥७८७॥

सोभा सिंधु तरंग अंग अंगन छवि लहरैं ।
पीतम दृग जुग मीन पीन विहरैं जल गहरैं ॥
पान कियें माधुर्य्य लहरि भूली चपलाई ॥श्रीराधे॥
हियें विभावैं रूप सखिन जानी अरसाई ॥७८८॥

लहि तन सखी प्रवीन लाल करि जत तसु ताए ।
तकिया वसन सुधारि केस लखि रीझि बनाए ॥
दंपति श्रीअंग लगी सबै सेवैं सुख सरसैं ॥श्रीराधे॥
हियें कपोलन चखन भाल पेखै वपु परसैं ॥७८९॥

जुगलानंद समुद्र माधुरी छटा तरंगा ।
लखै उमगि अनुराग सहचरी सेवैं अंगा ॥
परम चातुरी धाम सकल अस करैं उपाई ॥श्रीराधे॥
श्रीतन श्रम जिमि मिटै नींद छिन छिन अधिकाई ॥७९०॥

दंपति करवट लेत ओर जाकी सोभा गिन ।
अनवधि सेवा सौख्य लहैं फल हिय निज लागिन ॥
आलस रसनिधि भरे अंग सुखमा अनपारी ॥श्रीराधे॥
थीरै नैन निहारि धरैं उर अचल सभारी ॥७९१॥

स्वास अधिकता देखि विलग ह्वै निरखैं ठाढी ।
चोप सौगुनी हियें अमित अभिलाषा बाढ़ी ॥
धरैं पलंग चहुँ वोर सौंज निसि जे हित जानी ॥श्रीराधे॥
प्रेम नेह अनुराग प्रीति पूरी सब आनी ॥७९२॥

सिरहाने की ओर अमिय जल सीतल झारी ।
नाना जतन रचाय उभै ते धरी सुधारी ॥
मेवा विविधि अनूप सकल रसमै गुन खानी ॥श्रीराधे॥
भाजन भरे अनेक धरे दंपति हित मानी ॥७९३॥

पानदान जुग अमल अनूपम वीरी पूरे ।
परमामोद सुगंध द्रव्य गुणप्रद धरि भूरे ॥
भाजन अतर अमोल जुग्म तिन मै बहु जाती ॥श्रीराधे॥
कोउ खुले घर अपर ढांकि राखे इहि भांती ॥७९४॥

पुष्पाभरण विचित्र साज नखसिख लौके सब ।
भीन वसन करि जतन उभै भरि थार धरे तब ॥

बगलन बांई दच्छ पीकदानी शुभ धरिकै ॥श्रीराधे॥
कछू दूरि बर मुकुर थापितें ऊभे करिकै ॥७६५॥

लिखे चित्र जिन्ह मांहिं लखैं मन हर्ष बढ़ावैं ।
कितने निर्मल स्वच्छ वदन पेखैं सुख छावैं ॥
नाना मणि रचि बने उपस्कर क्रीड़ा हित जे ॥श्रीराधे॥
जुगलविहारी मोद लहैं ता विवि धरि तित ते ॥७६६॥

दर्पन उभै अनूप उच्च आयत निर्मल अति ।
राखे पायत ओर लखैं मुद पांवै दंपति ॥
सैन नहीं सब काज करैं नहिं स्वल्प होत धुनि ॥श्रीराधे॥
निद्रा भंग न होय संक मानत अति जिय गुनि ॥७६७॥

चादरि आयत सौम्य क्षौम सुखदायक सब छिन ।
अष्ट ओर हम गही अष्ट मिलि तानी सो तिन ॥
दंपति रूप निहारि धारि उर सीस नवाई ॥श्रीराधे॥
सावधान करि चित्त वृत्ति गति हरें उठाई ॥७६८॥

सौंज सकल सोपान धरी दृग फेरि निहारी ।
जथायोग्य जो होय तथाविधि चित्र सवारी ॥
मन बुधि इंद्री प्राण नैन ए मीन हमारे ॥श्रीराधे॥
जुगल माधुरी रूप सुधा जल जीव न पारे ॥७६९॥

जुदे होत अकुलात समै अवसर लखि आनै ।
ते सब तहा बसाय नाम सुमिरें उर छानैं ॥
उलटे ही पग धरैं हरैं नयनै कर जोरैं ॥श्रीराधे॥
सिथल दसा तन छई चलैं झुकि वा दिसि होरैं ॥८००॥

ज्यौं त्यौं जहां प्रमाण आय पहुँची ता ठांई ।
बोलें शब्द न जात सैन मंगल ढिग तांई ॥
तहां बैठि कछु बार सुमिरि दंपति छवि नामा ॥श्रीराधे॥
मधुरे स्वर धुनि करी चित्त पायो विश्रामा ॥८०१॥

संमत कियो विचारि भोर सेवा सुख सामा ।
दंपति लहैं प्रमोद जथाविधि सो दृढ़ कामा ॥
अपने अपने जूथ वृंद नीकै समुझाई ॥श्रीराधे॥
प्रात विसाखा सदन सकल सुख मै असगाई ॥८०२॥

आए अष्ट विमान मुख्य औरौ अनगनती ।
उठीं परस्पर मिली जथाविधि नै करि विनती ॥
चढ़ी जाय निज जान संग जाके जो रहहीं ॥श्रीराधे॥
नभ दिसि ठहरि निहारि सेज मस्तक भू लहहीं ॥८०३॥

अपने अपने ठाम जाय उतरैं सब सहचरि ।
द्वार खरी मुरि सैंन कुंज वंदै त्रय विधि करि ॥
भीतर सदन प्रविस्य बैठि निज सिंघासन वर ॥श्रीराधे॥
सेवैं सखी समूह लहै मुद हिलि मिलि तत्पर ॥८०४॥

वसन पुष्प आभरन गंध बीरी तें आदी ।
भोजन सकल प्रकार नीर जे मिलै प्रसादी ॥
जाकी पारी होय तहां सब ता दिन आवैं ॥श्रीराधे॥
तिनकी आज्ञा भयें अष्ट करि भाग लगावैं ॥८०५॥

जे जे जिनके संग मुख्य कहि अष्ट बखानी ।
सकल प्रसादी सौंज भाग जे किये प्रमानी ॥
लारैं एक प्रधान अपर आली बहु गण लै ॥श्रीराधे॥
सप्त कुंज ते जांहि सीस तिनकै शो सब दैं ॥८०६॥

तहां तहां ते जाय पाय वंदै कर जोरैं ।
विनती भार सुनाय प्रसादी देंहि निहोरैं ॥
तेऊ परम प्रवीन जानिं महिमा उठि वंदी ॥श्रीराधे॥
लै नय अपने हस्त सीस धारैं अभिनंदी ॥८०७॥

दान मान दै तोष भेंटि मृदु गिरा सुनाई ।
श्रीराधे संकेत प्रणय कहि करैं बिदाई ॥
सप्त धाम पहुँचाय आय निज प्रभुपद वंदै ॥श्रीराधे॥
यह संकेत जनाय सकल भाखैं नय मंदै ॥८०८॥

सुनि प्यारी प्रिय नाम हियो उमगै सिर नावैं ।
निज आलिन की रीति पेखि अति प्रीति बढ़ावैं ॥
सकल सहचरी वृन्द अष्ट कुंजन जित जे हैं ॥श्रीराधे॥
वर स्वामिनी प्रधान अंग सेवैं निति ते हैं ॥८०९॥

रत्नप्रभा तें आदि अष्ट ए मुख्य हमारैं ।
इनकैं संग अनन्त जूथपति वृन्द अपारैं ॥

तन मन वृत्ति लगाय हमैं सेवैं सब भाँती ॥श्रीराधे॥
नैन प्राण सम अधिक मोहि निति परम सुहाती ॥८११॥

अंग अंग आभरन वसन तन मम उतरावैं।
केवल साटी साजि चरन कर वदन धुवावैं॥
मंजुल पट अंगुछाय नम्र ह्वै बिनै सुनावैं ॥श्रीराधे॥
भोजन जुगल प्रसाद पाय रुख हमि लै आवैं ॥८११॥

थार कटोरा साजि कटोरी चौकी धरही।
सकल पदारथ व्यक्त विसद विधि सेती भरही॥
झारी भरैं प्रवीन नेह जुत गिरा सुनावैं ॥श्रीराधे॥
प्रेम पुलकि हिय अंग हमैं भोजन करवावैं ॥८१२॥

बीच बीच रस पीय नीर बानो सुख देवौं।
दै खरिका अचवाय वसन पोंछें चित भेवौं॥
मंगल वर मुखवास प्रसादी बोरी देहीं ॥श्रीराधे॥
अतर सुवन अरपाय निरखि नय मन हरि लेहीं ॥८१३॥

रचना परम रचाय सेज लखि चित्त लुभाई।
नय मंडल करि मध्य मोहि दै चलैं लिवाई॥
जाय पलंग बैठाय नाय सिर अति सुख पावैं ॥श्रीराधे॥
नृत्य गान दरसाय विविधि कौतुक उपजावैं ॥८१४॥

प्रेम हिये हुलसाय जानि रुचि दुग्ध पियावैं।
वदन हस्त अचवाय पोछि मुखवास बिभावैं॥
अरसाने अंग जानि जतन तैं सैन करावैं ॥श्रीराधे॥
सेवैं चित्त लगाय परसि तन सुख भर पावैं ॥८१५॥

निद्रा के लखि चिह्न विलग ह्वै सीस नवावैं।
नीर पान तें आदि सौंज ढिग पलंग धरावैं॥
ऊपर वसन उठाय चित्त मेरे पद राखैं ॥श्रीराधे॥
जीहा सुमिरैं नाम करैं पूरी अभिलाखैं ॥८१६॥

आवैं ताही ठौर सकल पुनि भाग लगावैं।
भूषन वसन प्रसाद सौंज सब लै हरखावैं॥
मिलैं प्रसंसै नवै नैन बानी सुख लै दै ॥श्रीराधे॥
जथाजोग्य व्यवहार साधि निज कुंज चलैं नै ॥८१७॥

जूथ वृन्दपति मौलि आय निज कुंज द्वार पर।
मुरकि निहारैं जुगल सेज वंदै सिर जुग कर॥
भीतर करैं प्रवेस संग आली जे जिनकैं ॥श्रीराधे॥
सेवैं ऐसी भांति प्रभू अपने हित गिनकैं ॥८१८॥

जाहि जहां अनुराग प्रेम मन मेल मिताई।
तहां तथा सो रीति साधि अति नेह बढ़ाई॥
आवै अपनी कुंज पुंज पूरे सुख पाई ॥श्रीराधे॥
जुगल सैन थल पेखि धारि उर भीतर जाई ॥८१९॥

भूषन वसन उतारि धारि साटी एकै तन।
हस्त पाद मुख धोय पोंछि पट लै जल अचवन॥
शुद्धासन थिर बैठि जुगल श्रीनाम उचारैं ॥श्रीराधे॥
रूप माधुरी छटा चरण नख हियें सभारैं ॥८२०॥

भोर उठें तें रैन सैन लौं सेवा जेती।
जो जो अरझी होय चित्त सुमिरैं सुख सेती॥
अपनी सखी समेत प्रसादी लै हरखाई ॥श्रीराधे॥
सबही को मन तोषि देइं तिन हेत बढ़ाई ॥८२१॥

प्रात वृत्ति अनुसास्य विदा करि सेज पधारैं।
स्यामा स्याम पदारविंद निज मन अलिपारैं॥
अति लोभी चित भौंर गंध हित बसैं जथा निसि ॥श्रीराधे॥
तैसें निश्चल राखि पलंग लुठि रहै नींद मिसि ॥८२२॥

बहुरि भोर की रीति जथाविधि पहिलें गाई।
जो मंडल दिन होय तहा कीजै सुख पाई॥
ऐसें सेवा होत इहाँ दंपति इच्छा जस ॥श्रीराधे॥
अवधि नेम को लहै प्रेम को पंथ कहै तस ॥८२३॥

अष्ट जाम की रीति स्वल्प सेवा विधि भाखी।
सुधासिंधु अनपार स्वाद जानै कन चाखी॥
गावैं जाहि अनंत संत संमत श्रुति दृढ़तर ॥श्रीराधे॥
ताहि अंत लै कहै अहै सो मूढ़ मंदतर ॥ ८२४ ॥

दोहा—गोपेश्वर या वस्तु को, दुर्गम अतिसै अंग।
चरण किसोरी कृपाबल, भाख्यो कछू प्रसंग ॥१॥

चित्त गहै जिहि कष्ट करि, बचन कहै किहि भांति ।
शनैः शनैः परिचै कियें, उपजै निश्चै सांति ॥२॥
सुनैं विचारें हिय गहैं, करै नेम दृढ़ प्रेम ।
दंपति चरण सरोज सुख, पावै अनवधि छेम ॥३॥

श्रीललिता गहि मौन दृग, मूदि रही कछु वार ।
प्यारी चरण सरोज सुख, बूड़ी सिंधु अपार ॥१॥
तथा सहेली श्रवण करि, सेवानंद अनूप ।
जुगल माधुरी मत्त ह्वै, भूली आप सरूप ॥२॥

दंड एक ऐसें रही, परमानंद समाय ।
सिथिल अंग झुकि झुकि परैं, भूषन रव अधिकाय ॥३॥
श्रीललिता सो धुनि सुनी, खोलें अंबुज नैन ।
हरषि स्वास दोरव लई, छाय रह्यौ सुख चैन ॥४॥

जुगल माधुरी छके दृग, फेरि लखी सब ओर ।
मस्तक धरनी धारि ते, वंदैं करैं निहोर ॥५॥
वायु लहैं घन ओष्ट चल, मंद हसनि लसि सोय ।
दंत छटा दामिनि झलक, शब्द वचन गति होय ॥६॥

श्रीराधे वरणावली, वृष्टि उमगि रस कीन्हि ।
चातक अली समूह तिमि, तृषित विमल गहि लीन्हि ॥७॥
आनद उदधि अपार अति, बढ़्यौ परम ता ठौर ।
सहचरि अंबुज वदन दृग, विकसे पुतरी भौंर ॥८॥

गोपेश्वर कर जोरि तब, बोले मस्तक नाय ।
महाराज कृतकृत्य हम, भये चरन रज पाय ॥९॥
भानु संग जग पाय जिमि, सीत अंध भ्रम जाय ।
तथा रावरी चरण रज, साधक सकल उपाय ॥१०॥

तीर सुधा निधि के रहैं, तृषा मिटै नहि जासु ।
बहुरि कहाँ सुख लेस तिहिं, मंद भाग्य अति तासु ॥११॥
परम उदार सिरोमणी, आप सरिस हैं आप ।
अपनौ धन सरवस्व दै, मेटत जन परिताप ॥१२॥

अब करुणा ऐसी करौ, यह धन हिय थल पाय ।
जतन जुक्ति मन दृढ़ करै, छिन छिन अति अधिकाय ॥१३॥

जथा रंक लखि रीझि नृप, ज्यौं धन देहि अपार ।
लाहि जतन जन संग दै, ताहि लगावत पार ॥१४॥
कृपा रावरी मोहिं बल, सत्य कहौं पद पेखि ।
बीज बोइ पुनि सींचिबो, यह कर आपु विसेखि ॥१५॥

गोपेश्वर के वचन सुनि, श्रद्धा मतिजुत प्रेम ।
वस्तु ज्ञान रुचि धारना, उत्कंठा दृढ़ नेम ॥१६॥
श्रीललिता हिय तोष, लहि सिद्ध परिश्रम जानि ।
करुणा रस दृग पूरि लखि, करी मंद मुसकानि ॥१७॥

वचनामृत मृदु धार, वहि सीचत जन हिय रूख ।
ते पीवत बलवंत ह्वै छिन छिन बाढ़त भूख ॥१८॥
अहो वत्स हिय धन्य तुम, भाग्य बुद्धि जस सेतु ।
दुर्लभ का श्रीपद कृपा, सकल सिद्धि शुभ खेतु ॥१९॥

अधिक होयवे की कृपा, जो पूछी तुम तात ।
मूल हेत अभ्यास दृढ़, वस्तु पाय सुख छात ॥२०॥
गुरु जथा कण अग्नि लघु, देत शिष्य लखि वस्तु ।
जतन कियें जग वह्निमय, ना तो छार समस्तु ॥२१॥

श्रद्धागिनि इंधन श्रवन, वायु विचार प्रचंड ।
वस्तु मंत्र अभ्यास घृत, हुति फल गहैं अखंड ॥२२॥
प्रथम सुनै मन लाय कै, अर्थ विचारि विनीति ।
मनन करै दृढ़ धारना त्यागि, अपर मन प्रीति ॥२३॥

नित्यानित्य विचारि दृढ़, वस्तु गहै सुख मूल ।
शनैः शनैः अभ्यास करि, पावै मोद अतूल ॥२४॥
करुणासिंधु अपार अति, शील दयानिधि भार ।
नित्य विहारी जुगल, श्री प्रणत लगावैं पार ॥२५॥

दंपति पद प्रापक वचन, सुने सबन सुख मूल ।
जय जय कहि सिर नावहीं, हँसि बरषावैं फूल ॥२६॥
गोपेश्वर सकुचाय दृग सीस, नाय कर जोरि ।
श्रीललिता ससि वदन तकि, लखत सबन मुख मोरि ॥२७॥

अति उत्कंठा पूछिवे, लाज गहत मन माहि ।
अधिक ढिठाई जानि जिय, प्रगट कहत सो नाहि ॥२८॥

स्यामानुगा विसेष सुख, श्रवण हियें उनमानि।
गोपेश्वर धन धन्य तुम, हमसे जन सुखदानि ॥२६॥
यह धुनि सुनि सब विहसि दृग, लखैं तिन्है की ओरि।
तेऊ लाज भरि नम्र ह्वै, सकुचत अंग सिकोरि ॥३०॥
बोली रंग बढायवे, रंगदेवि श्री बैन।
अहो प्राण जीवन प्रिये, श्रीललिते सुख दैन ॥३१॥
गोपेश्वर मन भरत हैं, प्रश्न चिह्न दरसाय।
प्रगट संक बस करत नहि, उमगि रहत सकुचाय ॥३२॥
सुनि श्रीललिता हरषि हसि, कही अरी मम प्राण।
पूछौ इनतैं कृपा करि, सकुचि किते दिनमान ॥३३॥
मोहि प्राण तें अधिक प्रिय, कृपापात्र श्री जानि।
इन्हकी संगति पाय कैं, प्रगट भई रसखानि ॥३४॥
कारन या सुख को एइ, परमारथ तन धारि।
परमानंद समुद्र मै, प्रथम दई मड़ारि ॥३५॥
श्री अनुशासन सीस धरि, करिहैं लोक उवार।
छिन छिन इन मन सौख्यता, हम जिय मोद अपार ॥३६॥
अतिसै कृपा विचारि जिय, गोपेश्वर मतिसिंधु।
नय बोले कर जोरि मृदु, जय गुरु आरतबंधु ॥३७॥
महाराज हिय सिंधु रस, अनवधि रत्न अमोल।
दया कृपादिक लहरि परि, तेई निकसत बोल ॥३८॥
जानि परी जन पर कृपा, आपहिं ए भरि पूरि।
सकल मनोरथ सिद्धि मम, भये परसि पग धूरि ॥३९॥
एक चाह मन मै भई, गई किये अनुताप।
बार बार के पूछिवैं, लहै परिश्रम आप ॥४०॥
अर्थ वसै जाके हियें, सो नहि रावत लाज।
हर्ष सोक पर वेदना, तजि निज चाहत काज ॥४१॥
सो भरोस हिय मै सुदृढ़, आप सिंधु रसपूर।
पाय तृषा नहि, मेटई, मूढ़ गवावै मूर ॥४२॥
श्री अनुकंपा और लखि, चित्त ढिठाई आनि।
प्रगट करौं अभिलाष मन, दानि सिरोमनि जानि ॥४३॥

प्रथम सुनी श्री वदन ते, द्वादस सत वर कुंज।
नित्यविहारी जुगल तहं, विहरत आनंद पुंज ॥४४॥
नव सत कुंज विहार सुख, अनवधि सिंधु अपार।
कृपा रावरी सों लह्यौ, सार परम निर्धार ॥४५॥
सेस तीनि सत कुंज जे, जंत्र सुन्यौ षटकोण।
मंडल प्रति वरि नित भयें, पंचासत सुख भोन ॥४६॥
ऋतु अनुकूल विहार तह, आप कह्यौ लघु लेस।
सो उत्कंठा चित्त अति, जान्यौ चहै विसेष ॥४७॥
वस्तु चाह उत्साह रुचि, श्रद्धा प्रीति अभंग।
पेखि दृगन हिय सुख छयो, श्रीललिता अंग अंग ॥४८॥
मंद विहसि बोली वचन, कस न कहौ गुनवंत।
लोभ अधिकता होत दृढ, धन पायें धनवंत ॥४९॥
सुनौ तहां की रीति जो, सुमिरि कहौं श्रीनाम।
नित्यविहारी जुगल जिमि, तहाँ करैं विश्राम ॥५०॥
कियें जथा विवहार जग, नित नूतन अधिकाय।
लेस देस परिवेस हित, स्वल्प कहौं सो गाय ॥५१॥

❖ चौपाई ❖

श्रीइच्छा मन जब जस होई। तहां पदारथ प्रगटै सोई ॥
दिवस निसा ऋतु काल विभागा। रुचि लखि सेवैं करि अनुरागा ॥१॥
जंत्र कोण षट कहि जो गायो। षट ऋतु को तह वास सुहायो ॥
सहचरि तन धरि ते तित रहहीं। दंपति सेवा नित चित चहहीं ॥२॥
जा ऋतु को जो रूप कहावै। तथा भांति सो धाम रचावै ॥
नूतन छिन छिन करैं तयारी। आवन आसा जुगल विहारी ॥३॥
उत्तर भाग अहै जो मंडल। तहां वसैं ऋतुराज अखंडल ॥
समाचार आवन को पावै। तन मन फूलिन हियै समावै ॥४॥
नाना रूप करै निज अंगा। दंपति ज्यौं सुख लहै अभंगा ॥
लता औषधी वृच्छ गुल्म जे। जाति अमित गुन भूरि भरेते ॥५॥
नूतन पल्लव कली सुवन फर। नमित डार भर भूमि गहैं धर ॥
भूमि प्रदेस चित्र मनि छाई। अंकुर उदै फबी हरियाई ॥६॥
ठौर ठौर धारा मधु स्रवहीं। सौरभ गंध दिसा नभ छवहीं ॥
मत्त मलिंद करैं कलगाना। मतवारे द्विज बोलै नाना ॥७॥

सीतल मंद सुगंध समीरा । परसि भरै तन मनमथ पीरा ॥
भरे सरोवर मनि सोपाना । विकसित पद्म जाति गुन नाना ॥८॥
हंसादिक पच्छी सुख विहरैं । जलचर प्रतिध्वनि सुनि सिहरैं ॥
गिरि निर्झर सरि सुभग बहै रस । प्रमदा विहरि विभूषै थल लस ॥९॥
उपवन मध्य सरोवर भारी । मनि रचना करि अधिक सवारी ॥
निरमल नीर भरयौ ता मांहीं । विकसित कंज अनंत सुहांहीं ॥१०॥
चहूँ ओर वन पुष्पित झूमै । जड़ चेतन व्यवहार विलूमै ॥
द्विजगन अलि रवधुनि रमनाई । परम विभूति राजऋतु छाई ॥११॥
तहाँ सरोवर मध्य सुवेदी । रची भूप ऋतु चित्त अखेदी ॥
विस्तृत विविध लसै सोपाना । सची खची सोभित मनि नाना ॥१२॥
तापै कुसुम बिछे सुखकारी । सुखमा पाति युदी अति भारी ॥
मध्य सिंघासन सुवन विविध रचि । ऊपर तन्यो वितान पुष्प खचि ॥१३॥
छरी खरी बहु रंग प्रसूनी । जल प्रतिबिंब पाय दुति दूनी ॥
लसै बसन्ती वसन अली तन । नखसिख भूषन फवे सुवन गन ॥१४॥
छत्र मोर छल चमर आदि जे । सेवा सौंज अनंत कही ते ॥
सकल पुष्पमय रची सवारी । सींचि गंध कर गहे अपारी ॥१५॥
प्रगट किये निज तन बहु रूपा । सकल भाँति सुखप्रद ऋतु भूपा ॥
दंपति दरसन आरति भारी । उत्कंठा अभिलाष अपारी ॥१६॥
मधुरालाप गीत धुनि छावै । भाव हिये अनुराग बढ़ावै ॥
चकित चौंकि चहु ओर निहारै । छिन जुग सत सम बीतत भारै ॥१७॥
जुगल बिहारी जन सुखदानी । भक्त चाह चित सदा बसानी ॥
श्रीइच्छा मन ऐसी कीन्ही । दया दिष्टि ऋतुपति तन दीन्ही ॥१८॥
तीजे पहर सोय जब जागे । सीतल भोग निवरि रस पागे ॥
मो तन हेरि कही हसि प्यारी । ए ललिते सुनु गिरा हमारी ॥१९॥
सब ऋतुराज वसंत कहावै । जड़ चेतन तन नूतन पावै ॥
जल बन भूमि अधिक सोभा भर । गुनद विहार विपिन कुसुमाकर ॥२०॥
पीतम सुनि मन मानी बानी । गुन रस खानि वसंत बखानी ॥
मै दंपति हिय हेतु विचारी । बरनो सुखमा तासु अपारी ॥२१॥
बार बार सिर नै कर जोरी । बिनती भाखी विविधि निहोरी ॥
महाराज सबके मन ऐसी । श्रीइच्छा सर्वोपरि जैसी ॥२२॥

जल थल विपिन विहार निहारैं । अमित भाँति जीवन फल धारैं ॥
जुगल परस्पर लखि मुसुकाने । तथा भाव हमहूँ पहिचाने ॥२३॥
कुसुमाकर धरि जान सरूपा । प्रगट भयो ऋतुराज अनूपा ॥
मृदुल पावड़े सखिन सवारे । दंपति सहचरि मध्य पधारे ॥२४॥
सिंहासन दोउ बैठे सोहै । निरखि वसंत अली मन मोहै ॥
उमगि विमान चल्यौ ता मंडल । उतरिलग्योलखिनिकटविपिन थल ॥२५॥
नित्य विहारी जुगल पेखी वन । आनद लह्यो विशेष हिये तन ॥
सखिन समेत उतरि दोउ प्यारे । विलसनि इच्छा विपिन पधारे ॥२६॥
बिछे सुवन मनि भूमि चीत्र गति । परसत चरन होत मृदुतर अति ॥
अंग वसंती बसन सुहावैं । तथा अली समता तन पावैं ॥२७॥
सघन लता वेली द्रुम गह्वर । भई वसंत कुंज वन श्रीधर ॥
करत विहार जुगल तह आए । लता भवन लखि मोद बढ़ाए ॥२८॥
विष्टर कुसुम बने सुखदाई । बैठे हरखि दोऊ चित चाई ॥
अरस परस मन भई सिगारैं । हमहू तौ हिय सोई विचारैं ॥२९॥
लै लै अली सुवन सब आवैं । भूषन भाँति अनूप रचावैं ॥
करैं सिगार दोऊ रस भीने । अरस परस गुन प्रगट नवीने ॥३०॥
खोलि बाँधि पुनि विहँसि निहारैं । सकै न दृग अरझे निरवारैं ॥
नखसिख भूषि मुकुर लै दोई । लखै लखावैं ध्यावैं सोई ॥३१॥
उमगि उमगि अनुराग अपारैं । अंग अंग सत बार निहारैं ॥
सहचरि हेरि पिये सुख फूलैं । वारि कहै को है हम तूलैं ॥३२॥
नीर पियाय तमोल खवावैं । सुवन गुच्छ कर दै सिर नावैं ॥
बहुरि चले उठि बन घन मांही । निज इच्छा बस जित तित जांहीं ॥३३॥
जे जे पुष्प अधिक मन भावैं । तोरि परस्पर अंग लगावैं ॥
करत विहार अपर विपिन गत । निजमन अलिगन पुंजवत संमत ॥३४॥
आए तहाँ जहाँ सर भारी । पायो हर्ष अनंत निहारी ॥
ताके मध्य सदल सुख सामा । बैठन हेतु रची सुभ ठामा ॥३५॥
दंपति पेखि हिये सचु पायो । अली वसंत चरन सिर नायो ॥
पैठि सरोवर किये विहारा । नीर केलि सुख दियौ अपारा ॥३६॥
निकसि वसन तन धारन कीन्हे । अंग रचाय अली सुख लीन्हे ॥
बेदी मध्य सिंघासन जोई । सकल विभूति राजऋतु सोई ॥३७॥

जुगल विहारी जन सुखदाई । बैठे तापै हिय हुलसाई ॥
अभिमुख सहचरि मुकुर दिखावैं । अंग राग चंदन तन लावैं ॥३८॥
कुसुमाभरन विचित्र सजावैं । नखसिष भूषि हेरि हिय ल्यावैं ॥
दर्पन देखि जुगल सुख पावैं । तन मन वारि अली बलि जावैं ॥३९॥
धूप दीप आचवन कराई । भोजन समै परम सुखदाई ॥
दंपति रुचि अनुकूल कराये । वदन हस्त पद कमल धुवाये । ४०॥
वसन अगौंछि दई मुखवासा । वीरी खात खवावन आसा ॥
अतर समोय पुष्प गुच्छा द्वै । जुगल हस्त दीन्हे तन मन है ॥४१॥
पुष्प थार आरती सवारी । सुवन अंजली दै नैवारी ॥
करि परिदच्छिन दंडप्रनामा । हरख अपार कहैं जुग नामा ॥४२॥
गीत नृत्य दरसाय रिझावैं । तान मान पूरी गति लावैं ॥
जुगल विहारी लखि सुख पावैं । सहचरि जीवन धननिधि भावैं ॥४३॥
नृत्य करै ऋतुराज अली सजि । प्रगटावै निजगुन तन मन लजि ।
हरख अपार लहै मन मांही । वदन विलोकि तृप्ति जिय नाहीं ॥४४॥
दंपति पूर करै जन कामा । बार बार वदै वर वामा ॥
महारास मंडल सुधि करहीं । सहचरि जानि मोद मन भरहीं ॥४५॥
ता मंडल करि विविधि विहारा । आनंद उदधि बहाय अपारा ।
उठन हेत इच्छा रुख देखैं । विगत निमेष चखन छवि पेखैं ॥४६॥
महा विमान सैल हित जोहै । प्रगट भयो दृग गोचर सोहै ॥
उठे परस्पर दै गलबाहीं । सहचरि मंडल मध्य सुहाहीं ॥४७॥
अली चरन रज लै सिर लावैं । परमानंद समुद्र समावैं ॥
दंपति आय सिंघासन राजैं । वरखैं पुष्प बाद्य वर बाजैं ॥४८॥
जय जय धुनि नभ दिसा प्रचारैं । सैल विमान विहार निहारैं ।

सोरठा—यह ऋतुराज विहार, दंपति आनंद सिंधु को ।
लहैं अली सुखसार, जुगल नीर ते मीन जिमि ॥१॥
गोपेश्वर हिय माहि, लव निमेष सुनि गुनि धरै ।
भव बंधन मिटि जाहिं, परि कर मेली होय दृढ़ ॥२॥

◆ चौपाई ◆

परदच्छिन गति आगे चलिकै । मंडल जंत्र कोन मन धरिकै ॥
तहा बसै ग्रीषम ऋतु आली । प्रीति जुगल पद अनवधि पाली ॥१॥

दंपति सुख हित रूप आपनो । जानि समै रुचि तथा थापनो ॥
नाना अंग अनूप रचावै । सकल भांति सोभा भर छावै ॥२॥
आवनि समै विचारि लहै सुख । अंग अंग विकसे मन दृग मुख ॥
जा विधि रचना करै बनाई । अरी सुनौ सब सो मन लाई ॥३॥
बृहत रचै आराम वाटिका । चलै सरित मनि स्वेत घाटिका ॥
दीरघ वृच्छ लगावै ओरैं । सीतल छाह रहै सब गोरैं ॥४॥
तिनके निकट लसैं तरु छोटैं । अपनी जाति सकल गुन मोटैं ॥
वेली लता गुल्म बहु जाती । लगे अनूठी रीति सुहाती ॥५॥
क्यारी पुष्प रंग अन गनती । जो जा निकट प्रभा लखि बनती ॥
सबके अंग विविध मनिमै रचि । देखत तहाँ जात मन दृग खचि ॥६॥
सकल विभूति अंग प्रति सरसै । मनौ जनक सुखमा से दरसै ।
ठौर ठौर जल जंत्र अपारा । मनौ मेघ बरसै रसधारा ॥७॥
अंबर भूमि दिसा लखि भीजी । कूकैं मोर भौर द्विज रीझी ॥
ताके मध्य वेदिका भारी । बनी अमल मनि स्वेत सवारी ॥८॥
तापै रची कुंज सुखमा भर । लगी चंद मनि एक विसदतर ॥
जाल झरोखा काम अपारी । जिन मग आवत त्रिविध बयारी ॥९॥
स्रवै अमीकन आक समादी । मनि स्वभाव ग्रीषम तन साधी ॥
पुष्प वितान चहूँ दिस ताने । झालरि गुच्छ प्रसून झुमाने ॥१०॥
छरी सुवन रंग भरी खरी है । चलि समीर हलि पुष्प लरी है ॥
दर दर जाल सुवन गसि नाना । परदा चित्र प्रसून अमाना ॥११॥
अष्ट गंध वर कलल बनाई । सकल ठौर करि कर्दम ताई ॥
किये घ्राण सीतल तन होवैं । चहूँ ओर सो अतर समोवैं ॥१२॥
कुंज समस्त अमीकन झरहीं । पाय समीर अनत उड़ि परहीं ।
भीतर सेज बिछी सुख रासी । मनौ कला ससि कोटि प्रकासी ॥१३॥
कोमल अवधि सीत सुख परसें । दंपति लहैं मोद जिमि दरसे ।
रचना पुष्प रची अति भारी । भूमि पलंग चहूँ ओर सुधारी ॥१४॥
स्वेत वसन तन धरे सहेली । पुष्पाभरन सकल अंग मेली ।
सीतल जुक्ति रचाय अपारी । सेवा अमित सौंज कर धारी ॥१५॥
बार बार ग्रीषम सब ठौरी । देखत फिरै हुलसि हसि दौरी ।
जुगल विहार हेत रचि कुंजा । सेज निहारि भरै सुख पुंजा ॥१६॥

अति अभिलाष हियें उमगानी । विलसैं दंपति इत छिन आनी ॥
घोर टारि तन मन अकुलाई । सुरति जुगल पद छटा समाई ॥१७॥
नित्यविहारी जुगल पियारे । सखीयन के जीवन दृग तारे ॥
राज भोग भोजन करि राजैं । सहचरि मंडल किये समाजैं ॥१८॥
ग्रीषम आय मिली तिन माहीं । दंपति जिहि उपाय तित जाहीं ॥
सारंग राग अलापि सुनावै । उष्ण भाव ता माहि जनावै ॥१९॥
पिय प्यारी सुनि लखि मुसुकाने । सहचरि सकल हेतु हिय जाने ॥
ग्रीषम निज तन साजि विमाना । कुंज प्रथम कहि तासु समाना ॥२०॥
मनो हिमांचल गुफा सुहाई । रचना पुष्प अनूप रचाई ॥
लखै विमान होहि दृग सीरे । आय लग्यो सो ता थल नीरे ॥२१॥
जान देखि सब ही ललचानी । हस्त जोरि नै विनय बखानी ॥
महाराज आली मन धारैं । नेक आय दृग जान निहारैं ॥२२॥
दंपति जन मन के सुखदाता । सुनि बानी उमगे श्रीगाता ॥
चले सहचरी मंडल गसि कैं । बिमल पांवड़े लटकत लसिकैं ॥२३॥
निरखि विमान वनिक मन आई । श्रीनैनन शीतलता छाई ॥
बैठे सुभग सिंघासन प्यारे । अली सुवन बरषै सुख भारे ॥२४॥
रचना पुष्प विमान अपारी । हिमिगिरि के जनु कंदर भारी ॥
भीतर बैठ लह्यो मुद खानी । बाहिर की गति जात न जानी ॥२५॥
सहचरि दंपति अंग सिंगारैं । हरि चंदन रंग वसन सुधारैं ॥
चंदन भांति अनेक रचावैं । पुष्पाभरन अमित तन लावैं ॥२६॥
वीरी रूप नेह प्रगटावैं । दंपति सो लहि मोद बढ़ावैं ॥
सुवन गुच्छ भरि अतर बनाये । जुगल हस्त दै अति सुख पाये ॥२७॥
तथा सिंगार अली सब सोहैं । अंग अंगजा उभै विमोहैं ॥
गीत नृत्य छायो सुख भारी । मंद मंद गति जान प्रचारी ॥२८॥
सीतल कुंज निकट चलि आयो । श्रीइच्छा लखि उतरि सुहायो ॥
सहचरि जूथ मध्य दोउ प्यारे । विहसि उतरि भीतर पग धारे ॥२९॥
सोभा निरखि हरखि सुख पावैं । जो देखैं दृग अरझि न आवैं ॥
लखत लखावत सहचरि वृन्दा । अरस परस दंपति मुद कंदा ॥३०॥
घूमत आये सैन कुंज जित । ग्रीषम अली रची दंपति हित ॥
ताहि निहारि संभारि बुद्धि मन । लोचन हियो सिरात परम तन ॥३१॥

चहुं ओर फिरि फिरि देखै छवि । अधिक एक ते एक रही फवि ॥
भीतर सेज विलोकी जाई । पेखि जुगल दृग मन ललचाई ॥३२॥
कहौं कहा ताकी रमनाई । दंपति हू जहाँ रहे लुभाई ॥
तापै मोद बढ़ाय विराजे । तकिया मृदुल अली बहु साजे ॥३३॥
गीत विनोद नृत्य रस बातैं । होत परम कौतूहल घातैं ॥
अमिय नीर ते आदि पेय रस । सुरस प्रमादी स्वाद भाव तस ॥३४॥
बार बार ते पान कराये । बीरी अतर सुधारि बिभाये ॥
नींद खुमारी श्री दृग आई । छवि भरि निरखि हियो सहराई ॥३५॥
सिथिल अंग आलस बस दोऊ । थामत झुकि छूटत गहि कोऊ ॥
सहचरि नीकैं सैन कराई । जुगल अंग सेवत सुख पाई ॥३६॥
मंगल निद्रा अधिक निहारी । बिलग होय निरखैं छवि भारी ॥
सेवा सौंज पलंग की जेती । धरी सुधारि निहारि सुतेती ॥३७॥
श्री अंग सिकुरत सीत सरस ते । जानि अधिक सुख बसन परस ते ॥
पट अनुकूल उढ़ायो हसि कै । वंदे चरण सवन सिर खसिकै ॥३८॥
पाछे पगन चले अंग नैनै । जुगल छटा अभि अन्तर लै लै ॥
बाहिर निकसि भईं सब ठाढ़ी । मिली परस्पर अति रुचि बाढ़ी ॥३९॥
ग्रीषम मुख्य अली बहु तिनकैं । प्रीति जुगल पद अतिसै जिनकै ॥
तिनकी मानि सुदृढ़ विश्वासा । उनहू के जिय अनवधि आसा ॥४०॥
सैन पलंग चौकी ते राखो । सेवा समै नीति सब भाखी ॥
जौ लौं हम इत आवै नाहीं । तौ लौं तहाँ न कोऊ जाहीं ॥४१॥
मौन गहैं बैठो दृग हेरौ । शब्द स्वल्प करि जतन निवेरौ ॥
हमहू सब अबहीं आवत हैं । श्रीजू निद्रा सुख पावत हैं ॥४२॥
अस कहि चली सकल हम आदी । निरखि नम्र ह्वै मुख अभिवादी ॥
ताही मंडल बसि कछु वारा । सिद्ध कियो सब तन व्यवहारा ॥४३॥
श्री उठिवे की समय विचारो । निज तन सखियन सजे सवारी ॥
जिमि दंपति लखि दृग सुख पावैं । तैसी भांति अली अग भावैं ॥४४॥
चौकी देत अली जित ग्रीषम । अमित जूथ लै आई तित हम ॥
समाचार तिनते सब सुनि कै । हरैं हरैं धारैं पग गुनिकै ॥४५॥
कुंज लगी विधि सेति ठाढ़ी । दंपति वदन सुधा तिस बाढ़ी ॥
भीतर आहट दिसि श्रुति लाए । मंगल रव श्रवनन पथ पाये ॥४६॥

भोतर गई देखि सुख लूटे। आलस अंग बाल छवि छूटे ॥
अंग सेय दोऊ बैठारे। तकिया साजि मुकुर कर धारे ॥४७॥
श्रीपद कर मुख नीर धुवाये। वसन अंगौछि तिलक रचि लाए ॥
सीतल सकल पदारथ सुखप्रद। नाना रस गुनखानि स्वाद हद ॥४८॥

भोजन किये पेय सुख पाये। श्रीअंग जलज धोय अंगुछाए ॥
मृदुमुख वास मंजु वीरी मुख। खाय खवाय समाय सिंधु सुख ॥४९॥
नखसिख सुवन अभूषन धारे। श्रीकर गुच्छ प्रसून प्रचारे ॥
दर्पन अभिमुख जुगल निहारैं। उमगि हियें छवि लखि बलिहारैं ॥५०॥

सुवन अंजली अष्ट प्रचारी। पुष्प थार नीराजन वारी ॥
दण्डप्रनाम करैं पद परसैं। जय धुनि नाम कहैं सुख सरसैं ॥५१॥
तव दंपति जिय ऐसी आई। करैं अबै जल केलि सुहाई ॥
कुंज निकट औदुम्बन भारी। पूरन शीतल नीर सुखारी ॥५२॥

केशरि आदि सुगन्ध अनेका। डारी तामैं सहित विवेका ॥
विकसित नीरज बहुविधि फूला। सुवन रची सोपान सुकूला ॥५३॥
पुष्पित गुल्म लसैं चहुँ ओरी। भूमि प्रदेश पुष्प मय सारी ॥
मत्त मलिंद पतत्री विहरैं। त्रिधा समीर नीर लै लहरैं ॥५४॥

तैसी लसै चहूँ दिसि बागा। रचना कुंज अनूप विभागा ॥
दंपति उठैं सहचरि संगा। सो थल पेखि मुदित मन अंगा ॥५५॥
विहरत बाग लखत रमनाई। मन प्रसन्नता सब विधि पाई ॥
ता ह्रद पैठि करी जल केली। निरखि छकी सब संग सहेली ॥५६॥
निकसि वसन हरि चंदन रंगा। सजे अली दंपति श्री अंगा ॥
ताके तीर सिंघासन धारयौ। सकल भाँति रचि पुष्प सवारयौ ॥५७॥
दंपति आय तहाँ बैठे हित। सखी सीगारैं मन रुचि लखि तित ॥
अंगराग रचना तन करहीं। सुवनाभरन अंग अंग धरहीं ॥५८॥

नखसिख भूषि निहारैं चित दै। अभिमुख मुकर दिखावैं कर लै ॥
लखि प्रसन्नता तन मन वारैं। दंपति रूप छटा उर धारैं ॥५९॥
श्रीपद हस्त वदन जल धोवैं। वसन पोछि मुखवास समोवैं ॥
पेय पदारथ अति सुखदाई। स्वाद जथारुचि सुरस पियाई ॥६०॥
श्रीअंग धोय अंगौछे पट लै। पुनि सुगंध मुखवास चित्र दै ॥
भीजि हिये वीरी कर देवैं। खात परस्पर लखि सुख लेवैं ॥६१॥

अतर समोय पुष्प गुच्छावर। नै बलिहारि दिये दंपति कर ॥
अष्ट अंजली सुवन सराई। पुष्प थार आरती विभाई ॥६२॥
जय जय धुनि कहि सुवन झरावैं। करैं प्रनाम नाम गुन गावैं ॥
गावत नृत्य करैं मन लाई। दंपति रीझि पेखि सुख छाई ॥६३॥

जुगल भरे अनुराग निहारैं। सहचरि श्रीपद मस्तक धारैं ॥
दंपति मन की वृत्ति बढ़ाई। महारास मंडल सुधि आई ॥६४॥
प्रोषम की सेवा मन धारी। तिहि सनमानि दियो सुख भारी ॥
अली अंगजा मन गति जानी। महाविमान छटा दरसानी ॥६५॥

उतरि लग्यो सो अति सुखदाई। दंपति उठे प्रमोद बढ़ाई ॥
चित्र पावड़े श्रीपग धारैं। अली चहूँ दिसि मंडल भारैं ॥६६॥
जहाँ सिंघासन जाय विराजे। जय धुनि पूरि बजे बहु बाजे ॥
नृत्य गान आलिन के दरसे। मंगल पुष्प चहूँ दिसि बरसे ॥६७॥
ठौर ठौर सब खरी निहारैं। दंपति सैल करैं सुख भारै ॥

दोहा—प्रोषम अली प्रवीन निति, सेवत रुचि अनुकूल।
जुगल तोष पावैं जथा, जतन करै समतूल ॥१॥
गोपेश्वर मन दीजिये, सुनि हठि इन गुन मध्य।
कृपा पात्र श्रीचरन रस, होय सुदृढ़ सो सद्य ॥२॥

❖ चौपाई ❖

आगे परदच्छिन गति चलिये। मंडल कोन जंत्र चख रलिये ॥
तहाँ बसै आली ऋतु पावस। दंपति सेवा मैं जिन थ्यावस ॥१॥
सेवा समै विचारि करै नित। सदा जुगल रुचि नेम गहै चित ॥
समाचार पावै आवन को। निज तन प्रगट करै सावन को ॥२॥
मंडल भूमि हरी लहरावै। इन्द्र वधूजुत सोभा पावै ॥
अमित जाति वन सकल विभूती। प्रगट भई पावस करतूती ॥३॥

घटा घूमि नभ मंडल छाई। दामिनि मध्य छटा चमकाई ॥
गरजै मेघ मंद धुनि प्यारी। वक चातक मयूर छवि भारी ॥४॥
दिन आछत लागत अधियारी। झीनी बूंद परैं हितकारी ॥
गिरि निर्झर सरि पूर तड़ागा। बहै नीर तजि मान विभागा ॥५॥
सघन विपिन सब ठौर पूर जल। मध्य हरित मनि शुभ चित्राचल ॥
अपर जाति मनि सब रंग लागी। भिन्न भिन्न शोभा भर जागी ॥६॥

लता गुल्म वेली द्रुम औषधि । मनिमय अंग परम सुखमावधि ॥
रंग रंग तृन संकुल छाए । वीर वधू द्विज भौंर सुहाए ॥७॥
आयत विपुल उचाई अल्पा । उपर धरा समान सुकल्पा ॥
तहाँ सरोवर अद्भुत भारी । मनि सोपान स्वच्छ छवि कारी ॥८॥
निरमल नीर पूर कमलाकरि । जाति अनंत सुवन विकसित भरि ॥
अलि द्विज भीर करै कौतूहल । दानी द्वार जथा जाचक दल ॥९॥
ताके मध्य बृहत वेदी वर । मनि रचना सुखमा अनवधि घर ॥
घाट अमित सोपान लसै लघु । सोभित ज्यों शृंगार सदन मगु ॥१०॥
रचना पुष्प विचित्र धरा पर । वेदी मध्य अपर वेदी वर ॥
विंसित हस्त लसै चौकोरी । स्वल्प सप्त सोपान लखोरी ॥११॥
पावस तहाँ हिंडोर रचावै । मन प्रवेस ज्यौं त्यौं कछु पावै ॥
डाँड़ो खंभ सिंघासन बानिक । देखत बनै न कहैं प्रमानिक ॥१२॥
रचना कुसुम रची अतिभारी । नग निर्मित अलि द्विज दुतिकारी ॥
पुष्प रचित पत्ती पटपद जे । सुखमा हेत हिंडोर फवे ते ॥१३॥
ऊपर तन्यौ वितान सुवन मय । छरी प्रसून भरी सोभा चय ॥
झालरि फूल झूमका झूमै । मत्त मलिंद बैठि उड़ि घूमै ॥१४॥
सीतल मंद सुगंध बयारी । परसत हिये धीर धन टारी ॥
अरुन वसन सहचरि तन राजैं । नखसिख सुवन अभूषन छाजैं ॥१५॥
छत्र मोर छल चामर आदी । सेवा सौंज अमित प्रतिपादी ॥
सकल पुष्प मय रचे सवारी । जा विधि होहिं जुगल रुचिकारी ॥१६॥
हस्त गहैं सोहैं सब आली । दंपति आवनि दिसि चख घाली ॥
लव निमेष बीतत सम कल्पा । जुगल माधुरी जोव अनल्पा ॥१७॥
भोजन करि निद्रा सुख पागे । शेष दिवस दंपति हित जागे ॥
आहट पाय अली ढिग आई । सेवा सकल समै रुचि भाई ॥१८॥
परमानंद भरे दोउ प्यारे । लसैं सखी चहु दिसि परिवारे ॥
पावस अली गई ता ठाईं । बाहिर कुंज खरी तरकाही ॥१९॥
कौन उपाय रचौं सुखपूरी । दंपति चलव होय हित भूरी ॥
अस विचारि वीना कर लीन्ह्यो । मेघ मलार अलापित कीन्ह्यो ॥२०॥
सो धुनि प्यारी श्रवनन आई । पावस की मूरति उर छाई ॥
पीतम हिय आनंद लह्यो अति । पावस गुन बखान कीन्हें कति ॥२१॥

हमहू ता ऋतु के जस भारे । सो सो भांति बनाय उचारे ॥
दंपति रुख तैसौ उनमानो । हस्त जोरि नय विनय बखानी ॥२२॥
महाराज पावैं श्री द्वारैं । खरी हिये अभिलाखा भारैं ॥
बरखा मुरतिवंत विमाना । कुंज निकट सो आय लगाना ॥२३॥
पिय प्यारी लखि हेतु सवन को । हरखि विहसि मन कियो गवन को ॥
उठे परस्पर दै गलबाँहीं । चले अली मंडल चहु घाहीं ॥२४॥
विमल पावड़े श्रीपद धारैं । बाहिर आय विमान निहारैं ॥
देखि लह्यो मन मोद अपारी । पावस अली होत बलिहारी ॥२५॥
दंपति बैठि सिंघासन सोहैं । बरखा वर पूरन दृग जोहैं ॥
राग नृत्य ता समै सुहाए । करत विनोद चले तह आये ॥२६॥
सो थल देखि परम सुख पायो । पावस बार बार सिर नायो ॥
दंपति उतरि सखी लै संगा । वनविहार सुख लहै अभंगा ॥२७॥
गिरि वन विहरि निकट सर आये । निरखि नैन कौतुक मन छाये ॥
ता सर पैठि करी जल क्रीड़ा । सहचरि संग तथा तजि व्रीड़ा ॥२८॥
भूमि रही बादर अधियारी । मध्य मध्य चपला उजियारी ॥
बहै समीर नीर कन बरषै । जलविहार अनवधि सुख सरसै ॥२९॥
वेदी ता सर मध्य कही जो । रचना जहा हिंडोर लही सो ॥
दंपति निकसि खरे ता ओरी । अंग अंगौछैं अली निहोरी ॥३०॥
अरुन वसन श्रीअंग सजाए । तथा समान सखी तन लाए ॥
मंडल मध्य फिरैं चहुँ फेरैं । सर गिरि वन छवि हुलसित हेरैं ॥३१॥
देखि हिंडोर जुगल ललचाने । श्रीअंबुज दृग अधिक जुड़ाने ॥
भरे मनोरथ दोऊ प्यारे । सिंघासन बैठे सुख भारे ॥३२॥
वृंद जूथ सहचरि सब सोहैं । सौंज सिंगार लिये कर जोहैं ॥
श्रीइच्छा मन दृग रुख पायो । अंगराग श्रीअंग रचायो ॥३३॥
नाना वर्न तिलक तन रचिकै । नखसिख सुवन अभूषन सचि कै ॥
ललित वसन पर जा विधि फबहीं । तैसी भाँति अली मन लभहीं ॥३४॥
मुकुट चंद्रिका पुष्प रचाई । जुगल सीस लगि धन्य कहाई ॥
श्रीअंग सकल निहारि सवारैं । अभिमुख दर्पन जुग लै धारैं ॥३५॥
दंपति पेखि लहैं मुद भारी । सहचरि विमलि जात बलिहारी ॥
श्रीनासा भूषन उतराए । अमिय सुरस रस पान कराये ॥३६॥

जल अचवाय अंगौछे पटलै। सुभ सुगंध मुखवास विहसि दै॥
वीरी परम मनोहर हितमय। दई जुगल श्रीहस्त सकुचि नय ॥३७॥
दंपति खात खवावत सुखनिधि। अली मोद पावत जिय बहु विधि॥
पट भूषन लखि शुभ गति कीन्हे। अतर सुवन गुच्छा कर दीन्हे ॥३८॥
मुकुर दिखाय अष्ट पुष्पांजलि। बहु दिसि ते वरखै हरखै अलि॥
पुष्प थार अति चित्र बनाई। करत आरती पद सिर नाई ॥३९॥
जय जय धुनि मृदु गिरा उचारैं। सुवन वृष्टि करि रूप निहारैं॥
परदच्छिन दै करैं प्रनामा। गावत छवि हग सुमिरत नामा ॥४०॥
निकट आय पद रज सिर धारैं। तन मन प्रान बुद्धि बलि वारैं॥
पावस भूमि रही सब अंगा। प्रीति जुगल पद अमित अभंगा॥४१॥
समै देखि रुचि जानि विचारी। नृत्य गान विधि अतुल प्रचारी॥
ग्राम मूर्छना तान ताल सुर। मेघ मल्लार भार छायो पुर ॥४२॥
हरखि अली हिंडोर झुलावैं। विधि सुखसिंधु लहरि प्रगटावैं॥
कहा कहौं सोभा ता छिन की। जे देखै जानै ते तिनको ॥४३॥
बरखा सफल भई तन धारी। दंपति सहित प्रमोद निहारी॥
पीतम रसिक राय चूड़ामनि। मोद उदधि सब बसैं हिये गनि ॥४४॥
उतरि आय सनमुख भे ठाढ़े। आनद सिंधु चहू दिसि बाढ़े॥
नभ थल दिसा प्रभा झुकि झूमी। सुखमा भार विवस नय दूमी ॥४५॥
पिय पग पटकि लटकि झटकत कर। मंद विहसि गति भरी अगमतर॥
निरखि प्रिया छवि नैन दुरावैं। अहा भाखि बलि हस्त घुमावैं ॥४६॥
कबहुँ डोरि गहि मंद झुलावैं। मुकुट झुकाय नई गति भावैं॥
अरस परस हेरनि हग फेरनि। सर कटाच्छ थिर ह्वै कसि गेरनि ॥४७॥
कसकनि चोट शब्द मुख जानै। वहि विथा संके सुख मानै॥
कही टेरि धुनि मुख श्रीनामा। राधे राधे मम विश्रामा ॥४८॥
सिथल अंग जाने जब आली। लाल गहै चहुँ दिसि सुखशाली॥
लै हिंडोर बैठावैं हँसि हँसि। श्रोजू कर परसत हित लसि लसि ॥४९॥
मिले दोऊ श्रोअंग अंग लगि। निरखि अली सुख रली नेह पगि॥
अतुलित हरष उदधि उमगाने। मूलि झुलाय मोद सरसाने ॥५०॥
अपरंपार भार सुख सागर। कर गहि मान कहै नहि नागर॥
सहचरि जुगलानंद समानी। थाह अथाह न सुरति लहानी ॥५१॥

पावस अली रिझावत नीकैं। पुजवत भाव सकल निज जीकैं॥
दंपति निज जन मान बढ़ावैं। प्रेम नेम अति नेह जनावैं ॥५२॥
सबको करि संतोष सकल विधि। सहचरि मग्न भई आनद निधि॥
अल्प दिवस वेला पहिचानी। महारास हिय सुधि उपजानी ॥५३॥
बृहत विमान सैल हित जोई। प्रगट्यो आय तहा तब सोई॥
निरखि विमान भयो मन हरखा। दंपति उठे परो पग वरषा ॥५४॥
सहचरि मंडल मध्य पधारे। मंजु पावड़े श्रीपग धारे॥
जान सिंघासन बैठे आई। जय जय मंगल धुनि दिसि छाई ॥५५॥
नृत्य गान बाजै बहु जंत्रा। सेवा सौंज गहे अलि तंत्रा॥
फिरत विमान जथारुचि पाये। जन अति मोद लहत हग आये ॥५६॥

दोहा—सेवा पावस की हियै, जो सुमिरै छिन एक।
अधिकारी ता लोक जिमि, होय सु लहै विवेक॥ १॥
गोपेश्वर तन दृढ़ सुफल, तिन्हहीं कीन्ह्यो तात।
नित्यविहारी जुगल पद, मन दीन्ह्यो लहि गात॥ २॥

❖ चौपाई ❖

आगे चलियै परदच्छिन गति। जंत्र कोन मंडल सोभित अति॥
सहचरि शरद बसै ता माही। दंपति सेवा नित चित चाही ॥१॥
पिय प्यारी जा विधि सुख पावैं। अनुपम नई जतन मन भावैं॥
आवन की धुनि सुनि हरखानी। विकसे अंग अधिक विमलानी ॥२॥
निज तन संपति लखि सफलाई। सकल मनोरथ पूरनताई॥
परम रम्य निर्मल मनि स्वेती। सौंज अमित प्रगटित करि तेती ॥३॥
रचना जथा रची मनलाई। कहत जीह मन बुद्धि लजाई॥
पंचम मध्य अहै जो मंडल। सभा कुंज ता बीच अखंडल ॥४॥
खंड कहै नव तासु उचाई। ऊपर गच विस्तृत अधिकाई॥
सो केवल रचि हीरक मनि की। एक शीला सी लागत वनि की ॥५॥
स्वच्छ मृदुल सम भूमि सुहाई। जुगल रीझ हित सरद बनाई॥
मध्य सरोवर ताके जानौ। स्वल्प गभीर बृहत अति मानौ ॥६॥
निर्मल छीर भरयौ ता माहीं। कोर ओर लौं पूर सुहाहीं॥
हीरक मनि निर्मित जलजाता। बिकसित पुष्प तथा संघाता ॥७॥
बेली गुल्म औषधी तीरा। सोभित हीरक मनिमय भीरा॥
हंसादिक द्विज अलि समुदाई। लसैं स्वेत मनि सुखमा छाई ॥८॥

ता सर मध्य वेदिका सोहै। प्रभा विलोकि न मोह सुकोहै ॥
अमल स्वेत मनि दीरघ चौरी। जल ते प्रगट स्वल्प वहुँ ओरी ॥९॥
अतिशय शुभ्र पुष्प ता ऊपर। रचे बिछाय परम सुखमा भर ॥
मध्य सिंघासन विमल स्वेत मनि। जस बैठ्यो मानो सो तन बनि ॥१०॥
शुभ्र मंजु विष्टर वर रचना। तथा गेंदुवा लखि चख वसना।
नभ दिसि उज्जल पुष्प विताना। बीच बीच मनि स्वेत अमाना ॥११॥
होरक मुक्ता सुवन गथानो। झालरि झूमक झूम लगानो ॥
छरी अष्ट मनि स्वेत सुहावैं। शुभ्र सुवन मय चख ललचावैं ॥१२॥
सहचरि अमित लसैं शृंगारी। मनौ स्वेतिमा बहु तनुधारी ॥
सेवा सौंज सकल कर लीन्हे। सरद विभूति प्रगट सब कीन्हे ॥१३॥
ससि मंडल पूरन इंदुलेखा। सरद सहाय विचारि विशेषा ॥
प्रियाचरन नख सुमिरि विकासो। अमल चाँदनो अधिक प्रकासी ॥१४॥
स्रवै अमीकन बहै समीरा। त्रिविधि भाति गति भाव गंभीरा ॥
सोभा सरद लही अति भारी। पाय सहाय चंद परिचारी ॥१५॥
सरदादिक सहचरि तह ठाढ़ी। अनवधि जिय अभिलाषा बाढ़ी ॥
नभ दिसि हेरि हेरि सो ठामा। तन मन दृग चंचल चित वामा ॥१६॥
जपै जुगल आनद निधि नामा। दंपति पद पावै विश्रामा ॥
छिन छिन देह प्रीतिमा छाई। लव निमेष जुग सत सम जाई ॥१७॥
आवन आस पियास अपरिमित। खोजि न लहै गयो धीरज कित ॥
महारास मंडल सुख ठांहीं। नित्यविहारी जुगल सुहांहीं ॥१८॥
बैठे तहां दोउ मुद भारैं। हर्ष पूर सहचरी निहारैं ॥
सकल भांति आनद भर छायो। रास विलास कियो मन भायो ॥१९॥
दंपति हेरि चंद की ओरी। देखि रहे छिन डीठिन मोरी ॥
अरस परस छवि रस मन भीने। बोलत वचन सोइ सुख लीन्हे ॥२०॥
आजु अलौकिक चंद उज्यारी। पीतम कहै प्रिये अति प्यारी।
स्वेत पदारथ याके माहीं। सुखप्रद सुखमा अधिक लहाही ॥२१॥
पाय प्रसंग अली गुन वारी। लखि रुख सोइ बखान्यो भारी ॥
सुनि स्यामा मृदु वचन उचारयौ। समे सुहावत वस्तु निरधारयौ ॥२२॥
सरद निसा राका असरीती। पेखि स्वेत गुन उपजत प्रीती ॥
पिय रुष पाय निहारैं अलिगन। सब तन हेरि प्रिया कीन्हों मन ॥२३॥

शरद सहचरी लिये विमाना। सकल चंद्रमनि मय सुख धामा ॥
दंपति निरखि मोद मन पायो। मंडल ढिग सो लग्यो सुहायो ॥२४॥
शरद अली दंपति पद रजकन। शीश धारि नृत्यत हरषित मन ॥
सब की अति उत्कंठा जानी। उठे जुगल आनद रसखानी ॥२५॥
अलिगन मध्य भये दोउ आवत। मृदुल पावड़े सुख उपजावत ॥
सिंघासन बैठे पिय प्यारी। जय धुनि भनि अली सुवन प्रचारी ॥२६॥
घूमत जान तहां चलि आयो। जहां शरद सुख धाम रचायो ॥
दंपति सहित सनेह निहारैं। रचना पेखि लहैं सुखसारैं ॥२७॥
सर तट जो उपवन मुदकारी। जनु वन तन धरि खरी उज्यारी ॥
क्षीरसरोवर मध्य सुहावै। बानिक वेदी मन ललचावै ॥२८॥
सिंघासन छवि दिसि दृग दीयें। पुनि आवत नहि हठि बल कीयें ॥
फिरत विमान चहूं दिसि सरकैं। उचे उठ तन सुखमा भरकैं ॥२९॥
उज्जलता नाना तन धारी। अनवधि सोभा लसत अपारी ॥
पिय प्यारी लखि अति सुख पावैं। चाह अपरिमित चित उपजावैं ॥३०॥
सर भीतर वेदी परसाई। लग्यो जान श्रीइच्छा पाई ॥
उतरे जुगल सखी मंडल गत। निरखत फिरत चहूं दिसि थल जत ॥३१॥
आनद सिंधु सिंघासन राजे। मंगल मोद हरख बल गाजे ॥
सखी सिंगार सौंज कर लीन्हे। यथायोग्य समयो रुचि चीन्हे ॥३२॥
अष्ट निकट हम सब तब जाई। बिनै सिंगार हेत नय गाई ॥
भ्रूविलास अनुशासन पाई। अंगराग श्रीतन रचि लाई ॥३२॥
स्वेत वसन तन सजे रचाई। उज्जलता उज्जल गति पाई ॥
स्वेत सुवन भूषन रुचिकारी। नखसिख लौं शृंगार सवारी ॥३३॥
मुकुट चंद्रिका स्वेत प्रसूनी। जुगल सीस परसे छवि दूनी ॥
लै दर्पन सनमुख दिखरायो। दंपति निरखि हरख अति पायो ॥३४॥
धूप दीप आचवन कराई। पेय पदारथ जे सुखदायी ॥
जो जामै मिलि गुनप्रद होई। स्वाद अधिक देखत रुचि सोई ॥३६॥
तथा भाति ते पान कराये। परमानंद अली मन छाये।
नीर धोय पोछे पट श्रीतन। दै मुखवास सुगंधित चूरन ॥३७॥
बीरी रचित अनूप दई कर। खाय खवाय लेत आनद भर ॥
भूषन वसन निहारि सवारे। सुवन गुच्छ भरि अतर सुधारे ॥३८॥

जुगल हस्त दै सीस नवायो । अहो भाग्य लखि सखिन मनायो ॥
चौकी स्वेत प्रसून रचाई । तापै हीरक थार धराई ॥३९॥
रचना पुष्प करी ता माहीं । जाहि विलोकत नैन सिराहीं ॥
पुष्पांजली अष्ट नै सारी । सो लै थार आरती वारी ॥४०॥
जय जय धुनि बोलैं सखि हरषैं । चहूँ ओर कुसुमावलि बरषैं ।
जुगल नाम आनंद कदंबा । रटैं जीह हिय सो अवलंबा ॥४१॥
परिदच्छिन करि दंडप्रनामा । श्रीपद परसैं मस्तक वामा ॥
पिय प्यारी अतुलित छवि भारी । नखसिख नैन निहारि सुखारी ॥४२॥
परमानंद उदधि हिय धारैं । बार बार तन बलि बलिहारैं ॥
शरद अली निज भाग्य मनावै । फूली अंगन अंग समावै ॥४३॥
जूथप जूथ अनंत अपारी । द्रढ़ सुख चाहत जुगल बिहारी ॥
जानि समै सब जंत्र मिलाये । नृत्य गान अद्भुत प्रगटाये ॥४४॥
शरद विनै कीन्ही सब पाहीं । कृपा करौ मोपै मन माहीं ॥
तुमरो चरन रेनु बल मोरे । सत्य कहौं निस्चै तृन तोरे ॥४५॥
जो अनुशासन पावौं आजू । पूरन करौं मनोरथ साजू ॥
नृत्य गान करि जुगल रिझावौं । कृपा रावरी सब सुख पावौं ॥४६॥
कह्यौ हरखि संमत हम लीजै । दंपति सुख हित कारज कीजै ॥
परमानद सरद सुनि पायो । तन शृङ्गार अनूप रचायो ॥४७॥
सबकी पाय सहाय अतूला । कहियै काहि शरद समतूला ॥
सब ही संग शरद अंगवाहीं । आवत नवत सिंघासन पाहीं ॥४८॥
श्रीपद सीस परसि लखि आनन । बलि बलि हस्त लगावत कानन ॥
श्र अंबुज दृग कोर निहारी । सुख भरि नै नै चली पछारी ॥४९॥
लागी नृत्य करन गुन भारैं । गान तान गति भेद सभारैं ॥
राका चंद्रछटा अमलाई । सामा सकल श्वेत सुखदाई ॥५०॥
नृत्य करै ऋतु सहचरि सर्दी । को अस धिर न लहै विमर्दी ॥
दंपति हेरि हरखि सुख पावैं । सहचरि बलि नै सुवन झरावैं ॥५१॥
शरदाली जे गुन प्रगटावै । प्रमुदित जुगल पेखि अधिकावैं ॥
करत विनोद गई अति नेरी । जुगल माधुरी भर दृग हेरी ॥५२॥
सिथिल भई अंग अंग थहराने । प्रान अगम सुखसिंधु समाने ॥
गहि लीन्हों सब ओर अलीगन । श्रीपद सीस दियो लै गहि तन ॥५३॥

दंपति नित निज जन सुख चाहैं । सोई दास परम पद लाहैं ॥
दंपति कृपा शरद अति पाई । श्रीमुख सेवा उत्तम गाई ॥५४॥
निज निज करि अभिलाषा पूरी । जुगल रिझाय लहैं सुख भूरी ॥
जुगल विहारी नित्यानंदा । सेवा सब की करि अभिनंदा ॥५५॥
सो थल पेखि चित्त अस आई । घूमि घूमि देखैं मन लाई ॥
चले सहचरी मंडल माहीं । सोभा निरखि नैन ललचाहीं ॥५६॥
ठाम ठाम ठाढ़े ह्वै हेरैं । वचन विलास मोहनी गेरैं ॥
वेदी पयसर विपिन विहारा । सुखमा शरद फबी अनपारा ॥५७॥
प्यारी पीतम सहचरि संगा । करत विहार नेह नव अंगा ॥
उमगे सिंधु परम सुख भारी । लीला विपिन अनूप निहारी ॥५८॥
मध्य भाग ससि आयो देखी । निसा गई जुग जाम विसेखी ॥
शरद रूप लखि सैन विसारी । फिरत विनोद करत पिय प्यारी ॥५९॥
पयसर तीर लता ढिंग ठाढ़े । तोरत पुष्प नेह रस बाढ़े ॥
टूटत नाहि गिरत जे द्वै कर । सिथल अंग श्रीदृग आलस भर ॥६०॥
दंपति श्रीनैनन छवि भारी । लेस जनावत नींद खुमारी ॥
परम निकुंज सैन सुखधामा । करी विनै हम हित विश्रामा ॥६१॥
शरद विमान आय ढिंग लाग्यो । दंपति चढ़े भाग्य अलि जाग्यो ॥
सिंघासन बैठे पिय प्यारी । सखी प्रमोद लहै लखि भारी ॥६२॥
हरखत बरखत पुष्प प्रगावत । जय धुनि करत नृत्य मुद छावत ।
परम निकुंज सैन थल आवत । मग जन जान पेखि सुख पावत ॥६३॥
निति नूतन विधि सरद सुसेवै । दंपति कृपा परम सुख लेवै ॥
धन्य धन्य ते धन्य कहावैं । जे या विधि सेवा मन लावैं ॥६४॥

दोहा—गोपेश्वर सुखसार गुनि, जे सेवा मन देहिं ।
नित्यविहारी जुगल प्रभु, ते निज बस करि लेहिं ॥१॥
नातो आदि अनादि को, स्वामी सेवक दोय ।
प्रभु सेवा सर्वस्व जेहि, दास नाम सुभ सोय ॥२॥

❖ चौपाई ❖

आगे चलि परिदच्छिन कीन्हें । कोन जंत्र मंडल मन दीन्हें ॥
यह पंचम जो मंडल गावैं । हिमऋतु सहचरि वास बतावैं ॥१॥

प्रीति प्रतीति रीति सेवा की। गाय सकै को है जस याकी ॥
प्यारी पीतम हिये बसावै। नित नूतन सेवा मन लावै ॥२॥
सुनै अमिय रस बानी काना। आवनि जुगल मोद लहि नाना ॥
रचना कुंज सवारै नीकी। ज्यौं दंपति सुखप्रद अति जीकी ॥३॥
भीतर पंच कहे जे मंडल। पंचासत वर कुंज समंगल ॥
एक एक मै दस दस गाई। अष्ट दिसा ते अष्ट लखाई ॥४॥
सभा कुंज सो मध्य बखानी। अपर अनौसर करी प्रमानी ॥
कुंज समस्त करी जो रचना। का विधि कहै नैन बिनु रसना ॥५॥
हिमऋतु निज मन कियो विचारा। लघुता सीत करौं उपचारा ॥
उष्ण सुभाव दारु जे गाये। गढ़ि गढ़ि तिनके सदन सुहाये ॥६॥
भूमि भाग लै गच परिजंता। कुंज अंग जे कहे समंता ॥
रचना दारुमयी सब कीन्हीं। देखत उलहै प्रीति नवीनी ॥७॥
तापै रंग विचित्र रचाये। जा ढिग जो अति शोभा पाये ॥
रंग रंग परदा दर लाए। अधिक एक ते एक सुहाए ॥८॥
सभा कुंज रचना अति भारी। रंग दारु निर्मित शुभकारी ॥
मृदु गंभीर बिछौना तूला। तापै विविध वसन अनुकूला ॥९॥
परदा पंच पाँति चहुँ घाहीं। छूटि रहे दर दर के माही ॥
बनिक अनूप शीत मद भंजक। शत्रु समीर दर्प बल गंजक ॥१०॥
चित्र विचित्र लगी छतिवाई। ठौर ठौर गुन रूप सुहाई ॥
मध्य बिछी परिजंक अमूला। विष्टर सुखप्रद मंजुल तूला ॥११॥
ऋतु अनुकूल बसन तस रगा। ताजै बिछे सीत गुन भंगा ॥
तकिया मृदुतर उष्ण द्रव्य भरि। लघु दीरघ ते सेज सबै धरि ॥१२॥
खान पान की वस्तु अनंता। मादक स्वाद सबै गुनवंता ॥
लिए सुगंधि उष्ण गुन होई। सुखप्रद अतर भाति बहु सोई ॥१३॥
से चित किये धरे भरि भाजन। कुंज समस्त उष्णता साजन ॥
नेक वायु निर्गम कहु देखैं। मुदैं जतन बनाय विसेखैं ॥१४॥
सहचरि अंग वसन ते धारैं। रंग उष्णता देत निहारैं ॥
भूषन रेसम के रचि कीन्हें। चित्र विचित्र रंग सब दीन्हें ॥१५॥
बिना सुने नहि परत पिछाने। तिन्हैं देखि मनिमय लघु माने ॥
तैसे सुवन विविध रंग जानौ। शोभा उनते अधिक प्रमानौ ॥१६॥

सहचरि करि सिंगार अस भ्राजैं। श्रीतन हेत सौंज सब साजैं ॥
छींट बसन भूषन जे गाये। तथा सुवन कर गहे सुहाये ॥१७॥
सीत बिनास जतन बहु भाँती। करी करैं लागी चित राती ॥
हिम ऋतु सखी सकोच गहैं मन। जुगल मृदुल अति सीत लहैं तन ॥१८॥
बहुरि विचारि हियैं सुख पावै। निज गुन समुझि प्रमोद बढ़ावै ॥
जौ नहिं सीत होय तन मेरैं। उष्ण पदारथ दूरि निवेरैं ॥१९॥
अमित भांति सुखप्रद जे भोगा। मो ऋतु पाय लहैं संयोगा ॥
भोग वस्तु गुन भोगी दंपति। मो घर आय लहै सुख संपति ॥२०॥
अस विचारि सेवा रुचि बाढ़ी। आवनि आस स्वास भरि गाढ़ी ॥
छिन छिन करै मनोरथ भारी। पुजवौं आजु सकल निरधारी ॥२१॥
दंपति आवनि मन सब चाहैं। सुरति जुगल पद निधि अवगाहैं ॥
दंपति पद सेवन सुख आसा। तिन्है बिहात कल्प सम स्वासा ॥२२॥
इहां सखी सेवैं चित लाये। राजभोग सम यो सुख पाये ॥
भोजन करि बैठे पिय प्यारी। सखियन सेवा सब निर्धारी ॥२३॥
राजभोग आरती बितानी। सखी बिलोकैं हिय हरखानी ॥
नृत्य गान करि जुगल रिझावैं। सकल मनोरथ मन फल पावैं ॥२४॥
हिम ऋतु सखी द्वार पर आई। त्रिविधि समीर बही सुखदाई ॥
सीत उदै ता ठौर लखानो। श्रीतन परस भई मुदखानो ॥२५॥
सकल सहचरी अंग तथाहीं। जानि परी हिमऋतु ढिग आई ॥
प्यारी पीतम इच्छा कीन्ही। ओढ़ैं बसन वृत्ति हम चीन्ही ॥२६॥
रंग गुलाबी बहु गुन वारे। उभे दुसाला हस्त सवारे ॥
पिय प्यारी तिन मंजु उढ़ाये। ते अतिसै दंपति मन भाये ॥२७॥
श्रीमुख भई परम प्रिय बानी। वस्तु न हेतु समै सुखदानी ॥
चली वार ता सीत कहानो। औगुन स्वल्प अमित गुनखानी ॥२८॥
श्रीपीतम गुन सीत बखाने। हम सौ गुन कहि तथा प्रमाने ॥
सुनि सखियन मन ऐसी आई। हिमऋतु भवन आजु सुखदाई ॥२९॥
जौ देखैं दंपति तह राजे। अलंकार हिमि को तन साजे ॥
नैन लाभ अनवधि भटु लीजै। कैसे होय जतन सो कीजै ॥३०॥
हमौ विसाखा नय कर जोरैं। कीन्ही विनै सहेतु निहोरैं ॥
महाराज हिमि ऋतु अलि द्वारैं। खरी हियें अभिलाष अपारैं ॥३१॥

सो चाहत मम सदन पधारैं। सेवा करौं भरौं सुख भारैं॥
जाचक है श्रीद्वारैं आई। कृपा रावरी चित्त बसाई॥३२॥
श्रीजू सबके मन की जानी। भ्रू विलास लखि हम हरखानी॥
आली हिमि विमान सुख रूपा। लै आई सजि समै अनूपा॥३३॥
जो रचना निज मंडल कीन्ही। सो सब जान दिखाई दीन्ही॥
मध्य भूमिका कुंज जान सो। खरी कनात करी ओरी दो॥३४॥
ऊपर चित्र वितान तनायो। पेखि नैन मन सबन पगायो॥
मंजु पावड़े तूल वसन रचि। सीत विनास उपाय करी सचि॥३५॥
अलि मंडल गत जुगल पधारे। छिन छिन श्रीतन वसन सवारे॥
आय जान बैठे सिंघासन। लेस विसेष प्रवेसव तासन।३६॥
सो मंदर कंदर सी लागै। बहुल प्रकास बनिक मन पागै।
गीत वाद्य अलि नृत्य रिझावैं। जान चढ़े दंपति सुख आवैं॥३७॥
हिमि ऋतु अली कुंज निकटाए। सीत भंग बहु जतन सुहाए॥
मध्य सभा जो कुंज रचाई। लागयो तहा विमान सटाई॥३८॥
कुंज विमान कनात लगाई। शीत वात करि जतन मिटाई॥
वसन तूल पावड़े रचाए। मृदु गंभीर उष्ण परसाए॥३९॥
उठे परस्पर दै गलबाहीं। मध्य जुगल सहचरि चहु पाहीं॥
मत्त गयंद मराल विमोहत। दंपति चलत चरन गति सोहत॥४०॥
सेज निकट बर पीठ सुहायो। साज समै अनुकूल बनायो॥
तहां विराजे पीतम प्यारी। सहचरि आनद लहत निहारी॥४१॥
हिमि सखि जे रचि राखी सौंजैं। ऋतु अनुकूल अधिक प्रद मौजैं॥
ते सब हमैं दिखाई आनी। अद्भुत पेखत अचरज मानी॥४२॥
अंगराग पीसे सब संगा। जल को नेक न तिन्हैं प्रसंगा॥
कनक सलाका लै जित लावैं। तहा लगे अतिसै छवि पावैं॥४३॥
भूषन सुवन पाट मय देखे। उनते ए कछु सरस विसेखे॥
छींट भांति अद्भुत अति प्यारी। बूटी रंग नैन चित हारी॥४४॥
कोमल सींव उष्ण गुन भारी। सब विधि ऋतु अनुकूल सुधारी॥
अतर सुगंध घ्राण जब आवै। दै गुन उष्ण प्रमोद बढ़ावै॥४५॥
सकल प्रकार देखि सुख पायो। भलैं वीर सेवा मन ल्यायो।
निति नूतन दंपति सुख चाही। सदा भरौ चित इहै उमाही॥४६।

प्रेम सिंधु तेई हिय अहहीं। सेवा रत्न जहा अस रहहीं॥
भयो परस्पर शिष्टाचारा। सखियन आनद लह्यौ अपारा॥४७॥
सेवा सुखद सबन मन धारी। भाव प्रीति रुचि जुक्ति विचारी॥
मौज देखि मन श्रीप(लायो। वदन विलोकि जीव धन पायो॥४८॥
हिमि ऋतु सखी खरी मो पासा। दंपति सेवा निरखन आसा॥
मैं सिर नाय जोरि कर बोली। महाराज नूतन हिमि गोली॥४९॥
सेवा मन अभिलाष बढावै। श्रीइच्छा रुख जौ लखि पावै॥
श्रीजू प्रीति सबन की जानी। मंद हसीं रद छटा लखानी॥५०॥
हेतु पाय आनद भर छायो। सहचरि उर सुख सिंधु उमाह्यौ॥
दै पट मध्य सखी दोउ ओरी। लिये सिंगार सौंज कर सोरी॥५१॥
कोऊ अतर के समै लावैं। रचना वेनी चित्र रचावैं॥
अंगराग सुखौ तन लावैं। वा ते यह सोभा अति पावैं॥५२॥
छींट घांघरौ श्रीकटि लायो। तथा कंचुकी वसन सुहायो॥
भूषन सुवन प्रथम जो गाये। नखसिख श्रीतन तेइ सजायो॥५३॥
उत्तरीय बूटी रंग एकैं। भूमि बदामि भांति विवेकैं॥
समै निहारि उठायो तैसें। सीत नसै सोभा अति जैसें।५४॥
रूमी चित्र रुमाल सुहायो। तापै सो शुभ रीति उढ़ायो॥
स्वेत दुसाला गुनप्रद भारी। ऊपर दियो उढ़ाइ सुधारी॥५५॥
नखसिख निरखि सखी सुख पावैं। मंजु मुकुर सनमुख दिखरावैं॥
श्रीजू दर्पन दिसि चख लावैं। निज प्रतिबिंब निहारि लुभावैं॥५६॥
आदि विसाखा अनवधि आली। लाल सिगारैं अति सुख साली॥
सखी विसाखा माधवि नामा। बैठी हुती उठी सो वामा।५७॥
पट आवरन अटकि ता पीठैं। उचौल्यो, परे पिय डीठे॥
नखसिख यथा सिगारे सखियन। या दिसि अली निहारैं अखियन॥५८॥
अंगराग सूखे अति सोहैं। स्याम शरीर फबे मन मोहैं॥
छींट इजार तथा तन जामा। रंग बदामि भांति ललामा।५९॥
बूटी एक वसन सब केरी। श्रीअंग लहि छवि भई घनेरी॥
गुलानार बंद लंबित लटकैं। बाम ओर लखि चख मन अटकैं॥६०॥
चोरा सीस फब्यो अति नीको। बूटी रंग भांति ताही को॥
गोला पेच सजे अस लागैं। सिमिटि सभगता जनु बनि पागै॥६१॥

भूषन सुवन पाट सुख दाई। अंग अंग अनुपम छवि छाई ॥
रूमी श्री सिर लसै रुमाला। तापै श्वेत अमोल दुसाला ॥६२॥
हस्त पाट मय सुवन विराजै। नखसिख अनवधि सुखमा छाजै ॥
सन्मुख दर्पन सखिन दियो जब। रूप निहारि मोद बाढ्यौ तब ॥६३॥

ताही छिन माधवि तन लगिकै। मध्या वरन ऊच भौ ठगि कै ॥
श्रीजू हंसत हंसी सब आली। ता दिसि तथा अधिक वनमाली ॥६४॥
समै अनौसर परदा छूट्यौ। हास विनोद परम सुख लूट्यौ ॥
अरस परस लखि छवि उर ल्यावैं। रूप सिंधु धसि अवधि न पावैं ॥६५॥

अंग अंग माधुरी निहारैं। दंपति रीझि विहसि बलिहारैं ॥
सहचरि सुखसागर अवगाहैं। दृग छवि हेरत हियो उमाहैं ॥६६॥
हिमि ऋतु आली जो मुद पायो। जानत सोई जासु उर आयो ॥
आली हिमि कीन्हौ उनमाना। सेवा सुख दसमै परिमाना ॥६७॥

जे भोजन हित वस्तु बनाई। ते सब आनि हमै दिखराई ॥
मादक पाक अनेक बनाए। वरन विचित्र स्वाद अधिकाये ॥६८॥
गुन रसखानि समै सुखदायक। देखत अतिरुच हिय उपजायक ॥
मेवा अमित पक्व घृत कीन्हे। लवन मिष्ट रस भेद नवीने ॥६९॥

वस्तु अनंत समै अनुसारी। लखि रुचि गुनप्रद रची अपारी ॥
रस पीवन के मादक नाना। नीर आदि गुन स्वाद अमाना ॥७०॥
मिश्रित सकल सुगंधि अनूपम। भोगी भोग्य जोग्यता इत सम ॥
वीरी अतर पुष्प विधि न्यारी। समै सुहावन चख मन प्यारी ॥७१॥

देखि पदारथ हम हरषानी। हिमि सेवा हिय गुनि सुख मानी ॥
बहुरि निहारि प्रिया पीतम छवि। भाति अनूपम आजु रहे फवि ॥७२॥
हिमि जिय अति अभिलाषा जोई। चरन वंदि नय गाई सोई ॥
महाराज आली हिमि असमन। अति करि कृपा होय कछु भोजन ॥७३॥

पूरी करैं सदा जन आसा। भ्रू संकेत भई मृदु हाँसा ॥
जानि सहचरी तन मन भीनो। सपदि जतन भोजन को कीन्ही ॥७४॥
दीरघ चौकी पर जुग थारा। भरे कटोरा धरे अपारा ॥
पान करन के रस जे गाये। गंगाजली स्वल्प जे भाये ॥७५॥

लिये हस्त ठाढ़ी सब आली। सौंज अपरमिति सुख भर सालो ॥
श्रीनासा भूषन उतराये। धूप दीप आचवन कराये ॥७६॥

चंपकलता संग मिलि मोरे। करवावन भोजन श्री ओरे ॥
रंगदेवी लै। संग सुदेवी। पान करावैं रस श्री सेवी ॥७७॥
संग विसाखा चित्रा लीन्हे। श्रीपीतम दिसि तस विधि कीन्हे ॥
तुंगविद्या इंदुलेखा दोऊ। रस विधि पान करावैं सोऊ ॥७८॥

श्रीमुख ग्रासक बहु मै मेलौं। परम माधुरी भरि हिय झेलौं ॥
चंपकलता देत कबहूं मुख। सो जानत पावत जिय जो सुख ॥७९॥
मध्य मध्य रस पान करावैं। रंगदेवि दूनौ रस पावैं ॥
पिय दिसि ये लै कर मुख देवैं। संग विसाखा चित्रा सेवैं ॥८०॥

अपनो अपनो पारी ग्रासा। देत लखन हित छवि भरि आसा।
पान करावत रस रस पूरी। तुंगविद्या इंदुलेखा मूरी ॥८१॥
मूदैं सकल पदारथ जैसें। सीतल होय न करि विधि तैसें ॥
सद्य लेहिं भाजन मुख देवैं। तथा पेय रसहू विधि सेवैं ॥८२॥

करवावैं भोजन कर अपने। दंपति सीतल हैं नहि सपनै ॥
स्वल्प कलूला जुगल कराये। शुष्क रुमाल वदन अंगु छाये ॥८३॥
थार उठाय शुद्ध विष्टर करि। दई मंजु मुखवास हरख भरि ॥
वीरी परम मनोहर देवैं। समै सुखद सोई विधि सेवैं ॥८४॥

सुवन पाठ ते अतर समोये। देत उष्णता गति कर टोये ॥
जुगल हस्त दीन्हे सुख भारे। नै बलि सहचरि हरखि निहारें ॥८५॥
मुकुर आरसी सनमुख दीन्हा। दंपति पेखि परम मुद लीन्हा ॥
वाद्य मिलाय नृत्ति करि गावैं। सारंग राग अलापि रिझावैं ॥८६॥

हिमिऋतु लखि सेवा निज सदना। प्रमुदित जुगल विलोकत वदना ॥
प्यारी पीतम ता दिसि देखैं। वाके भाग्य धन्य सब लेखैं ॥८७॥

श्रीनैनन मादकता छाई। उष्ण सहाय सकल विधि पाई ॥
वचन सिथल श्री अंग अरसाने। लेत जंभाई पलक झपाने ॥८८॥
गहत परस्पर दोउ सहारे। परसत अंग लहत सुख सारे ॥
ता छिन की सोभा जिन देखो। निज हिय कागद दृढ़तर लेखो ॥८९॥

सहचरि अति निज भाग्य सराहैं। यह सेवा फल छिन छिन चाहैं ॥
श्रीतन हेरि अधिक अरसाई। वेगि जतन हम तबै रचाई ॥९०॥
शनैः शनैः भूषन पट अंग ते। जानि न परे उतारे कब ते ॥
साठो धौत वस्त्र केवल तन। धारि लखी सोभा आनद घन ॥९१॥

थाभि जतन सहचरि चहुँ ओरी। अरस परस भुज गल दै मोरी ॥
घूमत झूमत झुकत धरत पग। चलत सखी बल डगडग मगमग ।९२॥
खुलत नैन अंबुज रतनारे। बहुरि परत पलकैं गुन भारे ॥
गोपेश्वर जिन जबै निहारे। दसा और अब होत सभारे ॥९३॥
हरे हरे सेज्या ढिंग ल्याई। सकल चातुरी प्रगट कराई ॥
जतन जतन दोउ पलंग सुताए। पटुता सफल देखि सुख पाये ॥९४॥
मंजु सूत पट प्रथम उठायो। तापै रूमी रचित सुहायो ॥
चहूँ ओर बैठी हम सेवैं। दंपति अंग परसि सुख लेवैं ॥९५।
श्रीतन श्रम सब भाति मिटाये। निद्रा चिन्ह अधिक सुख छाये ॥
अपर वसन करि जतन उठाये। जथा सीत श्रीतन हित दाये ॥९ ॥
ऋतु अनुकूल पदारथ जेते। सेज निकट रचि राखे तेते ।।
चहुँ ओर फिरि घूमि निहारी। संधि बयारि सभारि निवारी ।९७॥
मौन गहे सब कारज कीन्हें। बाहिर चलब हेत मन दीन्हे ॥
श्रीपद नै नै वंदन करहीं। उलटे चरन मंद गति धरहीं ॥९८॥
एक दिसा लघु परदा टारी। आली सब निकसी तेहि द्वारी ॥
निसरि कनात आड़ ते बाहिर। मिलि इक ठौर भई सखि माहिर ॥९९॥
सो सेवा सुख अनुभव करहीं। वचन विलास होत मुद भरहीं ॥
आली हिमि ऋतु हिय अति प्रीती। दंपति सेवा रुचि परतीती ।१००।
रीति विनीति नीति लखि जाही। चौकी पलंग राखि तह ताही ॥
सावधान करि सबही बातन। बैठौ मौन गहे लघु स्वासन ।१०१।
हम सब निज निज कुंज पधारी। नित्य क्रिया सिगरी निरवारी ॥
दिवस सेष लखि उठिवे विरियाँ।हम निज तन सजि सजि निरवरियाँ१०२
आतुर मन सब ता थल आई। जथा विधान देखि हरखाई ॥
समाचार पूछ्यो तिन ते कस। उन भाष्यौ बैठी जस की तस ।१०३।
लाल अंगरि निद्रा तजि हूँकरि। सो धुनि बाहिर सखी श्रवन परि ॥
अति आनंद लह्यो मन माहीं। ह्वै निसंक भीतर सब जाहीं ।१०४।
अंग सेय आलस करि दूरी। दंपति उठि बैठे सुख भूरी ॥
सनमुख मुकुर धरयौ सखि आनी। पेखि मोद पावत सुखदानी ।१०५।
श्रीपद हस्त वदन ताते जल। धोय अंगौंछे सुष्क वसन भल ॥
मेवा पाक स्वल्प भोजन करि। मादक रस पीये जल हित भरि ।१०६।

पुनि अचवाय दई मुख वासा। दंपति बीरी खात सुवासा ॥
नृत्य गान करि सखी रिझावैं। मन अभिलाष अधिक फल पावैं ।१०७।
मज्जन हित श्रीमन रुख जानी। सेज निकट सो विधि उनमानी ॥
तन मन जतन सवारि न्हवाये। दंपति श्री अंग वसन सजाये ।१०८।
हरिचंदन रंग पट मृदु झोने। श्रीतन फवे पेखि सुख लीन्हे ॥
महारास मंडल सुधि कीन्ही। श्री इच्छा नैनन गति चीन्ही ।१०९।
बृहत विमान सैल हित नित जो। सकल साज पूरित आयो सो ॥
कुंज निकट गसिकै सो लाग्यो। पेखि जुगल सखि मन अनुराग्यो ।११०।
वसन सुवन पावड़े सवारे। अलि मंडल गति जुगल पधारे ॥
जान सिंघासन बैठे सरसैं। जै भनि सखी पुष्प नभ वरषैं ।१११।
अंगराग चंदन शुभ जेते। दंपति अङ्ग रचे सखि तेते ॥
नखसिख स्वेत पुष्प आभरना। रंग विचित्र थाक बहु वरना ।११२।
जुगल सरूप सिंगारे सखियन। तन मन वारि निहारे अखियन ॥
सीतल अमिय नीर सुखदाई। प्यारी प्रीतम हरखि पियाई ।११३।
अरस परस पीवत मुद भारे। दै मुखवास तमोल सभारे ॥
धूप दीप नीराजन वारी। पुष्पांजली वृष्टि भइ भारी ।११४।
शीतल मंद सुगंध बयारी। ह्वै अनुकूल वही मुदकारी ॥
हिमऋतु सखी सदन गत प्यारे। सेये उष्ण पदारथ सारे ।११५।
सेवैं शीतलता मन भाई। तथा सकल तस बनी उपाई ॥
नृत्य गान मंगल धुनि छाई। कोटिन जान मिले तहँ आई ।११६।
हिमि ऋतु सखी अमित गुनखानी। बिदा करी दंपति सनमानी ॥
जुगल स्वरूप हेरि हिय धरि कै। चली अली पद वंद्य सुमिरि कैं ।११७।

दोहा—हिमऋतु सेवा करि सकल, किये मनोरथ पूर।
सर्वोपरि ते धन्य जिन्ह, चीन्ही सेवा मूर ॥१॥
नारि कहावै पतिव्रता, पतिसेवा चित दूर।
मांग भरै सिंदूर हसि, फल पावै दृढ़ धूरि ॥२॥
गोपेश्वर हिय मै गुनौ, सेवा पदप्रद ऐन।
द्रव्य समेटै सो धनी, होत नहीं वकि बैन ॥३॥

◆ चौपाई ◆

कोन जन्त्र गत षष्ठम मंडल। आगे चलि देखिय चख मंगल ॥
सकल भीति संपति सुखखानी। को पावै कहि अंत बखानी ॥१॥

जहाँ सिसिर ऋतु सहचरि बासा । निति नूतन सेवा रुचि प्यासा ॥
छिन छिन मन गुनि सोइ बिभावैं । दंपति जा विधि अति सुख पावैं ॥२॥
एक समै सुनि सुखनिधि बानी । रोम रोम विकसित हरखानी ॥
जुगल बिहारी आवत मो घर । दीनदयाल प्रनत आरत हर ॥३॥
धन्य भाग्य अतिसै मम भारी । होंहि सफल दृग जुगल बिहारी ॥
दारुन सीत अंग मम जो है । करौ सुखद सब भाँतिन सोहै ॥४॥
उष्ण जाति जे दारु सुहाए । गढ़ि गढ़ि सुक्षम अंग बनाए ॥
उष्ण गंध कस्तूरी आदिक । कलल किये दै अतर प्रमादिक ॥५॥
रूमी बसन उष्ण गुन भारे । बोरि बोरि ता मध्य सवारे ॥
कुंज हेत जे काठ रचाये । ए पट तिन ऊपर लपटाये ॥६॥
रचना चित्र विचित्र रचाई । निरखि नैन मन अरझि लुभाई ॥
ते सब जोरि कुंज रचना करि । मंडल सकल तथा विधि गुन भरि ॥७॥
विष्टर भूमि वियत आवरना । पंजर इव मंडल तन वरना ॥
एक द्वार ताकी बहु जतना । स्वल्प समीर न पावै धसना ॥८॥
भीतर सभा मध्य वर कुंजा । सीत विनास जतन करि पुंजा ॥
सामा जे पूरव कहि गाई । ते इत घटना अमित सुहाई ॥९॥
रूमी बसन उष्ण रस बोरे । चित्र विचित्र लेत चित चोरे ॥
दारुन सीत विमर्दनकारी । बनिक अनूप समै गुन भारी ॥१०॥
सप्त पाति परदा लागे तस । एक एक गुन रूप अधिक जस ॥
छतिवाइ देखत मन लरजै । मनौ तुहिन पर निज बल गरजै ॥११॥
मध्य सिंघासन ताके राजै । जाहि बिलोकि तुषार बिलाजै ॥
भूमि बिछौना मृदु गुनदाई । पग परसत गरमी तन छाई ॥१२॥
ठौर ठौर बहु धरी लसंतो । पूरित वह्नि विधूम हसंतो ॥
उष्ण सुगंध द्रव्य गुन केती । चूरन करी धूर हित तेती ॥१३॥
सकल हसंती मै ते डारैं । धूम उठै फैलैं थल सारैं ॥
ज्यौं त्यौं सो संघिन ह्वै निसरै । सीत पलात जात जनु पहरैं ॥१४॥
अंग सखिन शृंगार लसै अस । दारुन सीत शत्रु भयप्रद तस ॥
दंपति सेवा सौंज अपारी । रचो समै अनुकूल विचारी ॥१५॥
उष्ण गंध रस रंग रँगाए । तूल तंतु बहु भांति सुहाए ॥
तिनके भूषन पुष्प रचाये । निरखत नैन लाभ फल पाए ॥१६॥

तैसे बसन तूल संगीने । तथा रंग रस गुनप्रद भीने ॥
अंगराग बहु रंग सवारे । सूखे लागि लसैं दुति भारे ॥१७॥
जे जे सेवा वस्तु सुधारी । समै सुहावनि सुखद अपारी ॥
गहे हस्त ठाढ़ी सब आली । सरवस प्रीति जुगल प्रद पाली ॥१८॥
आवनि आसा छिन छिन चाहैं । दंपति सेवा चित्त उमाहैं ॥
बाहिर कुंज कनात घिराई । ऊपर बृहत बितान सटाई ॥१९॥
चहूँ ओर द्रुम जाति लगी जे । जथा कुंज तेहि भांति सजी ते ॥
औदुंबन तिन माहि कितेऊ । तप्त नीरजुत धूम सु तेऊ ॥२०॥
कितनी ठौर भूमि झर निकसै । वह्नि कला सेवा हित विकसै ॥
रची उपाय जतन सब तपनी । देखि विभूति सिसिर सखि अपनी ॥२१॥
दारुन सीत अंग निज जान्यो । स्वल्प संक जिय मै कछु आन्यो ॥
अति सुकुमार जुगल प्रभु मेरे । जौ कहुँ मम सुभाव दिसि हेरे ॥२२॥
तौ आवन दुर्घट मो सदना । ऐसे समुझि शुष्क भौ वदना ॥
वृत्ति समेटि विचार उपाई । सेवा सुख विनु दुख अधिकाई ॥२३॥
यह संसै कैसे उर नासै । को सहाय जो मेटै त्रासै ॥
ग्रीषम सखी सुरति जिय आई । चलौ तहां सब कहौं जनाई ॥२४॥
विकल भई तन ता ढिग जाई । मन गत हेतु कह्यौ सब गाई ॥
ग्रीषम कही धीर उर धारौ । प्रापति हित श्रीनाम उचारौ ॥२५॥
श्रीइच्छा सर्वोपरि जानौ । औरन हेतु कछू परिमानौ ॥
इच्छा वश हम सबही रहहीं । कृपा करैं तब सेवा लहहीं ॥२६॥
आजु सुनी मै हूं इक बाता । विपिन विहार भोर जन त्राता ॥
करत फिरत मो थल आवैंगे । मम तन जो सो सुख पावैंगे ॥२७॥
अधिक सीत जौ इच्छा देखौं । करौं सहाइ तुम्हार विसेखौं ॥
यह सुनि सिसिर चित्त हरषानी । निज गृह चली वंद्य जुग पानी ॥२८॥
भोर विहार करत श्री जाना । ग्रीषम सदन आय नियराना ॥
कछु प्रस्वेद उष्ण लघुताई । श्रीतन ठाम सुभाव जनाई ॥२९॥
ग्रीषम सुधि पाई द्रुत धाई । चरन वंद नै विनय सुनाई ॥
महाराज सीतल उपचारा । आयसु होय करौं रचि भारा ॥३०॥
तातौ अलो सिसिर ऋतु मंडल । निकट जानिये सीत अखंडल ॥
नेक जानि जौ ता दिसि जावै । महाराज सो अति सुख पावै ॥३१॥

श्री इच्छा रुख जानि विमाना । सिसिर भवन ढिग आय लगाना ॥
सोऊ मग जोहत ही ठाढ़ी । जूथ संग अभिलाषा गाढ़ी ॥३२॥
देखि विमान हरख भौ भारी । हुलसि विमलि नै तन मन वारी ॥
दंपति निज जन दृढ़ सुख दानी । अति उत्कंठा ताकी जानी ॥३३॥
हम सबके मन तब अस आई । यह सुख लहै नैन सफलाई ॥
पिय प्यारी इच्छा रुष पाई । विनै भार बहु गाय सुनाई ॥३४॥

जुगल विहारी नित्यानंदा । सो मन धरी बढ़यौ सुख वृंदा ॥
भीतर मंडल जान गयो तब । दारुन सीत सरूप लख्यौ सब ॥३५॥
तासु निवारन विधि अति भारी । कौतुक सहित अपार निहारी ॥
सिसिर विचारत अपने मनमै । मम स्वीकार होय श्रीतन मै ॥३६॥

तब ए सकल पदारथ भारे । सुखप्रद होंहि लगैं अति प्यारे ॥
कर जोरैं दंपति दिसि देखैं । सेवा सुख हिय चाह विसेखैं ॥३७॥
जुगल प्रभू जानी ता मन की । दया दृष्टि दीन्ही दिसि जन की ॥
सिसिर परम निज भाग्य मनायो । सीस जाय श्रीपद परसायो ॥३८॥

सीत प्रवेस भयो श्रीअंगा । सखियन सुख पायो अनभंगा ॥
अद्भुत छवि सो देखन लागी । चख मन वृत्ति अधिक तह पागी ॥३९॥
सी-सी शब्द करैं प्यारी पिय । कंपित अंग सिकोरि वेगि लिय ॥
रणतकार धुनि रद प्रगटानी । रोमावलि ठाढ़ी छवि सानी ॥४०॥

कहत और निकसत कछु बानी । मिलत परस्पर पलक झपानी ॥
लखि परमानंद सहचरि पावैं । गुणद मंजु पट विहसि उठावैं ॥४१॥
सकल उपाय लगी अति प्यारी । बार बार कर वहि निहारी ॥
जे जे सीत निवारन जतना । दंपति सुख पावत लखि रचना ॥४२॥

पूछत सब को भेद जथा जो । सिसिर बतावत हरषि सकल सो ॥
सुनि सुनि दंपति मृदु मुसुकाहीं । सहचरि पद परि बलि बलि जांहीं ॥४३॥
देखत सभा कुंज ढिग आए । पिय प्यारी हग आनद छाए ॥
खुली कनात जान गौ भीतर । सटि लाग्यो थल उभै समी तर ॥४४॥

दंपति उतरि सभा पग धारे । चहूं ओर सहचरि परिवारे ॥
सभाकुंज रचना फिरि देखी । पिय प्यारी मुद लह्यौ विशेषी ॥४५॥
मध्य सिंघासन आय निहारैं । समै सुखद साजित गुन भारैं ॥
बैठे विहसि तहां दोउ प्यारैं । सहचरि लखि नै तन मन वारैं ॥४६॥

सिसिर सहचरी अति सुख पाई । सेवा सौंज सकल तह ल्याई ॥
हम सब जुक्ति अपूरव देखी । सेवा विधि ताकी सत लेखी ॥४७॥
सबके रूप प्रथम जस गाए । तथा भांति के आनि दिखाए ॥
देखि बोध तिनकौ अति कीन्हो । श्रीपद ओर बहुरि चित दीन्हो ॥४८॥

करी विनै कर जोरि सीस नै । सिसिर अली जिन लगैं खरी कै ॥
महाराज याकैं अति लोभा । आजु सिंगार लखौं हग सोभा ॥४९॥
जुगल विहारी जन सुखदाई । चितये मंद अल्प मुसुकाई ॥
लहि संकेत अली हरखानी । मध्या वरन कियो वट आनी ॥५०॥
लागीं करन सिंगार जुगल तन । परमानंद उमाह बढ़्यो मन ॥
रंग लवंग वसन गुन भारे । एकैं भांति सजें अंग सारे ॥५१॥
अंगराग सूखे रचि लाए । नाना वरन उष्ण गुन दाए ॥
पुष्पाभरन सूत निर्मित जे । सभै सुखद श्रीअंग सजे ते ॥५२॥

नखसिख सकल सिंगार सुधार्यौ । उत्तरीय पट मेल विचार्यौ ॥
श्रीमस्तक सो फेरि उठायो । तथा रंग रूमाल सुहायो ॥५३॥
कोर विचित्र छोर छवि जाला । सोइ रजाई रंग रसाला ॥
अंग अंग नीकैं ढकि दीन्हे । लसैं माधुरी छटा नवीने ॥५४॥

जा देखें गरमी तन छावैं । सिसिर आय तस मुकुर दिखावैं ॥
दर्पन पेखि प्रिया मुसुकाहीं । वेस विलोकि मोद मन मांहीं ॥५५॥
श्रीपीतम दिसि करैं सिंगारा । सहचरि आनद लहैं अपारा ॥
रंग लवंग इजार फबी तन । तथा भांति जामा छवि को वन ॥५६॥
पुष्पाभरन जथाविधि गाए । नख सिख अनुपम भांति सजाए ॥
पाग सीस इकवरनी राजै । नैन लहै सुख जीह विलाजै ॥५७॥
ता विधि को रूमाल सुहावै । तैसो मेल रजाई पावै ॥
निरखि निरखि सब अंग सिंगारे । जथा फबैं तेहि रीति सवारे ॥५८॥

दर्पन अमल उष्ण गुन भारी । सनमुख सहचरि दियो सवारी ॥
बार बार पिय ता मधि पेखैं । सिसिर सिंगार अधिक सुख लेखैं ॥५९॥
चंद्रकला मृगनैनी सोऊ । चंपकलता सखी ए दोऊ ॥
जो पट मध्य छोर दोउ ओरी । थांमें खरी हस्त सुख बोरी ॥६०॥

सीत विवस करतें पट छूट्यौ । दंपति हँसे सखिन सुख लूट्यौ ॥
पिय प्यारी छवि हेरि परस्पर । इक टक रहे न नैन पलक पर ॥६१॥

आनद सिंधु झकोरैं आली । छिन छिन याही रस की पाली ॥
सीत भराव लखैं प्यारी पिय । ऐसो जतन तऊ व्यापत हिय ॥६२॥
अग्नि हसंती धूप अधिक भरि । संधि समीर विमुद्रित सब करि ॥
बाहिर जतन नवीन कराई । सीत विघात उपाय रचाई । ६३॥
सकल ठौर सहचरी प्रवीना । सावधान तन मन ह्वै लीना ॥
उपाचार नाना विधि करहीं । सेवा समै सुखद मन धरहीं ॥६४॥
विनै करी भोजन हित लाई । जथा सीत हिय की सब जाई ॥
मोदक मेवा पाक अनेका । तथा पेय रस रचित विवेका ॥६५॥
मादक पुष्ट उष्ण गुन भारे । सकल स्वाद मय किये अपारे ॥
धूप दीप आचवन कराई । श्रीनासा भूषन उतराई ॥६६॥
उभै थार कर सखिन धराये । पिय प्यारी दिसि बिलग सुहाये ॥
रंगदेवि सुदेवी दोऊ । तुंगविद्या इंदुलेखा सोऊ ॥६७॥
ए बैठी भोजन करवावैं । हम रस पेय सुरीति पिवावैं ॥
सकल पदारथ मुद्रित कीन्हे । परम जतन आली कर लीन्हे ॥६८॥
थार मध्य जे धरे कटोरे । देत पदारथ थोरे थोरे ॥
सखी वेगि कर कवल बनावैं । सीत विशेष न परसन पावैं ॥६९॥
दंपति मुख रुख लहि नय देवैं । परमानंद छटा छवि लेवैं ॥
मादक स्वाद अमित गुन भारे । समै सुखद रस रूप अपारे ॥७०॥
मध्य मध्य ते पान करावैं । जे अपनौ गुन वेगि जनावैं ॥
आली सब सागर सुख मगना । प्यारी पीतम लखि दुतिवदना ॥७१॥
भोजन रुचि अनुकूल कराए । सिसिर समै दंपति मुद पाए ॥
स्वल्प नीर आचवन कराई । वसन शुष्क श्रीअंग अंगुछाई ॥७२॥
द्रव्य सुगंध उष्ण गुनवारी । ते दीन्ही मुखवास सुधारी ।
वारी सुभग समै रुचिकारी । खात खवावत प्रीतम प्यारी ॥७३॥
पुष्पसूत के अतर भिगाये । देत उष्ण गुन लखत सुहाये ॥
दंपति लै श्रीनासा लावैं । पाय सुगंध मोद मन छावैं ॥७४॥
सहचरि मन दै अंग निहारैं । मूंदि सकल तन पट छवि भारैं ॥
चहूँ ओर फिरि फिरि अलि देखैं । सीत निवारक जतन विसेखैं ॥७५॥
सनमुख लै दर्पन दिखरावैं । जाहि विलोकि उष्ण गुन छावैं ॥
उष्ण अतर करपूर विमेलो । जुदो जुदी धरि थार सुढेलो ॥७६॥

तैसे सुवन मध्य रचि लाए । दीपक जोग कपूर जगाए ॥
तेई पुष्प अंजलि भरि सारैं । नम्रमई नीराजन वारैं ॥७७॥
दंडप्रणाम करैं जय बोलैं । पद परसैं परिदच्छिन डोलैं ॥
अभिमुख ठाढ़ी ह्वै छवि देखैं । जीवन धन्य भाग्य निज लेखैं ॥७८॥
वाद्य मिलाय नृत्य प्रगटावैं । दीपक राग रूप दरसावैं ॥
सिसिर करी सेवा बहु जाती । दंपति मुद पायो जेहि भाँती ॥७९॥
श्रीतन मादकता छवि छाई । गोपेश्वर देखत बनि आई ॥
जे जे उष्ण पदारथ भोगा । ते सब सफल सिसिर संजोगा ॥८०॥
ऐसें ता मंडल सुख लीन्हौ । सिसिर मनोरथ पूरन कीन्हौ ॥
आली सिसिर सेय सचु पायो । धन्य अहो निज भाग्य मनायो ॥८१॥
आजु सिंगार भयो या कुञ्जा । सकल प्रकार बढ़्यो मुद पुञ्जा ॥
मादक वस श्रीअंग अरसाने । आली दृष्टि दियें मन जाने ॥८२॥
भई अवार सबै नगिचानी । राजभोग वेला उनमानी ॥
अली विचार करैं उर माहीं । विनती करैं न मन सकुचाहीं ॥८३॥
उष्ण अधिकता गुन प्रगटाने । कण प्रस्वेद वदन झलकाने ॥
अंगरि जंभा तन वसन सुहावैं । समै जानि आली सिर नावैं ॥८४॥
लै रुमाल मृदु करैं बयारी । बिनै सुनावैं चतुर विचारी ॥
महाराज सोवै कछु वारा । श्रीतन आलस सुखद प्रचारा ॥८५॥
सुनि दंपति जिय मै सो आई । चितये जतन जानि सुखदाई ॥
श्रीइच्छा उठिवे की जानी । सखी चहूँ दिसि लगी सयानी ॥८६॥
परम जतन मण्डल मधि कीन्हे । दंपति अङ्ग परसि सुख लीन्हे ॥
मृदुल पांवड़े झुकि पग धारैं । सहचरि परम प्रवीन संभारैं ॥८७॥
बाहिर आय लग्यौ शुभ जाना । शीतल रचना सकल रचाना ॥
मध्य सिंघासन बानिक भारी । तहाँ आय बैठे पिय प्यारी ॥८८॥
सहचरि उर आनद भर छायो । बाहिर चल्यो विमान सुहायो ॥
ता मंडल की सींवा जेती । रचना सीत तहीं लगि तेती ॥८९॥
नाघी अवधि विमान जबै सो । सीत सरूप विलाय तबै गो ॥
श्रीतनहू आलस नहि लेसा । सहे न जात अंग सो वेसा ॥९०॥
वेगि उतारि अपर पट धारे । सीतल विविध किये उपचारे ॥
शीतल मन्द सुगंध बयारी । भयो प्रचार लगी अति प्यारी ॥९१॥

सीतल पुष्प सुगंध अपारे। श्रीतन ते रचि सकल सवारे॥
रचना तथा विमान सुहाई। सो दंपति मन अतिसै भाई॥९२॥
सिसिर सहचरी सकुचत जानी। दंपति बोध कियो मृदु बानी॥
उष्ण पदारथ को जो भोगा। सुखद हमै सो तव संजोगा॥९३॥
तेरे सदन अधिक सुख पायो। भोग पदारथ समै सुहायो॥
अतिसै कृपा प्रभू की जानी। परीचरन जोरे जुग पानी॥९४॥
दान मान दै बिदा कराई। सब ही वंद्य गई हरखाई॥
होत विनोद अमित पथि माही। निरखि जुगल छवि अलि हरखाहीं॥९५॥
राजभोग वर कुंज सुहाई। ता दिसि जान मंद गति जाई॥
अष्ट जाम सेवा रसभीनी। छिन छिन सेवैं अली प्रवीनी॥९६॥

दोहा—गोपेश्वर जा भाँति सब, सेवत ह्वै अनुकूल।
एकै प्रभू प्रसन्नता, राखि हियें सुख मूल॥१॥
षट मंडल की रीति मैं, स्वल्प कही कछु गाय।
प्रभु इच्छा जस होत तस, निति नूतन अधिकाय॥२॥
सेवा सार सँभारि मन, करै प्रभू सुख हेत।
जद्यपि नाथ स्वतन्त्र हैं, ते निज बस करि लेत॥३॥
जितनी जन पर है कृपा, जुगल प्रभू मन माहिं।
सेवक मति विस्तार लघु, तितनो जानत नाहिं॥४॥
ऐसे प्रभु पद कमल रस, मन मलिंद जे होत।
यह चोतैं इक बार जौं, तें सुमिरै सौ पोत॥५॥
श्रीजू मोपै अति कृपा, करी भाग्य मम धन्य।
गोपेश्वर तव रूप लहि, हम सब भए प्रसंन्य॥६॥
बीत्यौ सुखम काल यह, दंपति कथा समेत।
या को कारन एक तुम, प्रगट भयो जिन हेत॥७॥
अनवधि सेवा सिंधु सुख, को कहि पावै पार।
गोपेश्वर ते धन्य मन, जे लव करत सभार॥८॥
प्रश्न तुम्हारे सुखद अति, मंगल मय रसखानि।
कछू अंग उत्तर दियो, जथा परयो मोहि जानि॥९॥
बीज परैं ज्यौं सुथल मैं, बाढ़ै एक अनंत।
त्यौं उत्तर जस हिय लहै, तथा रूप दरसंत॥१०॥

नेम प्रेम धृति नीति मति, श्रद्धा प्रीति प्रतीति।
लागि चाह अनुराग दृढ़, तव उर लसै विनीति॥११॥
सांत दांत गुण विजयता, वर विज्ञान विचार।
भक्ति विरति श्री कृपा फल, सो तव तन शुभ सार॥१२॥
ऐसे तन संजोग तें, जस पावै सब कोय।
आनद वृद्धि अपार हित, छिन छिन सौ गुन होय॥१३॥
गाय गाय सब थकि रहैं, लह्यौ न काहूँ अंत।
ऐसी महिमा नित नई, जिनकी सदा अनंत॥१४॥
तिन श्रीप्रभु की जो कृपा, फल ह्वै प्रगटी आय।
तात तुम्हारो रूप लो, का विधि जान्यो जाय॥१५॥
यह सुख सब श्रीकृपा तें, मोहि भयो प्रिय प्रान।
जुगल विहारी सेय पद, पाए तुम फल दान॥१६॥
मम हिय आरति जो भई, जीव लहैं विश्राम।
जन्म तुम्हारो हेतु इहि, जानौ पूरन कांम॥१७॥
यातें प्रीति अपार अति, तुम पर बाढ़त तात।
अब जो भाखौ सो कहैं, आनद प्रद सुभ गात॥१८॥
श्रीआज्ञा बस चराचर, श्री आज्ञा सब ईस।
मोहि जथा आज्ञा भई, तथा करी धरि सीस॥१९॥
सो करिवें अब जतन करि, अपनो इत नौ धर्म।
प्रभु अनुशासन सफल सुख, जीव लहैं सब शर्म॥२०॥
श्रीमुख आज्ञा जो भई, भाखी सकल सुनाय।
श्रीललिता दृग दया भरि, चितई मृदु मुसुकाय॥२१॥
गोपेश्वर के अंग सब, सहित सनेह निहारि।
वत्सलता वस उमग हिय, पूरित लोचन वारि॥२२॥
नित्य विहारी जुगल उर, जो अति करुणा वास।
श्रीललिता मूरति सोई, अनुपम प्रगट प्रकास॥२३॥
श्रीगुरु करुणा रूप लखि, गोपेश्वर मन मोर।
प्रेम नीर पूरन जलद, निरखि लह्यौ मुद ओर॥२४॥
अंग अंग विकसित अधिक, आनद उर न समात।
गद गद स्वर निकसत उमग, वरन सिथल रस बात॥२५॥

❖ चौपाई ❖

गोपेश्वर धरनी धरि माथा । मानि भाग्य निज अधिक सनाथा ॥
बार बार उठि करैं प्रणामा । परैं दंड इव कहि मुख नामा ॥१॥
अहो नाथ जन आरतबंधो । चरन सरन श्रीकरुणासिंधो ॥
ऐसें करत कहत कर जोरैं । सर्वस श्रीपद रज बल मोरैं ॥२॥
श्रीगुरु पद रज मस्तक धरिहौं । छिन छिन उर अनवधि सुख भरि हौं ॥
या विधि जब आये अति नेरैं । पाहि पाहि बानी मुख टेरैं ॥३॥
श्रीललिता करुणा तन सागर । सहसा उठीं नेह उमग्यो भर ॥
वेगि उठाय हियें निज लाए । मनौ तपस्या चिर फल पाए ॥४॥
बड़ी बार लौं लाय रही उर । प्रेम विवस उभ ओर न मुख सुर ॥
ता छिन सब आली ढिग आईं । परमानंद समुद्र समाईं ॥५॥
श्रीललिता बैंठी लै गोदी । सबके दृग जल छाती ओदी ॥
निज कर गोपेश्वर तन परस्यौ । वत्सलता रूपक सब दरस्यौ ॥६॥
नित्यविहारी जुगल नाम वर । अवधि श्रेय सब साधन फल पर ॥
दच्छ श्रवन सो करि उपदेसा । किये अलंकृत निज तन वेसा ॥७॥
धर्म नीति सेवा विधि जेती । सकल रहस्य गुप्त अति तेती ॥
पात्र पाय जग को हित जानी । भेद समस्त कहे सुखदानी ॥८॥
गोपेश्वर मम प्राण सुनौ अस । सेवक हिय अभिलाष होय जस ॥
सो सब प्रभु कैं अंगीकारा । जनहित करैं सकल व्यवहारा ॥९॥
निजानंद वपु जुगलविहारी । सेवक हित लीला विस्तारी ॥
दास हियें जैसी रुचि देखैं । कोटि भाँति सो निज प्रिय लेखैं ॥१०॥
भक्ति रूप सेवा कहि गावैं । भाव समेत अवधि फल पावैं ॥
पंच भाव जे कहे बखानी । प्रभु पद प्रापक अवधि प्रमानी ॥११॥
कछू अंग शृंगार बखान्यौ । यह अति कठिन देश तुम जान्यौ ॥
जाके अधिक प्रिया पद प्रीती । सो या रस की पावे रीती ॥१२॥
सहचरि अंग धरैं नित सेवैं । जुगल माधुरी कौ सुख लेवैं ॥
जो ऐसे अधिकारहि पावै । परम निकुंज धाम सो आवै ॥१३॥
वृंदावन थल सहचरि वासा । आन रूप नहिं लहै निवासा ॥
जड़ चेतन जेते इत जानौ । ते सब सहचरि तन परिमानौ ॥१४॥

जुगलविहारी प्रभु अस इच्छा । सर्वोपरि धारौ सुत सिच्छा ॥
और बात केहि लेखे माहीं । श्यामहु निज तन लखि सकुचाहीं ॥१५॥
इहां निरंतर विहरै प्यारी । प्रीतमहूं तैसी गति धारी ॥
यह सिद्धांत हियें गुनि राखौ । पूरन अधिकारी लखि भाखौ ॥१६॥
अपर भाव जे न्यारि बखाने । प्रभु पद प्रापक संतु प्रमाने ॥
सांत सख्य वात्सल्य सुदासम् । नाथ हृदै नित सुखद विलासम् ॥१७॥
जाको जामै चित्त लुभावैं । सो ता विधि तह मन परिचावैं ॥
प्रभु पद प्रीति सकल सुख मूला । ता बिनु अपर सदा प्रद सूला ॥१८॥
जा ता विधि हरि पद मन लायें । सचु पावैं संसृति बिसराये ॥
सकल भाव ए हरि पद दाई । प्रभु ते अधिक अपर का भाई ॥१९॥
सर्वाराध्य बहुत नहिं अहहीं । कहि कहि सबै अवधि अस लहहीं ॥
जन हिय भाव जथा प्रभु देखैं । तथा होय सुख लहै विसेखैं ॥२०॥
सेवक रुचि अनुकूल सदा हरि । प्रगट होंहि सब दिन तस तन धरि ॥
यामै लहियैं बहुत प्रमाना । बूंद रूप सागर पहिचाना ॥२१॥
कह्यौ भाव शृंगार जथामति । अपर न्यारि की जतन सुनौ जति ॥
ए तीनों मंडल शृंगारा । अपर भाव नहि लहै प्रचारा ॥२२॥
ह्यांते निकसै बाहिर जमुना । पैले तोर सकल दुख समना ॥
बसै चतुर मंडल अति भारी । संपति शोभा छटा अपारी ॥२३॥
एक एक मण्डल की रूपा । लहै न अन्तकाल कहि जूपा ॥
जमुना निकट लसै जो मंडल । बालकेलि प्रभु करैं अखंडल ॥२४॥
सख्य ठाम ताके जो आगे । सखा संग क्रीड़ा हरि पागैं ॥
दास बसैं जा ठौर अमाना । सो मंडल आगें परिमाना ॥२५॥
सेव्य प्रभू सेवक जन दासा । जथा भाव तस लहै विलासा ॥
प्रभु सुखदाई ए सब जानौ । उभै परस्पर भर मुद मानौ ॥२६॥
मुख्य धर्म जीवन कर एहा । सब तजि प्रभु पद बांधै नेहा ॥
हरिपद प्रेम अवधि संसारा । ता बिनु मिटै न कष्ट अपारा ॥२७॥
भरत खंड जब नर तन होई । अवसर इन बातन कर सोई ॥
दृढ़ संमत सबकी अस जानौ । हरि श्रुति संत बचन परिमानौ ॥२८॥
विषय भोग भुगतै सब ठाहीं । यह संजोग बनत कहुं नाहीं ॥
भरत खण्ड शुचि मनुज शरीरा । आयो हस्त अमोलक हीरा ॥२९॥

जगत विकार श्वान सम देखी। सोई पवारत मंद विसेखी ॥
ऐसो भ्रम दृढ़तर उर छायो। अंसहु वस्तु विचारन आयो ॥३०॥
मांटी ईंट अश्मके लायक। तिन्है करत चिंतामणि घायक ॥
नर तन बिना अपर जे देहा। विषय भोग कारज तिन एहा ॥३१॥
असुचि विषैं तैसे तन तेऊ। तिन्है दोष नहि लावत केऊ ॥
नरहरि नातौ इतनौ भारी। लखियै ताको रूप विचारी ॥३२॥

हरि समान जो पदवी पावै। सो का ऐसी ठौर लगावै ॥
ताते सकल दोष भाजन यह। हरि श्रुति संत सदा टेरत कह ॥३३॥
इतनी बड़ी अनय जो करई। कहो निरय सो काहे न परई ॥
ऐसी दशा देखि दुख लागे। हा धिक मूढ़न प्रभु पद पागै ॥३४॥

हम सम सुखी अपर नहि अहई। यह चिंता नितप्रति चित रहई ॥
सो उपकार तात तुम करहू। श्रीआज्ञा निज मस्तक धरहू ॥३५॥
दया विवश मैं विनती कीन्ही। श्रीजू मोहि बड़ाई दीन्ही ॥
होहु जाय भवसागर सेतू। जन्म तुम्हार तात एहि हेतू ॥३६॥
धर्म हानि जबहीं प्रभु देखैं। सीदै साधु असुर बल पेखैं ॥
अपनी कला तबै प्रगटावैं। निज पथ थापि कुपथ विघटावैं ॥३७॥

जीव उधार करैं प्रभु आपैं। हरि बिनु मेटि सकै को तापैं ॥
जापैं करैं कृपा अनपारी। ताहि देहिं जस जग हितकारी ॥३८॥
यातें प्रभू तुम्है जस दीन्हौ। मोपै परम अनुग्रह कीन्हौ ॥
प्रभू कृपा सब कारज साधक। सकल अमंगल मेटि विबाधक ॥३९॥
मन मैं संसै कछू न आनौ। श्रीइच्छा सर्वोपरि जानौ ॥
भक्ति भाव उपदेसौ जाई। भरत खंड आरत समुदाई ॥४०॥

मन रुचि देखि जथा अधिकारा। भाखौ तासौं तथा प्रकारा ॥
जीव दुःख नाशन सब धर्मा। अपर न जानौ शुभतर कर्मा ॥४१॥
अति प्रसन्नता प्रभु की जानौ। मेरे वचन सत्य करि मानौ ॥
जो जो मन इच्छा तुम करिहौ। श्रीजू कृपा सर्व सुख भरिहौ ॥४२॥
जे तुमतें लहिहैं उपदेशा। ते बासी ह्वैहैं एहि देशा ॥
हंस कृष्ण संमत सनकादिक। जानत जिन्है सकल ब्रह्मादिक ॥४३॥
तिनतैं प्रीति अधिकतर कीन्ह्यौ। विगत संक सुख लीन्ह्यौ दीन्ह्यौ।
सुनौ हेतु यामैं है जोई। परमानद सिंधु अति सोई ॥४४॥

रंगदेवि ए बैठी जे हैं। संप्रदाय वर थापक ते हैं ॥
निंबारक ऐसो लहि नामा। कीन्ही कला प्रगट गुन धामा ॥४५॥
शनकादिक संमत मन धारी। तिनकी कीरति करी अपारी ॥
अष्ट एक तन हम सब जानौ। शनकादिक निज संमत मानौ ॥४६॥
दोऊ मिलि जीवन सुख दीजै। धर्म सनातन करि जग लीजै ॥
अपर सुनौ सुखदायक बाता। परमानंद भरौ मन ताता ॥४७॥
श्रीवृषभान नंद निधि दोऊ। ब्रजमंडल प्रगटैंगे सोऊ ॥
नित्यविहारी जुगल स्वरूपा। तहाँ पधारेंगे सुख जूपा ॥४८॥

हम सब सहचरि वृन्द अपारी। तहां प्रगट करिहैं तन सारी ॥
जे जे इतै पदारथ देखौ। ह्वै हैं प्रगट तहां ते लेखौ ॥४९॥
तहां आय मिलिहौं प्रिय प्राना। या कारज तुम्ह हीं प्रस्थाना ॥
जे तुम्हरौ मत धारन करिहैं। यथाभाव ते मिलि सुख भरिहैं ॥५०॥
जाके हियें परस यह होई। प्रभु अनुग्रह भाजन सोई ॥
जुगलविहारी प्रभु करुणामय। ते हिय धरो नाम रसना लय ॥५१॥
नाम रूप महिमा अनथाहैं। गावत सबै अंत नहि लाहैं ॥
जो यह रीति कही हम गाई। श्रीइच्छा अनुशासन पाई ॥५२॥
जीवन प्रान परमधन अपनौ। ऐसौ जानि हियै गुनि जपनो ॥
अपर च्यारि ते मंडल गाये। जाते पथि मिलिहैं सुख छाए ॥५३॥
संग तुम्हारे सहचरि जे हैं। जो पूछौगे ते सब कै हैं ॥
ए मम प्राण सुनौ अस बानी। श्रीउठिवे बिरियां नियरानी ॥५४॥
हमै न अब कहिवे अवकासा। समै जानि उपजो मन त्रासा ॥
कहौ वृत्ति मन की अब कैसी। ताकी जतन कीजियै तैसी ॥५५॥

सेवा समुझि रूप उर आयो। उपाराम श्रीललिता पायो ॥
वचन तरंग थभी सुख पाई। रस बरषा करि सबै सिराई ॥५६॥
जै जै धन्य धन्य धुनि पूरी। कुसुमावलि बरषत सुख भूरी ॥
गोपेश्वर उठि सनमुख ठाढ़े। कर जोरैं आनद उर बाढ़े ॥५७॥
बोले वचन प्रेम रस भारे। सुनत श्रवन सब होहि सुखारे ॥
गुरु मूरति निज हित हिय धारी। भक्ति विनै जुत गिरा प्रचारी ॥५८॥
दोहा—कृपासिंधु गुरु रूप श्री, शरनागत जन पाल।
दीन उधारन रीति उर, निसि दिन बसत विसाल ॥१॥

नाथ रावरी कृपा तें, पूरे मम सब काज।
दृढ़ दुर्लभ जो वस्तु अति, दई भरी सुख साज ॥२॥
अब करुणा ऐसी करौ, छिन छिन रुचि अधिकाय।
जतन सिद्धि याकी सबै, केवल आप सहाय ॥३॥
धर्म दास को एक निति, गुरु आज्ञा परिमान।
ताहि किये सुख जस सदा, इष्ट लाभ जग मान ॥४॥
श्रीमुख जो आज्ञा भई, सो मम मस्तक मौर।
जहां राखिये रहब तह, जीवन आपन और ॥५॥

एक रही अभिलाष मन, भाग्य अल्प लखि लाज।
धावत मन ता ओर अति, मो गति श्री महाराज ॥६॥
जुगल विहारी रूप जस, तस देखौं भरि नैन।
चरन कमल रज रावरी, कहा न दीन्ह्यौ चैन ॥७॥
गोपेश्वर के वचन सुनि, श्रीललिता सुनि पाय।
हरखि उमगि अति नेह भरि, बोलीं मृदु मुसुकाय ॥८॥
श्रीआज्ञा ऐसी नही, इनके मन अति चाह।
चितै सबन की ओर हंसि, आली कहा निबाह ॥९॥

ता छिन सुनि सब मौन गहि, लागी करन विचार।
अति करुण जन पर सदा, लह्यौ एक उपचार ॥१०॥
रंग उदधि जिन को हियो, रंगदेवि रसखानि।
जनपालक निति रीति मन, सदा सिद्ध असि बानि ॥११॥
निज पुरुषारथ प्रगट करि, भरि करुणा रस बैन।
कही अहा ललिते सुनौ, जतन कियें सुख ऐन ॥१२॥
यह उपाय मो मन भई, चलिवे हैं श्राठाम।
जालरंध्र ह्वै देखिये, करि लैहैं निज काम ॥१३॥

सोरठा—सुनि पायो अति हर्ष, सकल सभा गद गद भई।
जानि दया उतकर्ष, सब सहचरि तन मन नई ॥१॥
बहुरि कही सुभ बात, विदा करो अब ही भलं।
बढ़ि जैहैं मन गात, सेवा लखि ता थल चले ॥२॥
सुनी गिरा सुख रूप, श्रीललिता सो मन धरो।
आनद लह्यौ अनूप, जतन विदा ता छिन करी ॥३॥

◆ चौपाई ◆

गोपेश्वर जुग रूप सुहाये। वाम दक्ष पूरव जे गाये ॥
इतहैं दोऊ सहचरि वेषा। नारि पुरुष ह्वै हैं त्यहि देसा ॥१॥
नैन सैन करि निकट बुलाए। दै आदर सनमुख बैठाए ॥
निज तन भूषन वस्त्र मगाए। सुवन माल तिन अंग सजाए ॥२॥
धर्म नीति गुण साधु जहा लौं। भक्ति भाव वर अंग तहां लौं ॥
प्रभु पद प्रीति रीति सुखदाई। बार बार कहि हृदै दृढ़ाई ॥३॥

नित्य अनित्य जगत् हरि रूपा। कह्यो ज्ञान वैराग्य अनूपा ॥
च्यारयौं जुग की रीति सुनाई। दिन दिन धर्म छीनता गाई ॥४॥
हरि हरिजन करुणानिधि पूरे। सब जुग जीव करैं दुख दूरे ॥
कलि के जीव कहे अघखानो। अल्प सत्व क्रोधी अभिमानी ॥५॥

जो अधर्म तिहि धर्म बखानै। निज मन रुचि सोई सुभ जानै ॥
देह असुचि केवल मलग्रामा। मानै ताहि सकल सुखधामा ॥६॥
नाते नेह जतन जग नाना। देह हेतु सब करै प्रमाना ॥
सेवै ताहि इष्ट की नाही। ठानि विवाद अपर कछु नाही ॥७॥

पश्वाचार जथारुचि धर्मा। सब समान सत कर्म अकर्मा ॥
लोकसिद्ध परलोक न मानै। नास्तिक भए नसावैं आनै ॥८॥
प्रभू विमुख गति कबहु न पावैं। ते सठ हठि नर्कालय जावैं ॥
तहाँ क्लेश जे भुगतैं भाई। तिनको अंत लहै को गाई ॥९॥
ज्यौं त्यौं कर्म अवधि जौ आवैं। गर्भवास नाना दुख पावैं ॥
पुनि धरि देह आयु लह जेती। तथा बितीत करै सठ तेती ॥१०॥

बहुरि नर्क पुनि गर्भ निवासा। बधे फिरैं दुर आसा पासा ॥
भरतखंड जस कर्म कमावैं। तिनही के फल सब थल पावैं ॥११॥
ऐसी दसा देखि दुख लहियै। तातैं तात बार बहु कहियै ॥
नाम रूप श्री जुगलविहारी। लव निमेष हिय धरै सभारी ॥१२॥

तौ भवसागर लहै उबारा। होहि सुखी दुख मिटै अपारा ॥
ताकी जतन प्रभू तुम कीन्हे। सुख जस हमैं लोक सब दीन्हे ॥१३॥
अब सुत वास लहौ तह जाई। जीव उधार करौ मन लाई ॥
यातें अपर नहीं सतकर्मा। प्रभु आज्ञा पालन निज धर्मा ॥१४॥

जिहि ब्रह्मांड चतुर्मुख है विधि। प्रभु अनुशासन सीस धरै निधि ॥
सप्त द्वीप विभाग धरा जह। सागर सप्त सप्त विधि के तह ॥१५॥
जंबूद्वीप मध्य है जामैं। खंड विभाग कहैं नव तामैं ॥
भरतवर्ष अति उत्तम गावैं। कर्मक्षेत्र सब ताहि बतावैं ॥१६॥

सप्त पुरी पुहुमी अति सूची। तिन हू मैं मथुरा गुन ऊंची ॥
ताके निकट करौ सुखवासा। हिय निति राखि जुगल प्रभु आसा॥१७॥
ए प्रिय प्राण बहुत का कहियै। सदगुन सकल तुम्हैं मैं लहिय ॥
जे बातैं हम गाय सुनाई। तिनको सुमिरन है सुखदाई ॥१८॥
श्रीपद रेणु सकल सुखमूला। जातें देस काल अनुकूला ॥
सो धरि मौलि सिद्धि सब केरी। भव सरिता हूंजै सुत बेरी ॥१९॥

भाग्य उदैकारक सब काला। यह सुहाग पट परम विसाला ॥
श्रीजू मोहि कृपा करि दीन्हा। या सम हित मैं अपर न चीन्हा ॥२०॥
तुम पर मो हिय ममता भारी। लीजै सीस सुमंगल धारी ॥
जा छिन यह निज मस्तक धरिहौ। मो समान सब ही गुन भरिहौ ॥२१॥
गोपेश्वर सिर दियो उठाई। परम सुहाग छटा छवि छाई ॥
बहुरि कही सबके पद वंदौ। जीहा जुगल नाम अभिनंदौ ॥२२॥

इनतें बिदा लहौ सिर नाई। छिन छिन मुद मंगल अधिकाई ॥
हम अष्टन की अष्ट सखी वर। अष्ट अष्ट मैं कही श्रेष्ठतर ॥२३॥
ते जैहैं तुम कह पहुचावन। जिनके नाम लिये जग पावन ॥
रत्नप्रभा माधवि मृगनैनी। तथा रसालिका रसनिधि दैनी ॥२४॥
मंजुमेधा चित्रलेखा सुख सर। कलकंठी कावेरी हित भर ॥
इनके संग अपर बहु जे हैं। पथि के भेद सकल ते कै हैं ॥२५॥
इहाँ सकल द्वादश सत कुंजा। ते दिखाय दैहैं सुख पुंजा ॥
ऐसें सब मंडल दरसाई। विरजा पार तीर लगि जाई ॥२६॥

तुम्ह बिदा करि फिरि इत ऐहैं। समाचार हम तें सब कै हैं ॥
वर विमान सुन्दर गुन भारी। करौ यात्रा बैठि सुखारी ॥२७॥
अबहि याते कहि सब गावैं। बहुरि बोलिबे समै न पावैं ॥
दरसन हेत चलौगे तहवां। सैन करैं श्री जू सुख जहवां ॥२८॥
तहां वचन औशोर कछु नाहीं। बिदा होहुगे नय मन माहीं ॥
श्रीललिता करुणानिधि पूरी। नेह विवस बहु जतन बिसूरी ॥२९॥

बार बार जीवन हित लागी। कही दया अनवधि मन पागी ॥
वायु प्रश्न पायें हिय रसनिधि। वचन तरंग उठे नाना विधि ॥३०॥
थंभै समीर वेग जैसें ही। हियो उदधि निश्चल तैसें ही ॥
वचन प्रवाह अटक जब देखो। जय जय धुनि भइ बहुरि विसेखी॥३१॥
धन्य कहैं कुसुमावलि वरषैं। हिये उछाह उमग अति हरषैं ॥
सेवा प्रीति बढ़ावन हारी। दंपति रूप होय रुचि भारी ॥३२॥

सेव्य कृपा सेवक दृढ़धर्मा। अष्टजाम करिवें जे कर्मा ॥
प्रीति परस्पर अचल सुहाई। स्वामी दास एक समताई ॥३३॥
सकल प्रसंग पुष्ट सब अंगा। सुनत विकार अमित जग भंगा ॥
श्रीललिता हिय गर्त अपारा। जुगल सरूप नीर नित भारा ॥३४॥

सदा उठै माधुर्य्य सुलहरी। वदन तीर प्रसरैं ते ठहरी ॥
श्रवण अंग लहि जस सुख पायो। जानत चित्त जात किमि गायो ॥३५॥
सबहीं अपनो भाग्य सराह्यो। जो अलभ्य दृढ़ लाभ सुपायो ॥
ए माधुर्य्य लहरि उरधरी। गोपेश्वर अति भये सुखारी ॥३६॥

आज्ञा करी प्रमाण सीस धरि। तन मन अंग प्रफुल्लित मुद भरि ॥
आज्ञा प्रथम भई सबके पद। वंदन करौ लाभ एई हद ॥३७॥
गोपेश्वर सो रचो उपाई। करत प्रणाम धरा तन लाई ॥
नमस्कार अनगनती भाव। अस्तुति दीन वचन मुख गावैं ॥३८॥

लहैं मान नैनै ढिग आवैं। भक्ति प्रेमजुत सिर पद लावैं ॥
मंगल विविध आसि का लहहीं। बिदा पदारथ धरि सिर गहहीं ॥३९॥
सबके हियें प्रीति अधिकाई। सो प्रगटो गोपेश्वर पाई ॥
प्राण समान लखै दृग भरि भरि। दोउ हस्त लावत उर धरि धरि ॥४०॥

हिय उमगे रोके नहि रहहीं। गद्गद कंठ नैन जल बहहीं ॥
गरल गाय अनवधि सुख पावत। छूटत जनु सरवस्व गँवावत ॥४१॥
सबही उठि उठि मिलीं परस्पर। सुहृद नेह वस तन मन कातर ॥
सेवा समै नेह इत भारी। आंदोलित मन उभै निहारी ॥४२॥

बड़े कष्ट धीरज उर आन्यौ। सेवा धर्म प्रबल अति जान्यौ ॥
गोपेश्वर के संग सुहाई। दई सखी जे पूरब गाई ॥४३॥
कह्यौ सकल वृत्तांत जनाई। तिन धार्यो उर मस्तक नाई ॥
सबही निज निज तन तब साजे। जूथ वृन्द मिलि रचे समाजे ॥४४॥

चली अली सुखसिंधु थहावत। मंगल सैन कुंज थल आवत ॥
गोपेश्वर मन बुधि गुनि आछें। चले रंगदेवी के पाछें ॥४५॥
तेऊ कुंज निकट झुकि आंई। जा दिसि पांयत सेज सुहाई ॥
जालरंध्र ह्वै जुगल निहारे। अनवधि सिंधु लहै सुख भारे ॥४६॥

गोपेश्वर मस्तक कर धारे। जालरंध्र पथि नैन प्रचारे ॥
नखसिख दंपति रूप निहारैं। अंग अंग दृढ़ टरैं न टारैं ॥४७॥

नीकै जुगल सरूप निहारे। कछू वार पुनि लै उर धारे ॥
झपै नैन तन दशा भुलानी। सुरति जुगल छवि छटा समानी ॥४८॥
सखियन तबै थांभि बैठारे। चहूँ ओर ते गहें सभारै ॥
रंगदेवि जू दशा निहारी। बात हियें गुनि भली बिचारी ॥४९॥

अबहीं इन कहँ लेहु उठाई। धरौ विमान वेगि तुम जाई ॥
नयो प्रेम नहि रीति पिछानें। जानै कहा जगे हठ ठानें ॥५०॥
सहचरि सुनि सो करी उपाई। राखि विमान अनत लै जाई ॥
उभै दण्ड बीते अस रीती। गोपेश्वर तन भई प्रतीती ॥५१॥

सहचरि गोद लिये गहि अंचल। करत बयारि किये पट चंचल ॥
नैन खोलि चितये तन ओरी। रूप छके दृग डीठि न जोरी ॥५२॥
नीकै भई चेतना तन की। देखी रीति भली निज मन की ॥
बहुरि चाह जिय भईं अपारैं। अबकैं पुनि श्रीरूप निहारैं ॥५३॥

विरह विकलता तन मन छाई। उच शब्द बोलै अकुलाई ॥
एहो श्रीरंगदेवी ललिते। कहां कगईं अंग सबै चपलते ॥५४॥
वेगि लेहु मेरी सुधि धाई। दंपति रूप छटा रस प्याई ॥
जान चढ़ी सहचरी प्रवीनी। देखि विरह गति प्रगट नवीनी ॥५५॥

लै विमान अनतैं ठहरायो। तिनकैं हिये विरह दुख छायो ॥
सहचरि कुंज दिखावन लागीं। करैं निरूपन मन अनुरागी ॥५६॥
तिनकी वृत्ति जुगल तन फसि कै। जथा पंक ह्रद दुर्बल धसिकै ॥
चलै न अनत जतन बहु करिकै। चुंबक अद्रि लोह जिमि परिकै ॥५७॥

नित्यविहार धाम कौ रूपा। बड़ी बार लौं सुन्यौ अनूपा ॥
स्रवन चित्त अतिसै सुखदाई। जाहि विलोकि जुगल सुधि आई ॥५८॥
जुगल विहारी प्रिय थल जान्यो। नैन निहारि हियो हुलसान्यो ॥
अहो प्रभू यामै निति विहरैं। उमगत हृदै स्वास लै कहरैं ॥५९॥

लागे पूछन सकल विधाना। समै विहार कृपा अंग नाना ॥
जब जा थल जो लीला होई। आदि अंत लौं पूछौं सोई ॥६०॥
परम प्रवीन अली संग जेहैं। रुचि अनुकूल कहत सब तेहैं ॥
परम निकुंज कुंज द्वादस सत। तहां विहार समै लीला जत ॥६१॥
सर्व अंग परिपुष्ट बखानै। गोपेश्वर सो विधि उर आनै ॥
बाहिर निकसि अपर मंडल लखि। जहां बसैं ललितादि अष्ट सखि ॥६२॥
भये प्रश्न उत्तर बहु जाती। जान्यो सकल रूप जिहि भाती ॥
परमानंद भार उर लहि कै। आगें चले हियैं सो गहिकै ॥६३॥
तीजौ मंडल देख्यौ आई। अमित कोटि सहचरि जह छाई ॥
सेवा सुख अधिकार विलासा। पूंछि श्रवण करि पुजई आसा ॥६४॥
चलत जान जमुना तट आयो। मंडल तीन अंत जो गायो ॥
ताहि देखि अतिसै मन पागे। गोपेश्वर कहिवें अस लागे ॥६५॥
इहां बसैं तेई बड़ भागी। जुगल विहार लखैं अनुरागी ॥
ता थल की पूछी सब रीती। नीकी विधि सुनि करी प्रतीती ॥६६॥
आगें चलत जान जब जान्यौ। मुरकि हेरि तन मन थहरान्यौ ॥

दोहा—जब गोपेश्वर मुरकि चख, देखन लागे धाम।
नित्यविहारी जुगल अति, जो दायक अभिरामा ॥१॥
सुरति भई मन आय सब, तुरित वियोग असह्य ॥
विरह ताप तन मन तपो, सके न चित्त निगृह्य ॥२॥
श्रीगुरु प्रभु आज्ञा प्रबल, लखि जन गति सकुचाय।
जथा कथंचित धीर धरि, उठे उमगि अकुलाय ॥३॥
हस्त जोरि जुग सीस धरि, हिय करि गुरु प्रभु रूप।
गद्गद स्वर जीहा वचन, कहे दीन अनुरूप ॥४॥
आवत एक भरोस दृढ़, नाथ सुभाव विचारि।
जन अघ लखैन काल त्रय, अपनी ओर निहारि ॥५॥

सोरठा—सुधि लीजौ प्रभु मोरि, मोहि न गति दूसर अपर।
महिमा जदपि न थोरि, तौ नेह अति दीन पर ॥१॥
बार बार सिर नाय, ता दिसि दंडप्रणाम करि।
गोपेश्वर उर ल्याय, श्रीगुरु प्रभु मूरति सुधरि ॥२॥
मौन धारि नय अंग, बैठे बहुरि विमान थल।
हिय अनुराग अभंग, बाढ़त नव लव निमिष पल ॥३॥

❖ चौपाई ❖

पुनि विमान गति मंद प्रचारी। चल्यो वियत पथ सुखद सभारी ॥
परयो चतूरथ मंडल डीठी। जाहि निरखि रुचि उपजत मीठी ॥१॥
मंदिर कलस उदै नभ देसा। पेखि लजत रवि अमित निसेसा ॥
सोभा सदन छटा दिसि छाई। बानिक अनुपम सकल सुहाई ॥२॥
या मंडल को एकहु अंगा। कहै चतुर्मुख आयु समंगा ॥
बहुतन धरि धरि वर्नन करई। लहै न अंत लाज नित भरई ॥३॥
या विधि कोसो मंडल पेखी। रचना सदन अनंत असेखी ॥
गोपेश्वर लखि अति अनुरागे। प्रश्न कियो सुख तन मन पागे ॥४॥
अहो सखी मम इष्ट सयानी। कृपा करौ लखि मोरि अयानी ॥
संसै होत कछू मन मोरे। वंदन करि पूँछौ कर जोरें ॥५॥
या मंडल की रीति कहा है। देखत उपजत प्रीति महा है ॥
बास कौन को लीला कैसो। सकल निरूपन कीजै तैसी ॥६॥
रत्न प्रभा तें आदि अष्ट वर। सहचरि तिनकैं संग वृन्द भर ॥
प्रमुदित भई सबै ते अति मन। हँसि चितई गोपेश्वर के तन ॥७॥
रत्नप्रभा बोला मुसुकाई। लै संमत सब को सुखदाई ॥
गोपेश्वर सुनियें मन लाई। जा या मडल रीति सुहाई ॥८॥
श्रीवृषभान बसै या ठामा। कीरति जिनकी हैं वर वामा ॥
धर्म तनातन सो वृष कहिये। ताको भान सकल जहँ लहिये ॥९॥
कीरति तहाँ बसै अति पावनि। जो निति लागत प्रभुहि सुहावनि ॥
इन आधान सबै सुभ कर्मा। जाव लहै करि उत्तम सर्मा ॥१०॥
धर्म सनातन पावन कीरति। प्रभु तें प्रगट भई जुग मूरति ॥
जहाँ धर्म तहाँ कीरति रहई। नारि पुरुष नातौ दृढ़ लहई ॥११॥
ते तन धरि या मंडल बसहीं। सर्वश्रेय मंडल दुति लसहीं ॥
जस महिमा संपति गरुवाई। अनवधि जितनी उत्तमताई ॥१२॥
सब सुख पाय बसै इन द्वारं। छिन छिन सेवत वृत्ति सभारैं ॥
कहौं ईसता कहाँ बखानी। है जितनो गहि सकत न बानी ॥१३॥
कारन इन बातन को जोहै। जातें इत ऐसी दुति सोहै ॥
सो कहतें अति जोहा लाजत। मूपक पीठिन मंदर साजत ॥१४॥
जौ प्रभु आज्ञा ओर निहारैं। तौ मन त्रास होत अनपारे ॥
प्रभु आज्ञा ऐसो करि दीन्ही। पथि संसै करिहौ कहि छीनी ॥१५॥

तुम प्रभु कृपापात्र अति पूरे। सद्गुन सकल बसै तन भूरे ॥
अधिकारी तुम सब विधि भारी। इतनी शक्ति न कथन हमारी ॥१६॥
प्रभु आज्ञा वस जस हम जानै। कछू अग सो गाय बखानै ॥
गोपेश्वर सुनिये मन लाई। प्रभु पद रज बल कहैं लखाई ॥१७॥
श्रीवृषभान संग कीरति वर। बसै सदा या मंडल शुभतर ॥
दिन दिन सुख अनवधि अधिकाई। प्रीति प्रभू पद पूरा पाई ॥१८॥
श्रद्धा नेम प्रेम अनुरागा। भक्ति भाव अतिसै जिय जागा ॥
सेवा रुचि बाढ़ी अति भारी। छिन छिन उमगत चाह अपारी ॥१९॥
भक्तन के पूरैं निति कामा। जुगलविहारी जन विश्रामा ॥
बृहत विमान बैठि दो प्यारे। सहचरि संग लियें गन सारे ॥२०॥
करत विहार फिरत सब ठाईं। निकसे आय सहज या घाईं ॥
प्रभु आगमन सुन्यौ इन काना। उर उमग्यो आनन्द अमाना ॥२१॥
पूजा सौंज सकल रस कीन्हीं। कीरति संग सुखद निज लीन्ही ॥
मंगल गावत आवत दोऊ। साथ समाज तथा विधि सोऊ ॥२२॥
निकट जाय बहु किये प्रणामा। रहे निहारि जुगल छवि धामा ॥
बहुरि धीर धरि चित्त सभारी। पूजा हेतु वृत्ति मन धारी ॥२३॥
भक्ति भाव जुत पूजा कीन्ही। सेवा विधि नीकै जिन चीन्ही ॥
सकल भाँति सुख दियो अपारी। बार बार नै आरति वारी ॥२४॥
दै परिदक्षिन करैं प्रणामा। सुमिरैं जुगल नाम अभिरामा ॥
रहे निहारि अनूपम जोरी। बड़ी बार लौं डीठि न मोरी ॥२५॥
नीकै नखसिख पेखि सरूपा। हियें जुगल छवि धरि अनुरूपा ॥
नैन झपे तन सुधि कछु नाहीं। जुगल स्वरूप लखै उरमाहीं ॥२६॥
उठ्यो विमान भई धुनि भारी। इनहूँ तब दृग पलक उघारी ॥
देखि विमान परे पुहुमी पर। करि प्रणाम ता दिसि जोरे कर ॥२७॥
आए सदन मगन सुख सागर। हिय हठि धसे नागरी नागर ॥
सुरति जुगल छवि छटा समानी। तथा भाँति मुख निकसत बानी ॥२८॥
कहै सुनै दोऊ अस बाता। अहो जुगल प्रभु जनि परित्राता ॥
दोऊ हिये अभिलाष बढ़ावैं। बार बार कर जोरि मनावैं ॥२९॥
दोऊ एक संमत बहरावैं। जा विधि प्रभु सेवा मन लावैं ॥
दीनदयाल दया जो करहीं। तौ प्रभु जुगल बाल तन धरहीं ॥३०॥

हमरे सदन करैं शिशु लीला। होय हमारे हिय सम लीला॥
तौ दिन रैन रहैं गर लायें। सोवैं छिन छिन अति सुख पायें॥३१॥
वात्सल्य दृढ़ भाव नयो हिय। सब छिन ईहै वृत्ति छाई जिय॥
ऐसे इनकैं निसदिन जाहीं। तन मन सुरति आन कछु नाहीं॥३२॥
इनके सदन जथा प्रभु आये। सो आगें कहिहैं सुखदाए॥
अब सुनिये बानी रससानी। सकल भाँति मंगल मुदखानी॥३३॥
कछू दूरि आगे दृग दीजैं। परम अनूप प्रभा लखि लीजै॥
जो देखत हौं मंदिर भारी। उदै कलस फैली उजियारी। ३४॥
कोटिन भवन सकल दुति पूरे। मणि समूह लागे गुन भूरे॥
रचना कहैं न अंत लहाई। अधिक एक तें एक सुहाई॥३५॥
या मंडल की पहिलै महिमा। गाय कही हम सब गुन गरिमा॥
शोभासिंधु सकल सुख धामा। सुनियें जिनको इत विश्रामा॥३६॥
श्रीनंद राय जसोदा रानी। परमानंद मोद सुखखानी॥
नंद शब्द को अर्थ प्रमानैं। सदा वृद्धि ऐसो बुध जानै॥३७॥
आ अक्षर जौ पूरव दीजै। आनंद रूप जानि सो लीजै॥
सदा वृद्धि जा आनद केरी। हरि बिन अनत मिलै नहिं हेरी॥३८॥
सब साधन उत्तर फल आनद। संमत सिद्ध सकल अस मानद॥
आनद रस जा थल बढ़वारी। तहाँ चुचातौ जस सहकारी॥३९॥
आलौ वहौ कहौ बरु ओदा। आनद अंग प्रमाण जसोदा॥
आनद रस भोजौ जस जाकौ। कहो रूप सो कहियै काकौ॥४०॥
अमित अंड उपजै सब काला। देखि परै बहु रूप विसाला॥
का जानै पुनि का ह्वै जावैं। नाम रूप कहुँ खोज न पावैं॥४१॥
तौ आनद जस की बढ़वारी। कौन ठौर कहियै निरधारी॥
हरि की कला दोउ ए जानौ। सब दिन वृद्धि विशेष प्रमानौ॥४२॥
प्रभु निज अंग ते ए प्रगटाये। आनद जस ह्वै रूप सुहाए॥
क्रिया एक ही देखी तिनकी। ऐसी रीति करी प्रभु जिन्हकी॥४३॥
नारि पुरुष करि नेह दृढ़ायो। नद जसोदा नाम धरायो॥
धर्म सनातन कीरति जा थल। आनंद जस निति वास तहाँ भल॥४४॥
या मंडल मधि बसैं सुखारे। मंगल मोद नए निति भारे॥
श्रीवृषभान महिषि कीरति हैं। नंदराय तैसें जसुमति हैं॥४५॥

निकट निकट सब दिन ए हरई। प्रीति परस्पर अनवधि लहई॥
इनतें अधिक अधिक ए गुनते। सुख संपत्ति विभूति जस उनतें॥४६॥
अनवधि छिन छिन प्रेमप्रतोती। जुगलविहारी प्रभु पद प्रीती॥
कृपा दुहुन की एक समाना। कारज करै बढ़ै हित नाना॥४७॥
नंद जसोदा संग एक दिन। जमुना निकट गये मंगल छिन॥
मज्जन करि तट बैठे ध्यावैं। जुगल माधुरी को सुख पावैं॥४८॥
ताही समै विमान विहारा। जुगलविहारी करत अपारा॥
चलत विमान परिसि धारा सरि। उभै कूल देखैं जन मुद भरि॥४९॥
विविध भाँति कुसुमावलि वरषैं। निरखि माधुरी तन मन हरषैं॥
नंद जसोदा प्रभु छवि देखी। निज हिय पट राखी हग लेखी॥५०॥
ता छिन ते कछु अपर न भावै। बार बार सोई सुधि आवै॥
खान पान सुख भोग विलासा। बिसरि गई बाढ़ी प्रभु प्यासा॥५१॥
चिंता एक हियै उर छाई। सोचि कहैं का करिय उपाई॥
जौ प्रभु दीनबंधु आरतिहर। अंतर्जामी ईश सर्व पर॥५२॥
जन हित प्रभू करै बहु लीला। दास हिये जस देखै शीला।
सदा सनातन ऐसी रीती। समुझि होत सुख विनसत भीती॥५३॥
तौ हमरी अभिलाषा भूरी। जुगल प्रभू करि है दृढ़ पूरी॥
सर्वाराध्य सर्वपर स्वामी। तदपि दास इच्छा अनुगामी॥५४॥
जौ ये सांची सदा कहानी। तौ चित चाह संघ फल दानी॥
जुगल प्रभू बालक तन धारी। शिशु लीला सुखसिंधु अपारी॥५५॥
हमैं देहि सब दिन सबकाई। सेवा करै सदा मन भाई॥
निरखि निरखि शिशु कौतुक भारे। परमानंद लहैं अनपारे। ५६॥
रैन दिना ऐसे मन भावैं। चाह नई अनवधि उमगावैं॥
वात्सल्य हिय भाव बढ़यो अति। निश्चल भई अनन्य इहै गति॥५७॥
इनहू कौ ऐसे सब काला। होत विनीत बढ़त हित जाला॥
निसदिन दोऊ या विधि लागे। अचल प्रेम प्रभु पद अनुरागे॥५८॥
गोपेश्वर प्रभु की अस रीती। निज तन तें जन पर अति प्रीती॥
जुगल विहारी जन सुख चाहैं। सदा इहै दृढ़ चित्त अवगाहैं॥५९॥
इन दोउन के मन की जानो। जुगल परस्पर बोले बानी॥
शिशु लीला इन दृढ़ उर धारी। हमहू कह सो लागत प्यारी॥६०॥

लाल कहैं सुनियें श्रीप्यारी। चलिये इनके सदन सवारी॥
ललितादिक यह भेद न जानै। इहाँ न सेवा भंग प्रमानै॥६१॥
ए इत ऐसे ही सुख पावैं। नित्य विहार अखंड विभावैं॥
बालकेलि ता थल चलि कीजै। तिन सुख दै अपनो मुद लीजै॥६२॥
श्रीप्यारी मृदु सुनि पिय बानी। मन अति हर्ष मंद मुसुकानी॥
वचन समै अनुकूल कहे मुख। जे सुनि भक्त लहै सब दिन सुख॥६३॥
भक्तन के काजै सब कीजै। तिन कौ सुख अपनो लखि लीजै॥
जा विधि जन अति होहि सुखारे। तेइ निरंतर कर्म हमारे॥६४॥
अचरज कौन कहा अनहोनो! कीरति धर्म अहै हम जोनी॥
जहाँ धर्म तह कीरति रहई। इन बिन हमै कहो को लहई॥६५॥
जन हित जतन अधिक मन भाई। चलिय वेगि सो करिय उपाई॥
सखी अंगजा ए ललितादिक। इन पर हमै अधिक प्रेमादिक॥६६॥
इन बिन काज कछू नहि सरिहै। कपट जानिये ऊ दुख भरिहैं॥
ए अनन्य मोहू अति प्यारी। इनतै उचित न कपट विहारी॥६७॥
इन कह देखि सदा सुख पावौं। मैं पल एक न इन्है भुलावौं॥
प्यारी वचन दास हित साने। सुनि प्रीतम अति मन सकुचाने॥६८॥
सो विधि प्रगट करन उर धारी। जातैं मिटै लाज अति भारी॥
ऐसें चित्त विचारन लागे। ए गुन तबै हिये वर जागे॥६९॥
सख्य दास्य को रूप विचार्यौ। यह सिद्धांत मुख्य निरधार्यौ॥
कहियै सखा मित्र सो गाई। ताकी ऐसी रीति सुहाई॥७०॥
मित्र भाव जातै जो मानै। अंतर स्वल्प कपट नहि आनै॥
दृढ़ विश्वास अचल अनुरागा। देह उभै नहि लखै विभागा॥७१॥
छिन छिन सकल भांति हित चाहै। नेह वृद्धि लखि भरै उछाहै॥
सखा मित्र यह रूप कहावै। या विधि सदा सुखी जस पावै॥७२॥
जा छिन कपट होय मन मांहीं। प्रीति पुरानी तबै नसांहीं॥
यामै दृढ़ दृष्टांत प्रमानै। जाके सुने हृदय बुध आनै॥७३॥
जीव मोर प्रतिबिंब कहावै। सखा बताय सदा श्रुति गावै॥
जद्यपि मोतें अंतर नाहीं। तऊ भेद नहि गनत सिरांही॥७४॥
माया रूप कपट कहि गाई। सो अंतर परि भेद जनाई॥
निपट निकट तोऊ अति दूरी। पलक आड़ चख वस्तु विदूरी॥७५॥

जहां कपट तह माया कहहीं। विगत कपट अप्राकृति लहहीं॥
प्रगट करौ निष्कपट स्वरूपा। कृपा तहा राखौ अनरूपा॥७६॥
सखा मित्र अस करि वर नामा। जे अप्राकृत गुन तिन धामा॥
मंडल तिनको जुदौ कहावै। संज्ञा सख्य ठाम सो पावै॥७७॥
तहां करैं बसि विविध विलासा। सकल अमायक वस्तु सुपासा॥
वात्सल्य मंडल हम जैहैं। बाल रूप लीला दरसैहैं॥७८॥
तहां संग हमरौ ते करिहैं। सख्य भाव अंतर सुख भरिहैं॥
प्रिया संग ज्यौं सखी रहैंगी। बालकेलि सुख सबै लहैंगी॥७९॥
तैसे हमरें संग रहैंगे। सखा समान प्रमोद लहैंगे॥
तब हमते प्यारी जब मिलिहैं। उभै मंडली संगै झिलिहैं॥८०॥
उतै सखी इत सखा हमारे। कौतुक आनि परैंगे भारे॥
सखा दोष हम निज सिर लैहैं। तिन की छांह छुवन नहि दैहैं॥८१॥
तब प्यारी निश्चै जिय जनिहैं। मम दृढ़ प्रीति सखन पर गनिहैं॥
यह सिद्धांत हियें ठहराई। लाज मिटन की जतन सुहाई॥८२॥
तब प्रसन्न ह्वै डीठि पसारी। ललितादिक देखी सखि सारी॥
सेवा तत्पर तन मन लागी। सेवा सुख छिन छिन अनुरागी॥८३॥
सेवा अपनौ धर्म पिछानै। सेवा छांडि अपर नहिं जानै॥
समै समै सेवा सुख देहीं। वर माँगै सेवा रुचि लेहीं॥८४॥
सखी कहाय दास गुन जीतें। प्यारी चित्त गहै याहीतें॥
ए गुन तौ इनही मैं दीखैं। अनत मिलै नहि बिस्वा बीसैं॥८५॥
याते भलैं जुरे प्रगटैयै। तिनमें सकल दास गुन पैयै॥
दास रीति ऐसो सुखदाई। जा तन होय सु लहै बड़ाई॥८६॥
जथा देह के अंग कहावैं। संज्ञा नाम जुरे ते पावैं॥
जाकी जैसी वृत्ति कहावै। ताते सो कारज बनि आवै॥८७॥
दस इंद्री समुदाय कहै तन। हृदय चतुष्टय मुख्य अहै मन॥
निज निज कारज ओर निहारैं। समै समै लै देहो पारैं॥८८॥
जाके काज बनैं ताही तैं। संज्ञा जुदी मिली याहीते॥
सकल पदारथ संग्रह करहीं। केवल सुख देहा अनुसरहीं॥८९॥
छिन छिन प्रीति अधिक अधिकाई। सेवै देह निरंतर चाई॥
कबहू निज सुख जुदौ न दाहैं। सेवें सेव्य सोइ सुख लाहैं॥९०॥

इनकी प्रीति अनन्य निहारी । सेव्य देह अन रीति विचारी ।।
अहै आप पोखै इन सबहिन । बिलग भेद करि मानै कबहिन ।।९१।।
निसदिन इनकी जतन विचारै । जथा लहैं सुख तथा सवारै ।।
इनहीं तें निज सोभा मानै । इनके हेत कृपा बहु ठानै ।।९२।।
इनतै अधिक अनत नहि प्रीती । सर्वोपरि इनकी परतीती ।।
इनतै जो प्रतिकूल बिभासै । वेगि जतन करि ताहि विनासै ।।९३।।

देही इन कह निज तन मानै । इन बिन अपनौ सुख नहिं जानै ।।
अरस परस ए कैसी रीती । अनवधि प्रेम प्रीत परतीती ।।९४।।
सेवक अवधि अंग सब गावैं । दास कहाय उच्च पद पावैं ।।
इनकी रच्छा तें सुख भारी । देही कीरति लहैं अपारी ।।९५।।
अंग देह तें पृथक न अहहीं । जुदे भयें देही किमि कहहीं ।।
एक एक ते भारी सब दिन । ऐसे मोद बढ़ै नव छिन छिन ।।९६।।

स्वामी सेवक अहै एक तन । किया भेद संज्ञा दूजो गन ।।
सेवै सेवक दास कहावै । पालन पदवी ईश लहावै ।।९७।।
ऐसे भये उभय सुख पावैं । जस वितान नित नूतन छावैं ।।
जितने मेरे अंग अहैं ए । दास नाम तन प्रगट करैं तें ।।९८।।

बसैं जुदे मंडल ते जाई । दास नाम सो वाम लहाई ।।
तहां बास करि वस्तु अमायक । सेवा की ते जानि सहायक ।।९९।।
जथा भक्ति वर भावहि ए रुचि । तथा प्रगट तन मोर लखैं सुचि ।।
सेवै मेरौ रूप निरंतर । भाव सुफल पूरै सुख अंतर ।।१००।।
ए वर्त्तैं मेरी रुचि देखी । मैं इनकी रुचि चलों विसेखी ।।
मोहि समै लखि लखि मुद देवैं । ऐसें सेय सदा सुख लेवैं ।।१०१।।

बैठि विमान सैल सुख लैहैं । प्रिया समेत कबहु तित जैहैं ।।
ललितादिक सखि संग रहैंगी । दासन की गति नैन लहैंगी ।।१०२।।
देखि परस्पर अनवधि प्रीती । सेवक सेव्य विचित्र बिनीती ।।
तब मेरे हिय की यह लाजा । मिटिहै ऐसा बने समाजा ।।१०३।।

पीतम ए द्वै जुक्ति विचारी । सख्य दास्य मन धरी सभारी ।।
तब उर आनद अतिसै छायो । काज सिद्ध संकोच गवायो ।।१०४।।
लागे देखन सबकी ओरी । प्रिया वदन ससि सखी चकोरी ।।
कबहुं देखि माधुरी भारा । स्रवै सुधा छवि किरिनि अपारा ।।१०५।।

तन मन छकै झपैं दृग जिनके । शांत अचल अंग हले न तिनके ।।
हिये स्वामिनी छटा समानी । मन बुधि इंद्री तहां पगानी ।।१०६।।
सुरति वृत्ति नहि चलत चलायें । सिद्ध समाधि न सहज लगायें ।।
प्रतिमा उपल रीति जो होई । देखी दशा सखी की सोई ।।१०७।।

पीतम हिय संभ्रम कछु आयो । सखियन अद्भुत रूप दिखायौ ।।
जासो जोग कहैं सब गाई । सिद्धि करैं जोगी हठ लाई ।।१०८।।
बीतें जन्म अमित इहि भांती । लव निमेष नहि पावें सांती ।।
छिन छिन इनके अंग अनेका । देखि परै गुन सिद्ध प्रवेका ।।१०९।।
जानि परी प्यारी चतुराई । इन तन निज महिमा दरसाई ।।

जुक्ति हमारी दुर्लभ कीन्ही । ऐसी शक्ति सखिन मे दीन्ही ।।११०।।
मन की बात मनै मैं राखी । उर तें आप सकत नहि आखी ।।
चतुर चतुर की ऐसी रीती । प्रगट न होय चाह मन जीती ।।१११।।
बहुरि लाल मन करत विचारा । अबकै सो कीजै उपचारा ।।
लाज मिटन की जतन विचारी । भई जुक्ति बलहीन हमारी ।।११२।।

सखियन कौ देख्यौ जस रूपा । प्रगट करैं ताके अनुरूपा ।।
तौ कछु हिय पावै सचु लेसा । प्यारी लखैं नैन यह देसा ।।११३।।
तब निष्कपट हियो हम होवै । ऐसे जन तन चित्त भिजोवैं ।।
शांताकार कहैं मोहि वेदा । प्रगट करौ मेटौ निज खेदा ।।११४।।
ऐसो रूप होय जब जाको । शांत विशेष कहै अंग ताको ।।
इन्द्री चंचलता मिटि जावै । कबहूँ मन उद्वेग न पावै ।।११५।।

असद वासना हिय ते जावैं । जे याको निति प्रति भटकावैं ।।
देह विषय आधिन न होवै । कारज अपनो छिन छिन जोवै ।।११६।।
नित्यानित्य विचार रहै थिर । मृत्यु काल देखै ठाढ़ौ सिर ।।
ग्यान विराग भक्त त्रय पीने । कबहूँ हिय तें होय न हीने ।।११७।।
जोग जुक्ति जे सकल कहावैं । ते हठि साधि अवधि निज पावैं ।।
माया पर अव्यय सुख राशी । अमित अंड प्रति रोम निवासी ।।११८।।
जुगल विहारी नित्य स्वरूपा । अंग अंग छवि जाल अनूपा ।।
हमते जथा होय दृढ़ प्रीती । समुझि विचार करै अस नीती ।।११९।।
प्राणायाम वायु गति सोधैं । नाद बिंद को मेल प्रबोधैं ।।
मूलाधार चक्र षट जेते । बल समीर सूध करि तेते ।।१२०।।

शनैः शनैः इमि आवै कठै। थिर ह्वै निज इष्टै उत्कंठै॥
या थल जोगी होय सचेता। मारग बहुत वायु पथ तेता।१२१।
अतिबल ते जौ ऊपर जावै। फूटै अंड सिद्धि नहि पावै॥
अन्य वासना खोजि बहावै। ताके सहित सोई गति छावै।१२२।
यातें जो जुक्ति द्वै गाई। क्रिया जोग जुक्ति निपुनाई॥
जीव प्राण औ इष्ट स्वरूपा। ए त्रय मेल करै सुख जूपा।१२३।
सावधान ह्वै ऊपर जाई। पद्म सहस्र पत्र थल पाई॥
तहाँ समाधि रहैं जत वारी। जो लै जाय सो टरै न टारी।१२४।
बसै प्रमाण जितौ संकल्पा। बहुरि वायु उतरै गति स्वल्पा॥
ऐसें करत करत अस होई। जोग सिद्ध फल जानौ सोई।१२५।

निज मन इष्ट रूप ए दोई। इनके मध्य अपर नहि कोई॥
सोवत जागत बैठे बाढ़ें। जेते कर्म करै हित गाढ़ें।१२६।
सुरति एक सी सब छिन रहई। अन्य वासना गंध न लहई॥
जब लग ऐसो वृत्ति न होई। हवि समाधि नित साधै सोई।१२७।
अचल दशा जानै जब ताको। सहज समाधि भई तब याको॥
बिना तरंग सिंधु सुख जोहै। शांता रूप जोगी तन त्योंहै।१२८।
ऐसे भए मोहि तें पावै। भक्ति भाव यह शांत गनावै॥
ऐसे प्रगट करो बहुतेरे। शांत नाम ह्वावै जिनकेरे।१२९।
मंडल सोई नाम कहावै। तहाँ वास इनको सुख छावै॥
जहाँ अमायक सिगरी सामा। करै विलास नित्य अभिरामा।१३०।
जा विधि को रुचि मोतन करिहैं। प्रगट सेय अनवध सुख भरिहैं॥
सहित लाड़िला काहू दिन मैं। करत विहार जाव हम तिनमैं।१३१।
ललितादिक सखि देखै तबहीं। मो मन लाज मिटैगी तबहीं॥
प्रभू सत्य संकल्प कहावै। जो मन करैं सो प्रगट दिखावैं।१३२।

जैसे संख्य दास मन भाई। शांत भाव की रीति सुहाई॥
प्रगट भए ताही छिन तैसें। प्रभू देखि सुख पावैं जैसे।१३३।
मंडल तीन विचित्र अनूपा। भए सु कहियै किमि तिन रूपा॥
तिनमै ते सुख वास करैं निति। भोग विलास कहै न लहै मिति।१३४।
तिनको रूप धाम अति नीको। प्रभू लखौ सुख लखि हित जीको॥
अति प्रसन्नता मन मै आई। तीनौ जुक्ति भली बनि आई।१३५।

इन तेहूँ हैं काज घनेरे। जे जे उदय होंहि मन मेरे॥
मै उत्पन्न करौं जग संघा। धर्म सेतु थापौं अनुलंघा।१३६।
ता पथ जीव तरै भव वारिधि। पावैं मोहि मिटैं संसृति विधि॥
मध्य अधर्मशील पापी नर। जहाँ तहाँते होंहि उजागर।१३७।
धर्म सेतु हठि दुष्ट नसावैं। सीदैं साधु असाधु बढ़ावैं॥
सो मोतें सहि जात न कैसें। उत्तम अंग पीर नर जैसें।१३८।
जब जब ऐसी रीति निहारौं। प्रगट होय निज धर्म सभारौं॥
जा थल जैसौ देखौं कामा। तैसो तन धारौं अभिरामा।१३९।
दुष्ट निवारि करौं बहु लीला। जीव शर्म हित अस मम सीला॥
त्रिगुणमई सब सृष्टि कहावै। गुण आधीन सु लहै सुभावै।१४०।
श्रद्धा रुचि मन होवै तैसी। गुण की वृत्ति जथा जिहि जैसी॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल देव नर। जीव जिते जग सकल चराचर।१४१।
जा विधि काज होत जह जानौ। मै तस रूप तहां उनमानौ॥
जैसें जाको मन मो माहीं। लगैं अधिक सुख नित अधिकाहीं।१४२।
तथा होय सब काल सुधारौं। ऐसे जीव समस्त उधारौं॥
मेरो रूप अपर नहि होई। बन्यौ रहै जैसो नित सोई।१४३।
ऐसें पंच भाव अधिकारी। प्रगट भईं ए कला हमारी॥
नित्य निवास करैं या ठामा। जथा भाव पावैं विश्रामा।१४४।

जीव उधारन हेत जबै जस। भुवन चतुर्दस काज परै तस॥
प्रगट करैं तह निज तन जाई। जीव दया दृढ़ हृदय बसाई।१४५।
भाव रूप जे मै उपजाये। सदा एक रस रहैं सुहाए॥
जाके हिय दृढ़तर जो भाऊ। ताको तैसो अचल सुभाऊ।१४६।
अपने भाव सहित मोहि सेवैं। जहां रहैं सोई सुख लेवैं॥

भाव भक्ति के मैं आधीना। भाव नीर सम मो मन मीना।१४७।
जहां रहैं भाविक जन जाई। तहां बसौं मैं अति सुख पाई॥
जैसो मैं तैसे तन राऊ। सत्य भाव लीला तिमि तेऊ।१४८।
इनको सुख सब दिन इक सारो। माया करै न जहां प्रचारो॥

जा थल इनको होय निवासा। देश लहै सो अधिक सुपासा।१४९।
इनकी सदा एक सी रीती। अचल भाव जस मो तन प्रीती॥
इनके सहज विनोद प्रचारा। अनायास उधरै जग सारा।१५०।

मैं निज लोक बसौं जा भाँती। लीला करौं लोक मन मांती ॥
तैसें नित्य रहै ए इतहीं। जीव उधार करैं जित तितहीं।१५१।
मैं मेरे जन संमत एकै। पर उपकार गहैं जिय टेकैं ॥
ज्यौं आतप ऋतु अंबुद पाँती। छावै नभ दिसि सकल सुहाँती।१५२।
वायु अधीन चलै अनयासा। मेटै जीव ताप तन त्रासा ॥
तैसें मम इच्छा वश भोजन। करै विनोद लोक आनद घन।१५३।

मिली सहाय मोहि अति भारी। काज कियें बहु लाज विचारी ॥
क्रिया एक फल देइ अनन्ता। सो श्रम होय परम मुदवन्ता।१५४।
ऐसे जानि लाल अति हरषे। रोम रोम आनद भर सरसे ॥
बहुरि करी सुधि तेई बातें। उपजी लाज प्रथम जिय जातें।१५५।

जे अनन्य निज दास कहावें। तिनतें कपट न शोभा पावें ॥
ऐसो हेत लियें वर बानी। प्यारा मुख ते पूरव जानी।१५६।
लाल मनहि मन अति सकुचाने। प्रिया मोहि मन कपटी जाने ॥
ऐसी लाज बढ़ी जिय माहीं। किया विचार कौन विधि जाहीं।१५७।

सखा दास जन शांत रचाए। धाम विलास दिये मन भाए ॥
प्रीति परस्पर रीति नेह की। मानो तहां समान देह की।१५८।
भाव अचल गुन विसद अनूपा। सदा एक रस जिनके रूपा ॥
तिन्है विरचि अतिसै सुख पायौ। लाज मिटी मन धीरज आयो।१५९।

स्वस्थ चित्त ह्वै अस मन आई। अधिक सखी कै हम निपुनाई ॥
न्यूनाधिक्य समान विचारैं। जानि बलाबल जिय निर्धारैं।१६०।
इनमैं एक ठौर गुन भूरी। अन्त न मिलै शक्ति अस पूरी ॥
हमरी जथा बहुत गुन स्वल्पा। यामैं हर्ष न मानै कल्पा।१६१।

तीनि बार पुरुषारथ नेमा। बहुरि न मिलै मोद जस छेमा ॥
प्रिया जीति सब दिन चलि आई। छिन छिन हमैं सोइ सुखदाई।१६२।
जो मन भई सो प्रगट न कहियै। याही मैं मुद अनवधि लहियै ॥
जब प्यारी देखैंगी नैना। तब तैसे सुनिवै सुख बैना।१६३।

अब जो प्रथम होत ही बाता। ताकी जलन करैं मुद ब्राता ॥
पिय प्यारी मिलि संमत कीन्ह्यो। निज भक्तन अनवधि सुख दीन्ह्यो।१६४।
जुगलविहारी अस मन धारी। शिशु लीला कीजै जन प्यारो ॥
गोपेश्वर सुनियें सुख बानी। भक्त लहैं मुद मंगलखानी।१६५।

श्रीजू प्रगट कह्यौ सखियन तें। अरी सुनौ जो उपजी मन तें ॥
धर्म सनातन सो वृषभाना। कीरति उच्च तहा परिमाना।१६६।
आनद वृद्धि सदा जित मोदा। ताके संग रहैं जसओदा ॥
ए तन धारि भए पति नारी। ऐसी इच्छा हुती हमारी।१६७।
जमुना पार चतूरथ मंडल। वात्सल्य अस नाम सुमंगल ॥
तहो बास ते करैं सुखारे। प्रीति पुनीत अचल पद सारे।१६८।
वात्सल्य दृढ़ भाव हियें धरि। नारि पुरुष अस नेम अचल करि ॥
शिशु लीला देखन दृग चाहैं। हम तन ऐसो जुक्ति उमाहैं।१६९।
तहाँ जाय करिहैं शिशु लीला। तुमहूं होहु हमैं सम सीला ॥
नित्य विहार इतै अस रहई। बालकेलि ता थल निरवहई।१७०।
कीरति ग्रह प्रगटैं हम जाई। लाल जसोदा तन सुखदाई ॥
तिनके उदर वायु ते पूरे। होत वृद्धि बीते दिन भूरे।१७१।

प्रसव काल अब अति नियरानौ। ऐसे प्रगटैंगे हम जानौ ॥
उदर निवास हमैं नहि कबहूँ। भक्त वस्य तन धारं तबहूँ।१७२।
जननी अति निद्रा वश होई। ताहि न रहै तहाँ सुधि कोई ॥
सद्यःप्रसूत बाल तन धारी। प्रगट होव तन सेज प्रचारी।१७३।
माता उदर वायु कढ़ि जाई। निद्रा विगत देह सुधि पाई ॥
तब जानै बालक जन मायो। सत्य सुकृत भाग्यन फल पायो।१७४।
जन्म कर्म अनमाय हमारे। करैं भक्त पावैं सुख भारे ॥
ऐसे लाल जसोदा के तन। प्रगट होय दैहैं सुख निज जन।१७५।

भक्तन हियें भाव जस होई। हमैं सिद्ध करिवैं हित सोई ॥
वात्सल्य मंडल के बासी। श्रीवृषभान निकट सुखरासी।१७६।
अपर भक्त यह भाव विभावैं। हमरे चरण सदा चित लावैं ॥
तिनके सदन सकल तुम जाई। प्रगट होहु अस मो मन आई।१७७।

बाल अवस्था हू के मांही। छिन अंतर हम तुम तें नांही ॥
परम कृपा रस सानी बानी। श्रीमुख तें सुनि सब हरखानी।१७८।
बार बार करि दंडप्रणामा। आज्ञा मौलि धरी अभिरामा ॥
गोपेश्वर या विधि प्रभु सब दिन। भक्तनहित चाहत अति छिनछिन।१७९।
प्रगट भए इन सदन सुहाए। निति नव आनद भर मुद छाये ॥
श्रीवृषभान उच्च यह कीरति। नद जसोदा की तैसी रति।१८०।

दोउ भवन सिंधु सुख बाढ़े। नाते भए परस्पर बाढ़े॥
छठी अन्नप्रासन तें आदी। उत्सव होंहि परम अहलादी।१८१।
श्रीतन दिन दिन पावत वृद्धी। ते सब करत मनोहर सिद्धी॥
श्रीअंग जोइ अवस्था आवै। या मंडल सो लीला छावै।१८२।
सबके सदन मनो गिरिराजू। आनद सरित प्रवाह समाजू॥
जन मन जैसी इच्छा करहीं। जुगलविहारी सो चित धरहीं।१८३।
ऐसें प्रभु भक्तन कै काजैं। लीला विविधि करत नहि लाजैं॥
जे जे इतै होत सुखदाई। ते सब देखोगे ब्रज जाई।१८४।
जौ इत कछू विलोकन चाहौ। बीतै आयु न अवधि लहाहौ॥
लीला नित्य अमित इत होवैं। तृप्ति न मानै जन नित जोवैं।१८५।
सनत्कुमार सुनौ मम बानी। रत्नप्रभा मो मन गति जानी॥
बोलीं वचन भक्ति रस गुरुवे। प्रभु आज्ञा पालन बिनु हरुवे।१८६।
गोपेश्वर श्रीआज्ञा जैसी। करिवें बेगि सीस धरि तैसी॥
अपर सुनौ वृत्तांत सुहायो। जाके सुने धीर बहुतायो।१८७।
कलि के जीव विषय जल मानै। जिनके चित्त मीन गति जानै।
विषय वियोग होत विनसावैं। ता बिनु लव धीरज नहि पावैं।१८८।
विषय अनित्य नित्य यह जीवा। तोसे यति न मानत पीवा।
त्रिगुण पदारथ देह समेता। विषय स्वरूप जानिये एता।१८९।
तिनतें जीव नेह दृढ़ साधै। बार बार तिनकौ तन लाधै।
जड़के संग भयो जड़ सोऊ। तापै लगत उपाय न कोऊ।१९०।
वेद पुरान जतन बहु कीन्ही। तहाँ धर्म शिक्षा दृढ़ दीन्ही॥
साधु भक्त मुनि आदि अनेका। कहे किये बहु भाँति विवेका।१९१।
धर्म सनातन थापन करहीं। हरि हरिजन तन सबदिन धरहीं॥
शुद्धाचरन करैं करवावैं। भ्रष्ट जीव सतमारग लावैं।१९२।
सदाचार करि ते मन सोधैं। नित्यानित्य लहैं तब बोधैं।
जगत अनित्य जानि हरि साँचैं। त्यागि विषय प्रभु श्रीपद राचैं।१९३।
ऐसें जीव सकल जग मांहीं। धर्म सेतु चढ़ि हरिपुर जाँहीं॥
कलि गत जीव विषय रस जीवन। मानत नास जबै नहि पोवन।१९४।
प्रथम उपाय भई जे भारी। ते कलि होत न कारज कारी॥
भेषज वैद्य देइ कहि पथ्या। रोगी निस दिन भाषै मिथ्या।१९५।

औषध खाय पथ्य नहि करई। गोपेश्वर सो काहे न मरई॥
ऐसें कलि के जीव विमूढा। ऊपर धर्म विषय हिय गूढा।१९६।
अंतःकरण शुद्ध नहि जिनके। ते उपाय साधक किमि तिनके॥
ऐसो वैद्य मिलै जौ आई। मेटै दोष कुपथ्य खवाई।१९७।
गोपेश्वर अस बनै संजोगा। तौ कलि जीव लहैं हरि जोगा।
कलि जीवन की दशा निहारी। खेद लह्यौ हिय जुगल विहारी।१९८।
आरतबंधु दीन हितकारी। अनवधि करुणासिंधु अपारी॥
कहौ जीव तें हरि को काजा। होय कहा जो नित दुख भाजा।१९९।
तौ प्रभू निज सील अधीना। उमगत हियो देखि जिन दीना॥
जुगलविहारी नित्यानंदा। जन सुख चाहत आनदकंदा।२००।
कलि गति पेखि विचारत मन मैं। करुणा रस छायौ दोउ तन मैं॥
रचियै ऐसी कछू उपाया। जीव लहै ध्रुव पद निर्माया।२०१।
सेवैं विषय शुद्ध हिय होवैं। हमरौ रूप हृदय तब जोवैं॥
नित्य निवास लहैं इत आई। सिद्ध होय हम रचो उपाई।२०२।
सब दिन ऐसो क्रम चलि आयो। जो हम कीन्ह्यौ चरित सुहायो॥
गावैं सुनै हियें अनुमोदैं। करै प्रेमजुत लहैं विनोदैं।२०३।
कलि जीवन के हृदय मलीने। सदा विषय रस ही दृढ़ भीने॥
ते गुन तिन कह लागत रूखे। ए छिन छिन विषयन के भूखे।२०४।
विषय जगत नाना विधि केरी। श्रुति बुध उभै मुख्य निर्वेरी॥
प्रथम नारि सर्वोपरि गाई। इंद्री पंच फंसैं जित जाई।२०५।
सो कलिजुग धन के आधीना। जीव सकल धन तें निति हीना॥
सतमारग की चाल कहा है। जिहि तिहिं भांति द्रव्य मन चाहै।२०६।
पर धन पर तिय को अपहारा। कलिजुग सिद्ध मुख्य व्यवहारा॥
अपर विषय सब इनके मांही। इहै पाय ते बहु प्रगटांहीं।२०७।
चोर जार विष इनके भूपा। भोगी अपर प्रजा अनुरूपा॥
ए गुन कलि जीवन के प्राना। रैन दिवस हिय इन को ध्याना।२०८।
इनकी जतन करैं हठि धाई। इनकी कथा सुनै चित लाई॥
इनमैं रुचि छिन छिन अधिकाई। इनकी संगति सदा सुहाई।२०९।
जे इन गुन गति अतिसै भारे। तेई गुरु मानौ जग सारे॥
परम धर्म इव ए गुन चाहैं। तिनते कृपा अधिकता लाहैं।२१०।

बिन उपदेश करै सब मानो। अपनौ हित सरवस दृढ़ जानौ ॥
इनके हेत प्राण परिहरई। गर्जे सरै पुनि तेई करई।२११।
इनने जीवन की अति प्रीती। दृढ़तर इनही माहिं प्रतीती ॥
याते इनको मैं आचरना। करौं मुख्य निज तन आभरना।२१२।
जीव गहैं सब अति सुख पाई। अनायास बंधन कटि जाई ॥
उभय दोष मैं निज सिर धारौं। ऐसें कलिके जीव उधारौं।२१३।
मोपर अपरन दूजो कोई। जाकी संक मोहि चित होई ॥
अजस भयें मेरौ का बिगरै। कलिजुग जीव संघ सुख निधरै।२१४।
पावन पतित मोर अस नामा। जीव शुद्ध हित करिवें कामा ॥
जौ जस अजस विचारैं कीजै। आरतबंधु नाम तजि दीजै।२१५।
जस के हेतु पचै जग सारौ। यामैं अपनौ सुख निर्धारौ ॥
पर सुख हेत अजस जे गहहीं। आरतबंधु सत्य ते अहहीं।२१६।
चोर जार मैं जगत कहांवौं। कलि जीवन पद परम लहांवौं ॥
पिय प्यारी मिलि संमत कीन्हो। सहचरि वृंद श्रवन सुख लीन्हो।२१७
गोपेश्वर श्रीश्यामा बोलीं। कारज रीति सबै कहि खोलीं ॥
जौ संमत पिय ऐसो दृढ़तर। कीजै यह विधान सुख भर वर।२१८।
अमित अंड हमरे तन रहई। हम इच्छा तें सब निरवहई ॥
जा ब्रह्मांड चतुर्मुख है विधि। तिन पूरब कीन्ह्यो तप है सिधि।२१९।
वर प्रसाद सबही विधि पायो। ताकौ समै निकट अब आयो ॥
अष्ट बसुन मैं द्रोण मुख्य जे। धरा संग तप सिद्ध किये ते।२२०।
तिनतें वचन कहे ता रीती। सिद्ध कियें लहियैं वर प्रीती ॥
बसें चतुर्थ मंडल मांहीं। कीरति श्रीवृषभान सुहाहीं।२२१।
नंदराय संग सदा जसोदा। उभै परस्पर अवधि प्रमोदा ॥
इनके सदन भए हम बालक। सदा हमारे ए प्रतिपालक।२२२।
चलैं प्रथम ए जित हम चहईं। भुवन चतुर्दस अति जस लहईं ॥
भोगभूमि सिगरौ ब्रह्मण्डा। कर्मक्षेत्र एकै लव खंडा।२२३।
भरत सर्व जाकौं कहि गावैं। जीव जहाँ करनो फल पावैं ॥
तहाँ करैं जा विधि के कर्मा। भुगतै जीव अनंत दुख शर्मा।२२४।
तामैं सप्त पुरी थल सूची। मथुरा तिनहू मैं अति ऊची ॥
तहाँ जाय दोऊ ये बसहीं। अपने भाव सहित सुख लसहीं।२२५।

एई ग्राम नाम वर एई। हमै सदा सुखदायक जेई ॥
चलैं सकल ए ताही ठामा। जमुना व्रज वृंदावन धामा।२२६।
ब्रह्मा द्रोण दो उनकी नारी। तहाँ जाय अस करैं विचारी ॥
विधि वृषभान अंग धसि रहई। वामा सो कीरति तन चहई।२२७।
नंदराय तन द्रोण बसैं हित। धरा जसोदा अंग चहैं चित ॥
अपनौ परिकर लै तहं चलिये। बात विचारी तौ अति भलिये।२२८।
इनके सदन बाल तन धरियै। लीला मन भाई तह करियै ॥
जा विधि जीव लहैं विश्रामा। कीजै तित लीला अभिरामा।२२९।
कलिके जीवन की जस रीती। करिवें जतन तथा अस नीती ॥
जुगलविहारी जन हितकारी। यह सिद्धांत कियो निर्धारी।२३०।
अरस परस दंपति हसि कहिकै। जीव उधार जुक्ति निरवहिकै ॥
परमानंद लह्यो दोउ धांहीं। सहचरि सो सुनि चित्त सिहांहीं।२३१।
गोपेश्वर पहिलैं ए बातैं। भई श्रवन सुख उपजत जातैं ॥
श्रीललिता ते मन धरि राखी। समै पाय विनती नय भाखी।२३२।
माया जीव संग लइ खेदा। चेत धरायो सिगरो भेदा ॥
जुगलविहारी सैन अवस्था। श्रीललिता सब कही व्यवस्था।२३३।
श्रीजू सुनि सो सकल सँभारी। जीव उधार क्रिया मन धारी ॥
प्रगट कियो श्रीहस्त सुखद फल। आदि अंत सब हेतु कह्यो भल।२३४।
श्रीललिता तस कीन्ह्यो जाई। परमानंद लह्यो तुम पाई ॥
गोपेश्वर सो रूप तुम्हारौ। प्रभू क्रिया बाढ़्यो जस भारौ।२३५।
याते मथुरा मंडल जाई। बास करौ आनद रस छाई ॥
प्रथम भए तुमहीं प्रस्थाना। प्रभु चलिवे को हेतु पिछाना।२३६।
जो तुम सुनी रही कछु शेषा। नैनन देखोगे व्रज देशा ॥
नित्य विहार अपर लीला सब। चखन पेखि लहिहौ सुख भर अब।२३७।
गोपेश्वर गुनिये सो बाता। समुझि हियें उमगत सब गाता ॥
प्रभु अति कृपा जथा जीवन पर। तथा अपर को सब सुख जस पर।२३८।
अवरनि की को कहै कहानी। मायाधीन हीनमति प्रानी ॥
जो माया पर ईश कहावै। जाकौ वेद सदा जस गावै।२३९।
जद्यपि तिन नाना वपु धारे। जुग जुग जीव अनंत उधारे ॥
अजस बचाव सुजस विस्तारे। संक सहित अस नेम सभारे।२४०।

निंदा सदा अजस की कीन्ही ; धर्म धारि जस पदवी लीन्ही ॥
प्रभुता सही संक मन ऐसी ; राजा जथा प्रजा तिन तैसी ॥२४१॥
निंद्य करम कोऊ हम करिहैं । जीव सोइ जीहा उर धरिहैं ॥
उभै प्रकार भीति मन धारी । सदा ससंकित नीति सभारी ।२४२।
जाकौ अजस होय जग माहीं । ता सम अधम अपर कोउ नाहीं ॥
नर्क परै बहु जीवन डारै । जो करि पाप जगत विस्तारै ।२४३।
वेद कहै अस धर्म दिखाई । पाप सुकर्म सुभा शुभदाई ॥
करैं एक फल भुक्तैं केते । गावैं सुनै सहायक तेते ।२४४।
षटकारकजुत कर्म कहावै । राजा प्रजा तथा फल पावै ॥
निंदा सम नहि पातक दूजो ; करै अल्प प्राणी की हू जो ।२४५।
जाकी निंदा सो अति पापी । निंदक जन ते जग संतापी ॥
निंद्य करम ते निंदा होई । जग अस रीति गहै सब सोई ।२४६।
उभय प्रकार संक मन आनी । चले सभारि वेद गहि बानी ॥
प्रभु के जे अवतार घनेरे । या विधि जस कीन्हे बहुतेरे ।२४७।
अजस भीति जस प्रीति जनाई । संका गही कही करवाई ॥
जाके सीस नियंता कोई । ताकी रीति सदा अस होई ।२४८।
जा पर ईश न दूजो कोऊ । लच्छन द्वार जानियें सोऊ ॥
जो मन चाहै तैसे करैं । नीति अनीति संक नहि धरै ।२४९।
सेवैं तौ सकल जुत त्रासा । सो अवतारन केर निवासा ॥
जो कछु करै धर्म सो होई । सीस धारि मानै सब कोई ।२५०।
गोपेश्वर संपति अधिकाई । कृपा द्वार सब होत लखाई ॥
अवतारी अवतार कहावैं । तिनकौ रूप क्रिया प्रगटावैं ।२५१।
जो दृगगोचर होय पदारथ । चाहत मंद प्रमाण अपारथ ॥
कारन कारन जुगलविहारी । जीव दया ऐसी उर धारी ।२५२।
कलि जीवन रुचि पाप निहारी । सोइ तरन की जतन विचारी ॥
निंद्य करम कीजै आचरना । सदा निषेध वेद जो वरना ।२५३।
अजस हमार होहु जग माहीं । एकलि जीव परम पद जाहीं ॥
शंका शून्य दया उर इतनी । महिमा सकै गाय को जितनी ।२५४।
गोपेश्वर प्रभु महिमा जैसी । हियें समुझि सुख लहियै तैसी ॥
महिमा अंग इतौ पहिचानौ । निंदा करि पद प्रापति जानौ ।२५५।

चोर जार कहि कहि सब गैहैं । पूरन अवधि अजस की दैहैं ॥
कपटी कारे औगुन भारे । लंपट छली कठोर लबारे ।२५६।
ऐसी गाथा सत सहसाई । गैहैं जीव जथा मन भाई ॥
जुगलविहारी महिमा भारी । गाय अजस जग होहिं सुखारी ।२५७।
गोपेश्वर जस भाग्य तुम्हारौ । देखि न परै ढूढ़ि जग सारौ ॥
प्रभु को कृपापात्र जो होई । ताको समता अपर न कोई ।२५८।
या मंडल की रीति सुहाई । पूछी तुम मति सम हम गाई ॥
बालक तन धरि जुगलविहारी । निज भक्तन सुख देत अपारी ।२५९।
प्रभु गुन सभुझि हिय मुद भरिये । आज्ञा जथा वेगि सो करिये ॥
तातें कीजै अबें प्रणामा । चलिबें पंथ सेष दिन जामा ।२६०।

दोहा—रत्नप्रभा के वचन सुनि, गोपेश्वर अति गूढ़ ।
तन पुलकावलि नैन जल, हियो उमग हलि मूढ़ ॥१॥

अस बोले रस प्रेम भरि, करि प्रणाम बहु बार ।
रत्नप्रभे गुरु अपर तन, दीन्ह्यौ मोद अपार ॥२॥

नीके नैन निहारि सो, मंडल परम अनूप ।
करि प्रणाम लै नाम मुख, हरखि चले सुखरूप ॥३॥

❖ चौपाई ❖

निरखत हरखत भर सुख वरखत । चल्यो विमान मंद गति सरसत ॥
आगें चले दृष्टि पथ आयो । मंडल सख्य सकल सुख छायो ॥१॥
कारन प्रथम सर्व मुनि लीन्हौ । यातें प्रश्न बहुत नहि कीन्हौ ।
रचना धाम विचित्रित देखी । सकल भांति संपति तह लेखी ॥२॥
सखा रूप गुन भाग्य विसाला । नखसिख फबे सिंगार रसाला ॥
शोभा अनवधि नैन निहारी । टरत न डोठि तहाँ तें टारी ॥३॥
गोपेश्वर लखि मन ललचाने । प्रश्न कियो हिय अति हरखाने ॥
इनके दर्शन लागत प्यारे । उपजत मन संकल्प हमारे ॥४॥
रत्नप्रभा बोलीं मुसुकाई । मानत का इत अचरज ताई ॥
निसिवासर हरि के संग रहहीं । सख्य भाव अनवधि सुख लहहीं ॥५॥
प्रभु इनकी रुचि लखि अनुसरहीं । ए सेवा हरि की तस करहीं ॥
हास्य प्रौढ़ समता अंग लीन्हे । उभय ओर नूतन रस भीने ॥६॥

नेह दुहूँ दिसि बाढ़ै भारो। सोई करत उपाय विचारी ॥
तीन काल ऐसें इत जांहीं। रहैं निमग्न मोद निधि मांहीं ॥७॥
गोपेश्वर ए सखा कहावैं। सेवक ह्वै समता अंग पावैं ॥
इनकी शोभा संपति जस सुख। का विधि कहै लहै को अस सुख ॥८॥

दोहा—निज निज मतिसम गावहीं, लहैं न अंत अनंत।
सम सेवक संपति कृपा, भाखै कौन समंत ॥१॥
प्रभु प्यारे जिनकौं लगैं, ते भाजन प्रभु प्रीति।
गोपेश्वर तिन सम तेई, चलियै ऐसी नीति ॥२॥
सुख संपति आनंद घर, मंडल सख्य विलोकि।
करि प्रणाम आगें चले, अरस परस अवलोकि ॥३॥

❖ चौपाई ❖

मंद मंद गति चलत विमाना। देखत ठाम अनूप अमाना ॥
कछू दूरि दृग गोचर भएऊ। मंडल दास्य प्रथम जो कहेऊ ॥१॥
ताकी रचना अति ही भारी। अधिक एक एकन तें प्यारी ॥
चित्त लुभात नैन पथ आयें। मन इंद्री अरझत सुख पायें ॥२॥
दास अपार बसैं जित भारे। मानौ सबै भक्ति तन धारे ॥
प्रीति अनन्य सदा प्रभु पद की। छटा न परस अपर सुख मद की ॥३॥
जद्यपि भोग अमायक पाए। जातन करि निरनै ते गाए ॥
स्वामी सेवा सुख के आगैं। सकल जिन्है ते फीके लागैं ॥४॥
अंगी अंग रीति जिनकेरी। सेवा पालन उभै निवेरी ॥
सेवैं दास प्रभू जन पालैं। उभै ओर सुख बढ़ै रसालैं ॥५॥
अष्ट जाम तन मन वच सेवैं। अजित प्रभू निज वस करि लेवैं ॥
प्रभू कृपा अवलोकनि बोलनि। हियें बसो सो रीति अडोलनि ॥६॥
छिन छिन सो मुख सुमिरन करहीं। देह दशा विह्वलता भरहीं ॥
चलत फिरत ठाढें थल राजैं। प्रेम चिह्न बिगरे तन भ्राजैं ॥७॥
छके जके से दास अमोला। गोपेश्वर लखि दृग मन लोला ॥
जब तें चले निकुंज ठाम ते। देखत आवत ग्राम ग्रामतें ॥८॥
इनकी रीति लगत मोहि प्यारी। कछू अंग इत परत निहारी ॥
गोपेश्वर के मन की जानी। रत्नप्रभा बोली मृदु बानी ॥९॥
ए अनन्य प्रभु के निज दासा। प्रगटे श्रीतन ते हरि आसा ॥
हरि इनमैं ए हरि के मांहीं। अंगी अंग भेद कछु नांहीं ॥१०॥

श्रीमुख अधिक बड़ाई दीन्ही। ठौर ठौर अस्तुति अति कीन्ही ॥
अमित अंड कारन मम देही। यातें अधिक अपर को नेही ॥११॥
सर्वाराध्य ईशता भारी। श्रीशोभा जा मध्य अपारी ॥
ऐसे तन की करौ न आसा। छाँड़ि अनन्य भक्त प्रिय दासा ॥१२॥
अनुगामी इनको नित रहहुँ। दास चरणरज मस्तक गहहुँ ॥
इन अनुकूल न मम तन होई। कोटि शत्रु सम लेखौं सोई ॥१३॥
दास हिये प्रभुपद तस प्रीती। अधिक अधिक उभ दिसि दृढ़ रीती ॥
गोपेश्वर कहु इनकी महिमा। जानि सकै को जितनी गरिमा ॥१४॥
जे दासन तें प्रीति बढ़ावैं। प्रभुपद लहैं जगत जस पावैं ॥
हरिगुन अमित जथा तिमि दासा। ऐसी मति सब विधि सुखवासा ॥१५॥
ऐसे दास बसै या मंडल। प्रभु सेवा रुचि प्रीति अखंडल ॥
हरि हरिजन महिमा इक सारी। समुझि हियें धरिये गुनि भारी ॥१६॥
जौ इत बसि कछु देखन चाहौ। जाय काल बहु अंत न लाहौ ॥

दोहा—गोपेश्वर मन जानियें, प्रभु महिमा अनपार।
समुझि ताहि निति कीजियै, नमस्कार बहु बार ॥ १ ॥
नीकैं नैन निहारियै, मंडल दास्य अनूप।
प्रेम भरे प्रभु तत्परे, लखियै दास स्वरूप ॥ २ ॥
करि प्रणाम सुख लीजियै, दीजै मग दिसि चित्त
चलै विमान सु देखियै, कौतुक जे जे चित्त ॥ ३ ॥

❖ चौपाई ❖

रत्नप्रभा के वचन सुहाये। सुनि गोपेश्वर अति सुख पाये ॥
बार बार बहु करी प्रणामा। सब सुमिरैं सुख दंपति नामा ॥१॥
चल्यो विमान मंद गतिचारी। देखी पथि शोभा अति भारी ॥
वन उपवन वाटिका अरामा। विमल जलासै सुखप्रद धामा ॥२॥
देखत आवत मोद बढ़ावत। हरखि उमगि दंपति गुन गावत ॥
जो मंडल पहिलें कहि गायो। शांत नाम सो दृग पथ आयो ॥३॥
जा थलके जड़ चेतन वासी। शांत स्वरूप लसें सुख रासी ॥
डोलैं सांत समीर सुहाई। चंचलता घर अचर गंवाई ॥४॥
शांताकार बसैं जन जामैं। शांति लहै जो जावै वामैं ॥
करैं प्रचार शांत रस भीने। भक्ति जोग सीवां तन कीन्हे ॥५॥

देखि परैं तिनके अंग कैसें। बिन उद्वेग अंबुनिधि जैसे ॥
मन इंद्री तन की गति ऐसी। प्रतिमा शांत अचल रह जैसी। ६॥
प्रभुपद वृत्ति सिमिटि अति लागी। अवि चल सुरति अडिग तहं पागी ॥
बैठे खरे परे पथि डोलैं। लगी समाधि अंग नहि लोलैं ॥७॥
गोपेश्वर अस दशा निहारी। बड़ी वार लौं हियें विचारी ॥
अभ्यंतर इनकैं सुख भारी। बाहिर कृपा न कछू प्रचारी ॥८॥
गोपेश्वर मन शंका आई। प्रगटन भावत रहत लजाई ॥
उत्कंठा उपजी उर भारी। बोले विहसि लाज अंग टारी ॥९॥
रत्नप्रभे अनवधि सुखदाता। शंक भई अस मन जनत्राता ॥
शांत भक्त ए आप बखाने। सेवा अंग न परत पिछाने। १०॥
भक्ति रूप सेवा गुण गाई। सो इत एक न होत लखाई ॥
प्रतिमा की-सी रीति गहैं ए। प्रभु सेवा केहि भांति लहैं ए ॥११॥
जौ कहियै मन तें सब करहीं। मन प्रमाण सर्वोपरि धरहीं ॥
जहाँ न प्रगट प्रभू अंग देखैं। मन प्रमाण ताही थल लेखैं ॥१२॥
सबही मंडल प्रगट प्रचारा। प्रभू देत निज जन सुख भारा ॥
इनकी रीति कहा नहि जानै। आप कहैं सोई परिमानै ॥१३॥
रत्नप्रभा सुनि सूधी बानी। गोपेश्वर तन लखि हरखानी ॥
बोली मंद विहसि बर बैना। जिनके सुनै लहैं सब चैना ॥१४॥
गोपेश्वर तुम तें का अविदित। तौ सुन्यो चाहत जो विधि इत ॥
या मंडल की ऐसी रीती। दृढ़ सिद्धांत प्रभू पद प्रीती ॥१५॥
ताके हेत कृपा बहु साधैं। प्रभू कृपा तिनको फल लाधै ॥
जोग अंग जे आठ कहावैं। ते करि सिद्धि समाधि लगावैं ॥१६॥
तातें मन अति निश्चल होई। शांत अंग गावैं सब सोई ॥
अंतःकरण चतुष्टय थिरता। तन इंद्री गति हू तत्समता ॥१७॥
शांत नाम यह मंडल अहई। जो इत बसै सांति अति लहई ॥
शांत सुभाव सहित रुचि जैसी। प्रभु पद उपजै श्रद्धा तैसो ॥१८॥
जैसो रूप हियें अति भावै। मन समाधि ताही ते लावैं ॥
तैसो रूप प्रभू प्रगटावैं। भक्ति जोग फल सिद्धि लखावैं ॥१९॥
इनके मन की रुचि जस देखैं। प्रभू तथा अपने हिय लेखैं ॥
ए प्रभु कौ सुख छिन छिन चाहैं। प्रीति उभय दिसि वृद्धि उमाहै ॥२०॥

इनके सदन प्रभू नित रहहीं। शांत भाव सेवा सुख लहहीं ॥
समै समै सेवैं सबही विधि। उभय ओर बाढ़ै आनदनिधि ॥२१॥
सेवक सेव्य उभय समसीला। ता विधि की होवैं इत लीला ।
ऐसें निति अनवधि सुख मांहीं। भये निमग्न दिवस निसि जांहीं ॥२२॥
स्वतः सिद्ध जो शांत सुभाऊ। गति गंभीर सु तासु प्रभाऊ ॥
बाहिर भीतर सुख निधि भूरे। शांत भक्त ए सब गुन पूरे ॥२३॥
जाकी शांत वृत्ति अति होई। ताहि न सहसा जानै कोई ॥
काज परै जैसो जा विधि जब। हिय को हेतु सबै प्रगटै तब ॥२४॥
जन महिमा श्रीमुख अस गावैं। मोकों सब सर्वज्ञ बतावैं ॥
जन गुन जानि सकों नहि पारा। जिन मै ऐसो बल अति भारा ॥२५॥
दुराराध्य दुर्गम दुस्साधो। चंड प्रताप अचल अनबाधो ॥
सकल सुरासुर त्रसि तर है निति। नाधि न सकैं चराचर मम मिति ॥२६॥
जद्यपि ऐसो रूप हमारो। जन करि राखत वस्य न चारो ॥
मोतें बली अधिक अति एई। निज रुचि मोहि नचावत तेई ॥२७॥
गोपेश्वर श्रीमुख इमि गाई। जन महिमा सब काल बढाई ॥
जानि सकै को तिनको भेवा। जिनकी कृपा प्रभू पद देवा ॥२८॥
भक्ति जोग मंगल तन धारी। ते या मंडल बसैं मझारी ॥
शांत रूप मंडल सुखदाई। लखैं शांति उपजत हिय आई ॥२९॥
या मंडल की ऐसी रीती। स्वल्प अंग भाखी मै नीती ॥
जान्यौ चहौ कछू जौ अंगा। बीतै जन्म न अंत प्रसंगा ॥३०॥
हरि हरि जन महिमा अनपारा। हियें समुझि लहियै सुख भारा ॥
जे तुम प्रश्न किये मन भाए। ते मति सम हम गाय सुनाए ॥३१॥
अब कहियै कैसी रुचि मन को। सुधि कीजै तौ भलैं गवन की ॥
दिन अवशेष देश सो दूरी। प्रभु आज्ञा बल तर अति भूरी ॥३२॥
सेवा हेत हमै तहँ जानौ। तुम्है प्रसन्न राखि अस मानौ ॥
अब जैसी कछु आज्ञा कीजै। तथा श्रवन धरि मन सुख लीजै ॥३३॥
जुगलविहारी कृपा अपारी। गोपेश्वर सो तुम सिर धारी ॥
तुम्है प्रसन्न सदा हम चाहैं। दंपति सेवा सुख जिमि लाहैं ॥३४॥
साधु प्रसन्न भयें सुख जैसौ। गाय न सकैं वेद विधि तैसौ ॥
सुगम रीति हरि पावन केरी। करि सिद्धांत सबन निरवेरी ॥३५॥

मन वच कर्म साधु को सेवा। हरि हरि जन संमत वर एवा ॥

दोहा—रत्नप्रभा मुख खानि तें, रत्न बैन सुख दैन।
सुनि गोपेश्वर धारि हिय, पायो अनवधि चैन ॥१॥
बोले वचन विनीत अति, प्रेम भक्ति रससानि।
नाय मौलि तिमि अंग सब, सकुचि जोरि जुग पानि ॥२॥
रत्नप्रभा श्री तव प्रभा, जौ जन तन परसाय।
मोह तिमिर विनसाय ध्रुव, जुगल धाम दरसाय ॥३॥
वचन रावरे सुनत हिय, चाह सौगुनी होत।
नित्यविहारी जुगल प्रभु, गोप्य रहस्य उदोत ॥४॥
श्री ललिता करुणा उदधि, तिनको प्रतिनिधि अंग।
सहज सुभाव उठत वचन, ए माधुर्य तरंग ॥५॥
परसत परमानंद सुख, उपजत हियें अथाह।
वचन तरंगन प्रति मिलत, रत्न रहस्य सुलाह ॥६॥
परंपरा संबंध अस, देखि परयौ मोहि नैन।
जुगल प्रभू परिकर जितौ, केवल जन सुख दैन ॥७॥
कृपा रावरी तें सकल, पायो लाभ अतूल।
अब दिन दिन छिन छिन सदा, बाढ़ैगो सुखमूल ॥८॥
चरण वंदना उठि किये, गोपेश्वर बहु बार।
रत्नप्रभा उठि लाय हिय, बाढ़्यो मोद अपार ॥९॥
बड़ी बार चख लखि रहे, जुगल प्रभू सुखधाम।
हियें ल्याय दृग मूदि पुनि, बैठे सुमिरत नाम ॥१०॥

◆ चौपाई ◆

राधाकृष्ण नाम धुनि कीन्ही। सर्वोपरि सीवा सुख लीन्ही ॥
निरखि परस्पर सब हरखाने। विविधि भांति आनद सरसाने ॥१॥
मंडल शांत अनूपम भारो। गोपेश्वर जुत प्रीति निहारी ॥
हस्त जोरि निज मस्तक लाये। सुख समूह अनवधि उर छाये ॥२॥
इच्छा गवन विमान निहारी। चल्यौ मंद गति सुखद संभारी ॥
दिसा भूमि देखत चहु आरे। जहां तहां अरझत मन जोरे ॥३॥
बापी कूप सरोवर नाना। फूले कंज भ्रमर द्विज गाना ॥
बन उपवन वाटिका अरामा। रचना चित्र विचित्रित धामा ॥४॥

अमित भाति आरन्य सुहाए। सब ऋतु शोभा नखसिख छाए ॥
विहरैं नर नारी बहु ताए। ठाम ठाम सुषमा अधिकाए ॥५॥
निरखत हरखत हिय सुख सरसत। बनिक अनूपम दृग मन करषत ॥
चल्यौ विमान मंद गति आवत। सबके तन मन सुख उपजावत ॥६॥
ज्यौं ज्यौं जान चलत या दिसि तन। त्यौं त्यौं गोपेश्वर विह्वल मन ॥
वे विलास वै आनद सागर। वै माधुर्य्य लहरि मुदता भर ॥७॥

दंपति नाम रूप गुण सीला। जनहितकरतविविधिविधिलीला ॥
तथा अंगजा रीति अनूपा। परिकर सबै प्रणत हित रूपा ॥८॥
बार बार उर सो सुधि आवत। छिनछिनतनमनगतिविकलावत ॥
चतुर सखी कहि कहि समुझावत। प्रभू कृपा सर्वोपरि गावत ॥९॥
देखि परी विरजा सरि भारी। परम धाम चहु दिसि परिवारी ॥
योजन लक्ष गर्भ विस्तारा। घेरे धेनु लोक वर सारा ॥१०॥
लोक प्रमाण जानि किमि जावै। प्रभु इच्छा आधी न कहावै ॥
विरजा उभय कूल अति सोहैं। निरखत सब के दृग मन मोहैं ॥११॥

हाटक मणि रचना बहु भाँती। घाट भूमि तट परम सुहाती ॥
तीर उभय वर वृक्ष सुहाए। लता औषधी वेली छाए ॥१२॥
गुल्म समूह पुष्प फल भारा। परसत भूमि झूमि झुकि डारा ॥
मत्त भ्रमर द्विजगन रव करहीं। त्रिविध समीर सुखद अनुसरहीं ॥१३॥
जल के मध्य कमल सब जाती। फूलि रहे सुषमा सरसाती ॥
हंसादिक विहरैं जलक्रीड़ा। पद्म खंड कीन्हे सुख नीड़ा ॥१४॥

जीव नीर अभ्यंतरचारी। करैं केलि गति विषम विसारी ॥
माया गुण जहँ नहि संसर्गा। प्रभु सेवा हित इत सब वर्गा ॥१५॥
विरजा मध्य कूट मणि नाना। योजन सत द्वी त्रि परिमाना ॥
रचना तिनपै अमित सुहाई। धाम विहार भूमि सुखदाई ॥१६॥
केते दंपति क्रोड़ा के थल। अपर लोक वासी विहरैं भल ॥
चलत विमान नीर नगिचाई। शोभा सकल नैन पथ आई ॥१७॥

पहुँच्यौ पै ले तीर विमाना। मानौ शोभा तनी विताना ॥
कहा कहौं रचना तट भारी। मन अटकत चख नेक निहारी ॥१८॥
उतरि विमान भूमि थिर भएऊ। सरि तट शोभा लखि सुख लएऊ ॥
उतरि तीर विहरे कछु बारा। मज्जन हेत बहुरि मन धारा ॥१९॥

नीर केलि नान विधि कीन्ही। बन विहार तन श्रम करि छीनी ।।
निकसि निकसि तट पट अंग धारे। नखसिख सकल सिंगार सवारे ॥२०॥
अरस परस मिलि मोद बढ़ाए। वचन अमिय सम सुने सुनाए ।।
रत्नप्रभा बोली मृदु वानी। प्रभु आज्ञा कारज उनमानी ॥२१॥

दोहा—श्री जमुना या तीर वर, आयो जबै विमान।
वात्सल्य मंडल रह्यौ, कछू वार परिमान ॥१॥
जे जे मंडल च्यारि मैं, बसै सदा सुख पूर।
समाचार तिन सब सुन्यौ, निज कानन मुद भूर ॥२॥
तैसैं ता ता ठाम ह्वै, चल्यौ जान सुख देत।
नैन पेखि तन मन करी, चलियै देखन हेत ॥३॥
आए सकल विमान निज, चढ़ि चढ़ि ते बहु लोग।
मज्जन करि भरि सभा, थल बैठे सुख संयोग ॥४॥
सबके श्रवन सुनाय अस, वचन कहे हितसार।
रत्नप्रभा श्रीजुगल प्रभु, आज्ञा सूचनहार ॥५॥
गोपेश्वर तुम धन्य अति, धन्य जन्म गुण नाम।
धन्य भाग्य मति धन्य जस, धन्य बसौ जिहि ठाम ॥६॥
नित्यविहारी जुगल प्रभु, महिमा अपरंपार।
जाहि जनावैं सो लखै, अपर भ्रमै जग जार ॥७॥
भाग्यशील तुम सम कोऊ, या छिन दूसर नाहिं।
प्रभू कृपा भाजन भये, सब निति जाहि सिहाहिं ॥८॥
सेवक धर्म प्रमाण तुम, कीन्ह्यौ सर्व प्रकार।
श्रीआज्ञा मस्तक धरी, जानि सकल सुखसार ॥९॥
अब सो कीजै प्राण हित, जीव लहैं ज्यौं चैन।
प्रगट भये या हेत तुम, प्रभू दियो जस ऐन ॥१०॥

❖ चौपाई ❖

गोपेश्वर सब भांति सयाने। समुझि हेतु मन ही सकुचाने ॥
प्रिय विश्लेष दुखद अति होई। प्रभु आज्ञा गुरुतर अति सोई ॥१॥
करि विचार धीरज उर आन्यौ। सेवक धर्म रूप अस जान्यौ ।।
दास अनन्य प्रभू गति एका। सदा धरै हिय इहै विवेका ॥२॥

आज्ञा प्रतिपालन निज धर्मा। सकल भांति सोई प्रद शर्मा ॥
प्रभु महिमा जिय माहि विचारी। जन सुख हेत कृपा जिन्ह सारी ॥३॥
अस विचार दृढ़तर उर कीन्ह्यौ। वचन प्रभापि सभा सुख दीन्ह्यौ ।।
सेवक धर्म प्रेम रस सानी। गोपेश्वर बोले नै वानी ॥४॥
ए श्रीरत्नप्रभे हितकारी। जन पर अनवधि दया तिहारी ॥
मोहि सदा इन पद रज आसा। बल भरोस सोई सुख वासा ॥५॥
जो कछु आज्ञा सीस हमारे। कृपा जतन सब हस्त तिहारे ॥
सेवक प्रभु बल सदा सुखारे। स्वामी सील दास अति प्यारे ॥६॥
जे जन गुन ते मोहि न एकौ। बुद्धि विचार न शक्ति विवेकौ ॥
दीनबंधु प्रभु सहज सुभावा। सो भरोस मो मन दृढ़ आवा ॥७॥
निज सुभाव वस मम सुधि लेवैं। कमठ अंड इव नित चित देवैं ॥
तुम सर्वज्ञ दयानिधि पूरे। जन पालन हित तन मन सूरे ॥८॥
मैं अलज्ञ सकल विधि हीना। विनय करौं केहि भाँति मलीना ॥
तुमते अविदित है कछु नाहीं। कहा जनाय कहौं प्रभु पांहीं ॥९॥
शंक एक मोरे मन आवत। निज अज्ञान सोई तित छावत ॥
तुम दंपति सेवा सुखसागर। भई निमग्न रहत निसि वासर ॥१०॥
तहाँ अपर सुधि एकौ नाहीं। जानि न जात काल कित जाहीं ॥
जौ माता पतिसेवा राचै। तौ बालक तन का विधि बाँचै ॥११॥
पतिसेवा तिनकौ दृढ़ धर्मा। शिशुकैं आन भाँति नहि शर्मा ॥
बालक बल निति रोदन एकै। जननी जस मन गहै विवेकै ॥१२॥
अस कहि गोपेश्वर विह्वल मन। मैन स्रवैं जल पुलकावलि तन ॥
प्रेम विवस उपरुद्धित कंठा। चढे चरन परिवैं उत्कंठा ॥१३॥
डगमगात सँभरै नहि देहा। सभा निरखि बूड़ी जल नेहा ॥
अपर सहचरी गहि पग डारे। रत्नप्रभा कर मस्तक धारे ॥१४॥
बहुरि उठीं ते लिए उठाई। किए सुखी अति हिये लगाई ॥
सकल सभा करुणा रस मगना। कहै सबै इन सम कोउ जग ना ॥१५॥
धन्य कृपा श्रीजुगलविहारी। धन्य भाग्य जिन मस्तक धारी ॥
जुगल कृपा जे भाजन अहहीं। ते जगमौलि सबै अस कहहीं ॥१६॥
रत्नप्रभा गोपेश्वर कर गहि। अति आनंद दियो बानी कहि ॥
वात्सल्य रूपक प्रगटाई। जननी शिशु दृढ़ प्रीति लखाई ॥१७॥

जड़ विशेष पशु संगति जेऊ। मृतक चर्म चाटत गहि तेऊ॥
भक्तन हूँ या मै गुन भारी। जानि वृत्ति सो प्रिय उर धारी॥१८॥

वात्सल्य प्रभु विष इक भावा। अनवधि सुखप्रद जन मन आवा॥
अमित जतन करि सो सुधि करहीं। पाय पाय फल पुनि उर धरहीं॥१९॥
यातें नेह अचल यह मानौ। विन कीन्हे हिय उपजत जानौ॥
ऐसें बहु इतिहास बखाने। गोपेश्वर सुखसिंधु समाने॥२०॥

बार बार पद वंदन करहीं। लय रज हिय चख मस्तक धरई॥
नैनै पुनि बहु भाँति निहोरैं। मार्ग मन दीजै हम ओरैं॥२१॥
जद्यपि हमैं जोग्यता नाहीं। बड़ भरोस राउर जिय मांहीं॥
विनती एक दया उर भीजै। जब तब समै जानि सुधि लीजै॥२२॥
श्रीगुरु श्रीस्वामिनी श्रीललिता। रंगदेवि श्रीगुरु गुन सलिता॥
अष्ट प्रधान एक तन जे हैं। अपर समस्त मुकुट मन ते हैं॥२३॥

आव जबै अवसर जित जानौ। जौ करुणा मो दिसि मन आनौ॥
तौ प्रसंग पायें सुधि मेरी। चेत धराउब बलि बलि तेरी॥२४॥
जाकौ काज जहाँ ते होई। सर्व प्रकार तासु प्रभु सोई॥
हमरी गति आपै लौ सारी। तुम निति जन चाहत सुख भारी॥२५॥
आप सदा निज प्रभु संग रहहीं। दंपति सेवा सुख निधि लहहीं॥
जुगलविहारी नित्यानंदा। सर्वाराध्य प्रभू स्वच्छंदा॥२६॥

विहरैं नित्य विहार अपारे। कौतुक होंहि नए निति भारे॥
समै समै इतिहास विनोदा। विविधि वार्त्ता होंहिं प्रमोदा॥२७॥
आरतबंधु सुभाव तुम्हारो। जौ ता थल कहु मोहि सभारौ॥
जुगल प्रभू श्रवनन मम नामा। परै सरै तो पूरन कामा॥२८॥
यह सब राउर हस्त पदारथ। भाखौं मै कहि सत्य जथारथ॥
आप दया करि जौ चित धरिहैं। हम से जीव परम सुख भरिहैं॥२९॥

अस कहि बहुरि परे गहि चरणा। त्राहि त्राहि प्रभु हौं पद शरणा॥
प्रभा दया रसभीनो लानो। रत्नप्रभा त्यौं सभा प्रवीनी॥३०॥
कछू बार नहि बोले कोई। प्रिय वियोग दुख काहि न होई॥
बहुरि खोलि दृग देखैं सबही। सोई दशा बाढ़ै उर तबही॥३१॥
ज्यौं त्यौं समुझि धीर मन धारैं। काज विलंब न उचित विचारैं॥
लाय हियें पाये सुख भारे। गोपेश्वर अति किये सुखारे॥३२॥

जथा मनोरथ तिनके जाने। रत्नप्रभा ते किये प्रमाने॥
जन पर अनवधि करुणा देखी। सकल सभा सुख लह्यौ विसेखी॥३३॥
धन्य धन्य जय जय धुनि करहीं। हरखि वरखि पुष्पन मुद भरहीं॥
रत्नप्रभा निज कंठ उतारी। रत्न सुवन जुग माल सुखारी॥३४॥
गोपेश्वर ग्रीवा पहिराई। सकल प्रकार प्रीति दरसाई॥
नैन सजल तन पुलकित दोऊ। रुके कंठगति बैन न होऊ॥३५॥

लखैं परस्पर नेह पगाने। प्राण हानि मानत विलगाने॥
श्रीजू रंगदेवि की आली। कलकंठी अनवधि गुनशाली॥३६॥
समै विचारि प्रेम लखि भारी। गोपेश्वर के निकट पधारी॥
गोपेश्वर गुरु सम लखि देहा। परे चरण पूरन परिनेहा॥३७॥
तिन उठाय निज कंठ लगाए। सकल रीति हिय गात सिराए॥
मणि प्रसून जुग माल उतारी। निज उरतें सो हसि कर धारी॥३८॥

पूरन प्रीति पूरि जुग नैना। हेरि कहे मुख तैसे बैना॥
ऐसें सब सुख दै पहिराई। गोपेश्वर उर माल सुहाई॥३९॥
या विधि को देख्यौ व्यवहारा। षट औरो गुन रूप अपारा॥
तैसौ मिलि तन मन मुद लीन्हे। गोपेश्वर आनंदित कीन्हे॥४०॥
अपर सहचरी वृंद अनेका। मिलि सनमानै सहित विवेका॥
जे आए चौमंडल वासी। भक्त जुगल पद आनद रासी॥४१॥

शिष्टाचार करैं मिलि भारो। उभय ओर मुद लहैं अपारी॥
गोपेश्वर विवि रूप सुहाए। प्रथम विभेद रीति कहि गाए॥४२॥
दोऊ तन सब विधि सनमानै। अरस परस निधि नेह समाने॥
अष्ट सखी मिलि मंडल कीन्हे। ते विवि रूप मध्य कर लीन्हे॥४३॥
सकल सभा घेरे चहुँ घांहीं। सबके हियें नेह उमगांही॥
मंद मंद गति आए तितहीं। भूमि प्रदेस जानवर जितहीं॥४४॥

दोऊ रूप जान बैठारे। मंगल भांति अनेक सवारे॥
मंगल बानी मुख कहि गावैं। मंगल द्रव्य वारि सुख पावैं॥४५॥
विदा हेत मस्तक दै रोरी। मंगल समै थापि चित जोरी॥
बहुरि कह्यौ वृत्तांत सुहायो। पथि निर्वाह जथा सुख छायो॥४६॥
प्राण सुखद सुनिये हित बानी। एहि विमान बैठौ मुदखानी॥
करियै वर मंगल प्रस्थाना। मारग मै मिलिहैं थल नाना॥४७॥

जो जन जो, सत कोटि बखानै। मिलिहैं सो वैकुंठ प्रमानै॥
आगैं चली पंचासत कोरी। मिलिहैं सो ब्रह्मांड बहोरी॥४८॥
जहां बसै ब्रह्मा चतुरानन। तहां जाइवैं तुम्हौ शुभानन॥
एक समै हरि वामन तन धरि। तीन पैंड़ नापे विक्रम करि॥४९॥
प्रभु के चरण अंगुष्ठ प्रसंगा। भयो उपरि ब्रह्मांड बिभंगा॥
ता मारग प्रविसीं नभ गंगा। प्रभु पदकमल परसि सुचि अंगा॥५०॥
दरस परस मज्जन तन कीन्हे। सकृत अंबुकण हूँ सुख दीन्हे॥
जहां तहां बसि नाम उचारै। गंगा सुमिरि जाय भव पारै॥५१॥
सो केवल प्रभु पद रज महिमा। गोपेश्वर कहियै किमि गरिमा॥
यह इतिहास जान सब कोई। विस्तरि कियें गहर अति होई॥५२॥
प्रति ब्रह्मांड प्रभू जस छायो। जुग जुग जीव हेतु करि भायो॥
सुनियें अब निमित्त कहिवे कौ। मारग सोई तुमै जैवे को॥५३॥
धसै नीरजा द्वारैं होई। गति विमान पथ जानौ सोई॥
भीतर अंड भूमि लौं जातें। लखिहौ मध्य लोक पथि सातें॥५४॥
मथुरा मंडल मंगल भूमी। ताहि न सकै कोऊ थल जूमी॥
तहां बसौ जीवन सुखदाता। प्रभु आज्ञा पालन हित ताता॥५५॥
तबै विमान बिदा करि दीजै। जीव लहैं सुख सो विधि कीजै॥
अस कहि रत्नप्रभा गहि मौना। चित्त विचारयौ अब शुभ गौना॥५६॥
अपर विमान आय नगिचानौ। संमत यह सब को ठहरानौ॥
लखै परस्पर कछू न बोलैं। बार बार मूदै दृग खोलैं॥५७॥
नैननहीं हिय भाव जनावैं। प्रेम प्रीति अनुराग दिखावैं॥
नेह रज्जु दृढ़ बद्ध भये मन। चल्यौ चहै डग धरत न ए तन॥५८॥
इनको मन तिन तन करि बासा। तिनहूँ के मन इन तन आसा॥
मानौ इन मनतें ते जांहीं। तिन मन तें इनहूँ गति लांहीं॥५९॥
रत्नप्रभा आदिक सब आली। चढ़ीं विमान अपर सुखशाली॥
जे जे कौतुक देखन आये। निज निज जान चढ़े मुदपाए। ६०॥
उठे विमान सकल धुनि छाई। जय जय राधाकृष्ण सुहाई॥
धेनु वत्स को ऐसी रीती। मुरि मुरि पेखि बढ़ावै प्रीती॥६१॥
गति विमान वश अंतर भारे। देखि न परैं विशेष निहारे॥
उर धरि धीर पीर मन भारी। उभय दिसा गति एकै सारी॥६२॥

कहत सुनत तेई हित बातें। उमगत चित्त शिथिल गति गातें॥
ऐसें निज निज पथि दिस जांहीं। नेह प्रसंगन कहत सिरांहीं॥६३॥
अप अपने मंडल ढिग आई। शिष्टाचार परस्पर भाई॥
बिदा होय गवने निज धामा। जा मंडल जिनको विश्रामा॥६४॥
रत्नप्रभादिक सखी प्रवीना। सब कह मिलि सुख दियो नवीना॥
ऐसें मंडल च्यारि विलंघी। जमुना पार भई सखि संघी॥६५॥
देखत मंडल उभय निजालै। पूछत दंपति जन प्रतिपालै॥
महारास मंडल सुधि पाई। वन विहार करि बैठे आई॥६६॥
संध्या समै आरती वेला। पहुँची आय भयो सुख मेला॥
निज निज सेवा जाय लगानी। दंपति छवि निधि मीन पगानी॥६७॥
समै समै सेवा मन दीन्हौ। दंपति सेय सकल सुख लीन्हौ॥
परम निकुंज धाम सुखदाई। रैंन सैन दंपति करवाई॥६८॥
अंग अंग सहचरि सब लागीं। सेवा सुख रस तन मन पागीं॥
विविध वार्ता होत कहानी। उभय ओर बाढ़त मुदखानी॥६९॥
जुगलविहारी जन हितकारी। निज भक्तन चाहत सुख भारी॥
दास प्रसंग चलै सुधि आई। श्रीस्यामा बोलीं मुसुकाई॥७०॥
ए ललिते जो फल हम दीन्हौ। ताको रूप कहौ कस कीन्हौ॥
भक्त प्रेम रस सानी बानी। सुनि श्रीललिता अति हरखानी॥७१॥
बार बार बलि मस्तक नायो। श्रीमहिमा जस अनवधि गायो॥
महाराज जो श्री मन धारैं। सो विस्तार लहै अनपारैं॥७२॥
गोपेश्वर को जन्म प्रसंगा। उत्तर प्रश्न भयो जस अंगा॥
वर विमान बैठाय बिदाई। सहचरि संग दई सुखदाई॥७३॥
आदि अंत लौं जो विधि कीन्ही। श्रीप्रताप जुत सब कहि दीन्ही॥
अपर कही सो बात सुनाई। महाराज पथि की सुधि आई॥७४॥
ए सहचरी बिदा करि आईं। रत्नप्रभा ते आदि सुहाईं॥
तिन तें कही कहौ री वीरा। मारग रीति नीति गंभीरा॥७५॥
तिन सब क्रमहीं तें कहि गाई। जा जा थल जो किया सुहाई॥
भक्ति विवेक प्रेम अनुरागा। श्रद्धा नेह धर्म वर त्यागा॥७६॥
जे जे सदगुन अमित कहावैं। वरनत कविवर अंत न पावैं॥
महाराज पद रज सिर लाए। गोपेश्वर तन ए सब छाए॥७७॥

महाराज महिमा बल भारी। गोपेश्वर की रीति अपारी ॥
श्रीजू सुनि पूछैं सुख पावैं। तथा सहेली जन गुन गावैं ॥७८॥
निज भक्तन के सुनि गुनग्रामा। श्रीजू अति पायो विश्रामा ॥
ताही समै नींद दृग आंई। उठीं सखी सब मस्तक नाई ॥७९॥
गोपेश्वर चरचा सब कुंजा। छाय रही महिमा जस पुंजा ॥

दोहा—जब तब चित्त लुभाय प्रभु, सुनै दास गुन गान।
नित्यविहारी जुगल हिय, जन पर प्रेम अमान ॥ १ ॥
गोपेश्वर की रीति जब, कहैं सखी सुख पाय।
नित्यविहारी जुगल मन, सुनि सुनि अति ललचाय ॥ २ ॥

❖ चौपाई ❖

जान चढ़े गोपेश्वर आवत। श्रीप्रभु श्रीगुरु कृपा मनावत ॥
ते सुख ते रस तेइ विनोदा। चित्त विभावत लहत प्रमोदा ॥१॥
अरस परस दोउ ता रस पागे। कहत सुनत आवत अनुरागे ॥
तेज पुंज आगे दृग देख्यो। यह वैकुंठ अहै मन लेख्यो ॥२॥
ताके निकट गयो जब जाना। करत विहार लखे जग नाना ॥
तिन विमान वपु अद्भुत देख्यो। करैं वितर्क न परै स रेख्यो ॥३॥
अति आश्चरज लह्यो मन मांहीं। धाय गए नारायन पाहीं ॥
जान सरूप अनूपम गायो। आजु लगें अस डीठि न आयो ॥४॥

रमा रवन सुनि हियें विचारी। जानि परी जैसी विधि सारी ॥
सर्वाराध्य सर्वपर कारन। तिन धारी जिय जीव उधारन ॥५॥
नित्य विहारिनि श्रीकर फल जो। आए बैठि विमान विमल सो ॥
प्रभु महिमा हियमै उनमानी। कृपापात्र सर्वोपरि जानी ॥६॥
निज मर्य्यादा बढ़ावन हेतू। करि आचरन बँधावत सेतू ॥
संग लीन्ह पूजन की सामा। सकल लोक वासी सुख धामा ॥७॥
मंगल गावत बाहिर आए। देखि विमान परम सुख पाए ॥
पूजन करि सब विधि सनमाने। नित्यविहारी सम जन जाने ॥८॥
शिष्टाचार बढ़ाय परस्पर। विदा भए सब आज्ञा तत्पर ॥
श्रीपति गोपेश्वर संग दीने। चारि पार्षद परम प्रवीने ॥९॥
चल्यो विमान भयो सुख भारी। जय धुनि पूरि प्रसूत प्रचारी ॥
श्रीपति निज परिकर कहि बोधे। सर्वाराध्य जुगल प्रभु सोधे ॥१०॥

च्यारि पार्षद विवि गोपेश्वर। आवत गावत गुन परमेश्वर ॥
प्रभु महिमा गावत सुख छाये। पंचास कोटि जो जन चलि आये ॥११॥
डीठि परयौ गोलक ब्रह्मांडा। गंगाद्वार मिल्यो मुदखंडा ॥
ता मारग ह्वै कियो प्रवेशा। देखे बहुरि लोक लोकेशा ॥१२॥
सत्यलोक आयो जब जाना। विधि सुनि समाचार सुख माना ॥
पूजा करी धन्य दिन मान्यौ। कृपापात्र सर्वोपरि जान्यौ ॥१३॥

शिष्टाचार भयो अति भारी। हियें जुगल महिमा थिर धारी ॥
विदा भए सुख लै दै पूरो। जय धुनि सहित सुवन झरि भूरो ॥१४॥
सकल ठौर फैली यह बाता। सुनि गुनि सब रमगत मन गाता ॥
सत्यलोक तें चल्यौ विमाना। दरसन हेत संग बहु जाना ॥१५॥
जा जा लोक निकट जब आवत। पूजा मान अधिकतर पावत ॥
देववृन्द लखि होंहि सुखारे। अरस परस बाढ़ैं मुद भारे ॥१६॥

चलै जहाँ ते ते संग लागें। अधिक अधिक पावत सुख आगें ॥
देखि देखि गोपेश्वर धाँहीं। सकल देव मन माँहिं सिहाँहीं ॥१७॥
अहो रूप गुण तेज प्रभाऊ। जस महिमा अस लही न काऊ ॥
कीरति विसद पूज्यता भारी। साधु विभूषण रहनि अपारी ॥१८॥
जे जे गुण इन मै थिर देखैं। भरि ब्रह्मांड कहूँ नहि लेखैं ॥
का जानै कैसौ तब किन्हो। जा फल तें ऐसो तन लीन्हौ ॥१९॥

ऐसें निज निज रुचि अनुमानी। कहैं सुनै नाना विधि बानी ॥
च्यारि पार्षद जे संग आए। तिन विधि तें सब गुन कहि गाए ॥२०॥
ता थल ऋषिगण सुनत रहे जे। सुख हित जान संग आए ते ॥
देववृन्द जब ऐसे भाषैं। गोपेश्वर सुख सब अभिलाषैं ॥२१॥
तब ते ऋषिगन कहै बखानी। अहो सुरन की लखौ अयानी ॥
गोपेश्वर को रूप न जानै। जो ए कहै सो कौन प्रमानै ॥२२॥

इनकै बल तप जज्ञ दान अति। हरि प्रापक जो रीतिन सों मति ॥
बड़े कष्ट करि स्वर्ग आए। सत्यलोक लौं के सुख पाए ॥२३॥
कर्म छीन पुनि गर्भ निवासा। हियें सोइ दुख रूप दुरासा ॥
ता बस कर्म करै बहु भाँती। फिरै सकल जग लहैं न साँती ॥२४॥
गोपेश्वर सुख देखि सिहाहीं। मंदन गहैं लाज मन माँहीं ॥
नित्यविहारी जुगल प्रभू जे। जिन पर अपर ईश नहि दूजे ॥२५॥

सर्वाराध्य सर्व गति जोई। जिनकी आज्ञा लंघै न कोई॥
भूनर्तन ब्रह्मांड अपारा। बनै मिटैं इच्छा व्यवहारा॥२६॥
काल प्रकृति इच्छा आधीना। अपर जीव लेखै को दीना॥
ब्रह्मा कोटि कोटि विधि करहीं। होय सोई जस इच्छा धरहीं॥२७॥
अमित कोटि ब्रह्मांड समूहा। छोटे बड़े जीव जत जूहा॥
इच्छाधीन रहैं निसिवासर। जुगलविहारी ईश परावर॥२८॥

तिन प्रभु इच्छा सो फल रूपा। गोपेश्वर तन भई अनूपा॥
जीव उधार हेत मन कीन्ही। सो पदवी इन कह प्रभु दीन्ही॥२९॥
अपर ईश निज पद अभिमानी। माया वस परि सो नहि जानी॥
या तें देह गहै पुनि त्यागैं। बहुरि कृपा तैंसी अनुरागै॥३०॥
गोपेश्वर इच्छा को अंगा। जुगल कृपा बल माया भंगा॥
अपर जीव सब निज सुख चाहै। इनकै पर हित चित्त सदा है॥३१॥

इन समान एई इत दीसै। कहै सस हम विस्वावीसैं॥
ए आये निज सम सुख दैवैं। सुनौ देव जो है मन लेवैं॥३२॥
नित्यविहारी सब सुखधामा। जिह्वा रटौ जुगल प्रभु नामा॥
तिनकी कृपा सदा उर भावौ। नर तन मिलै सुइहै मनावौ॥३३॥
जुगलविहारी करुणासागर। जतन जीव हित करी उजागर॥
गोपेश्वर आये इहि हेतू। सुनि विचार गहियै मन चेतू॥३४॥

भरतखंड पुहुमी पर जाई। प्रभू दया वस नर तन पाई॥
गोपेश्वर मुख लै उपदेशा। करि अभ्यास समुझि सो देशा॥३५॥
हिय अनुराग जुगल पद पैहौ। इनतें अधिक सदा सुख लैहौ॥
नित्य विहार प्रभू पद धामा। अनायास मिलिहै विश्रामा॥३६॥
यामै गोपेश्वर दृढ़ कारन। ए आए इत जीव उधारन॥
ऐसें भाषि सकल मुनि बानी। बहुरि मौनता जीहा आनी॥३७॥

लोक लोकवासी जे आए। मुनि वृत्तांत हियें सुख छाए॥
सबके मन सोई विधि आई। करिये वेगि जतन दृढ़ जाई॥३८॥
जय गोपेश्वर कहि मन हरषैं। चहूँ ओर कुसुमावलि वरषैं॥
गोपेश्वर तन मन सकुचावैं। कियो न कछू जथा ए गावैं॥३९॥
जुगलविहारी महिमा भारी। बार बार सिर नाय सभारी॥
ऐसे कौतुक अमित प्रकारा। आवत करत लहत सुख भारा॥४०॥

प्रेम विवस गोपेश्वर टेरैं। जुगलविहारी गति मति मेरैं॥
सबही के मुख निकसत सोई। दिसा विदिसा प्रतिधुनि होई॥४१॥
पूजा लेत देत सुख भूरे। आये लोक लोक लखि रूरे॥
देखि परी मथुरा सुख रासी। जो श्रीगुरु मुख गाय प्रकासी॥४२॥
गोपेश्वर लखि दृग सुख लीन्हौ। हस्त जोरि सिर नम्रित कीन्हौ॥
शोभा सकल प्रकार अपारी। अधिक एकतें एक निहारी॥४३॥
जमुना निकट बहै आनद मै। परसत नीर निवृत्त होत मै॥
तहां उतरि तन मज्जन कीन्हा। सहित समाज सकल सुख लीन्हौ॥४४॥

बहुरि आश्रम हेत विचारी। भूमि सकल ऋतु जो अति प्यारी॥
कछू दूरि चलि कै थल देखी। सर्वानन्द उदोत विशेषी॥४५॥
तीनि दिसा जमुना परिवारैं। वृक्ष जाति संघटित अपारैं॥
तरु संपति सब दिन इक सारी। अलि द्विजगन सेवैं शुभकारी॥४६॥
वैर विहाय जीव सब रहहीं। परमानन्द सदा उर लहहीं॥
फूलै कंज सरोवर नाना। क्रीड़ैं हंस करैं जलपाना॥४७॥

त्रिविध समीर बहै सब काला। छिन छिन बढ़ै प्रमोद विसाला॥
अनवधि गुण जे ता थल माहीं। बरनै विबुधन गाय सिराहीं॥४८॥
भावी नित्य विहार जहाँ है। को शुभ वस्तु न प्रगट तहाँ है॥
गोपेश्वर लखि अति मन मानो। सो थल आश्रम काज प्रमानी॥४९॥
सकल देव मिलि उटज बनावैं। सेवा निज निज प्रथक जनावैं।
आश्रम रचना करि अति भारी। दण्ड एक मै सकल सवारी॥५०॥
विविध भांति की सोभा सोहैं। सब छिन सुखप्रद चित्त विमोहैं॥
सब देवन मिलि विनय सुनाई। काजै सफल हस्त निपुनाई॥५१॥

चलि कै आश्रम मध्य विराजैं। दीजै यह सुख सकल समाजैं॥
गोपेश्वर सुनि आनद पायो। भाव सुरन को सो मन आया॥५२॥
बैठे आश्रम मध्य सुखारे। सकल समाज लसै परिवारे॥
मुनिवर वृद्ध देव दिगपाला। जानि अपूरव समै विसाला॥५३॥
गोपेश्वर मस्तक अभिषेका। किये जथा विधि सहित विवेका॥
दान मान दै सब सनमाने। जे जे जथाजोग्य उनमाने॥५४॥
तब सही मिलि सबै विचारयो। संमत यह निश्चै निरधारयो॥
अब चलियै निज निज गृह ओरी। एऊ सुख पावैं या ठौरी॥५५॥

कछू काल बीते पुनि ऐहैं। जो उर बिथा सो गाय सुनैहैं ॥
ऐसें समुझि राखि मन मांही। विनय करी गोपेश्वर पाहीं ॥५६॥
अब करुणा करि आज्ञा दीजै। सुखद निवास आप इत कीजै ॥
बहुरि आय पद वंदन करिहैं। कृपा रावरी सब सुख भरिहैं। ५७॥
वचन विलास भयो दोउ मांही। परमानन्द लह्यौ मन मांही ॥
बिदा भये सुरवृन्द सुखारे। भरि प्रमोद निज सदन सिधारे ॥५८॥
लोक लोक चरचा यह छाई। कहै सुनै तृष्णा अधिकाई ॥
गोपेश्वर आश्रम सुख पाई। करैं विमान बिदा मन आई ॥५९॥
षोड़स पूजन को उपचारा। साजि थार सो लै कर धारा ॥
आए वर विमान के पाहीं। निरखि भयो सुख अति मन माहीं ॥६०॥

शीश नाय पूजा विधि कीन्हीं। सप्त बार परिदच्छिन दीन्हीं ॥
दंडप्रणाम किये बहु बारे। भक्ति सहित मुख वचन उचारे। ६१॥
अहो विमान धन्य तुम देहा। प्रभु सेवा सब संमत एहा ॥
प्रभु कौ रूप सदा उर धारौं। धन्य जन्म सब भांति तुम्हारौ ॥६२॥

प्रभु आज्ञा पालन के हेतू। कियो आय हम इहां निकेतू ॥
जो वृत्तांत लख्यो तुम नैना। जाय सुनाउ बसो कांह बैना ॥६३॥
जा विधि करुणा मम पर होई। जतन विचारि कहब तुम सोई ॥
या विधि प्रेम भरे उर दोऊ। चल्यौ विमान बिदा ह्वै सोऊ ॥६४॥
परम निकुंज धाम जब जाना। पौहुच्यौ जाय लह्यौ सुख नाना ॥
नित्यविहारी जुगल स्वरूपा। सहचरि संग समाज अनूपा ॥६५॥

काहू समै जान तिहि राजै। मंडल अपर जायवें काजे ॥
तबतें समाचार सब गायो। मारग आश्रम जो इग आयो ॥६६॥
जुगलविहारी महिमा गाई। गोपेश्वर जिमि पूजा पाई ॥
प्रभु सुन्यौ निज जन सनमाना। हियें हरष पायो विधि नाना ॥६७॥
गोपेश्वर की चरचा बाढ़ी। प्रभु उर उपजी करुणा गाढ़ी ॥
प्रभु जिय भक्त सदा अति भावैं। दास प्रभू पद बल सुख पावैं ॥६८॥

दोहा—बोले सनत्कुमार तब, सुनि गोपेश्वर बैन।
यह प्रसंग जो सकल तुम, कह्यौ परम सुख दैन ॥१॥
रत्नप्रभा पुनि जान कौ, जो भाख्यो वृत्तांत।
सो जान्यौ तुम कौन विधि, कहिये मोहि नितांत ॥२॥

अपर शंक मो मन भई, सो सुनिये चित लाय।
माया मोहित जीव उर, जथा भांति भ्रम जाय ॥३॥
जब तें आपनि बास इत, राउर भयो अखंड ॥
जस महिमा कीरति अधिक, व्यापि रही ब्रह्मंड ॥४॥

यह जानत सब कोय जग, जीव उधारन हेत ॥
गोपेश्वर आज्ञा प्रभू, कीन्हौ इतै निकेत ॥५॥
आदि अंत लौ रीति यह, जो भाखी मोहि पांहिं।
अब तांई कहुं अनत हूँ, गाय कही कै नांहिं ॥६॥

जौ कीन्ही उपदेश यह, पद्धति दया विचारि।
कहौ लोक तिहि को गयो, संसै बृहति निवारि ॥७॥
जा पथ आगे जात कोउ, समाचार सो पाय।
निसिवासर जन पथिक जे, ता मारग सब जाय ॥८॥

पावत कथनि प्रमाण दृढ़, जौ लहिये दृष्टांत।
परंपरा सबके हिये, अचल रहै सिद्धांत ॥९॥
सनत्कुमार अपार हिय, ज्ञान भक्ति वैराग।
गोपेश्वर तिन मुख बचन, सुनि उमग्यो अनुराग ॥१०॥

❖ चौपाई ❖

सनत्कुमार परम सुख दीन्ह्यौ। प्रश्न सकल जग हित लै कीन्ह्यौ ॥
मोहि देत अतिसै जस भारी। मै सब जानो रीति तिहारी ॥१॥
हंस रूप श्रीकृष्ण बखानी। श्रीमुख तें तुम पद्धति जानी ॥
परमधाम गोलोक मध्य जो। वृंदा विपिन निकुंज कहै सो ॥२॥

राधाकृष्ण जुगल वपुधारी। विहरै नित्य विहार विहारी ॥
जिनकी आज्ञा वश सब रहहीं। ईश ईश ईशन पर अहहीं ॥३॥
जुगल रूप सेवा अधिकारी। अष्ट अंगजा अंगी सारी ॥
तिन मै रंगदेवि करुणानिधि। जुगल वस्य करिवैं जिनकी विधि ॥४॥

श्रीगुरु मोहि कियो उपदेशा। पद्धति श्रीललिता निस्सेसा ॥
दर्शन हित मै मन ललचायो। तहां न ताको उत्तर पायो ॥५॥
परम गुरू श्रीरंगदेवि जू। आरतबंधु न काहि सेवि जू ॥
तिनकी कृपा जुगल प्रभु देखे। दीनदयाल तेई अवि लेखे ॥६॥

तहाँ सुन्यौ मै अस व्यवहारा। गुरु मुख तें निर्णय निरधारा ॥
सनत्कुमार सुनौ मन लाई। बात सकल जीवन सुखदाई ॥७॥
कलि जुग अमल होय सब ठांई। प्रगट रहै हम कोऊ नाहीं ॥
हमरौ अंतरद्धान निहारै। तब कलिजुग धरनी अतिचारै ॥८॥
मेटि सकल प्राचीन सुपंथा। जीव लगावै प्रेरि कुपंथा ॥
जीव चलै सब जमपुर जाहीं। नर्क दंड अति दुःख लहांहीं ॥९॥
यह अनीति कलिजुग की देखो। रंगदेवि हिय दया विशेषी ॥
जुगल प्रभू अनुशासन लेई। भरत खंड प्रगटैंगे तेई ॥१०॥
दक्षिण दिशा द्रविड शुभ देसा। मूगोपतन ग्राम विसेषा ॥
द्विजकुल तन धरि पावन करिहैं। आदि अचारज संज्ञा धरिहैं ॥११॥
नित्य सनातन जो निज नियमा। जुगल पदारविंद दृढ़ प्रेमा ॥
सोई नेम जिनकैं आनद पद। यातें नियमानंद नाम वद ॥१२॥
बाल अवस्था तैं ब्रज ऐहैं। रीति सनातन अपनी गैहैं ॥
गोवर्द्धन गिरि निकट सुहायो। निंब ग्राम आश्रम जग गायो ॥१३॥
तहां बास करि दृढ़ उर धारी। वृंदा कानन नित्य विहारी ॥
सेवा सहचरि भाव प्रकासा। राधाकृष्ण नाम विश्वासा ॥१४॥
जुगल माधुरी सिंधु समाने। निसिवासर बीतत नहि जाने ॥
जीव दया अतिसै जिय धारी। परंपरा मर्य्याद सभारी ॥१५॥
करि उपदेश सकल जग तारौं। संप्रदाय सब काल प्रचारौं ॥
संप्रदाय तासौं बुध कहंही। हरिमुख मंत्र श्रवण निज लहंही ॥१६॥
हरिके शिष्य तिन्है सब गावैं। ते निज शिष्य न सोई सुनावैं ॥
परंपरा पोढ़ो मिलि आवै। धर्म सनातन इहै कहावै ॥१७॥
जाकौ बेद नित्य प्रतिपादै। संप्रदाय सोहै निर्वादै ॥
निज इच्छा तें जो मत ठानैं। आधुनीक तिहि जग परमानै ॥१८॥
परंपरा बिनु पंथ चलावै। पंथाई श्रुति संग न पावै ॥
राजमार्ग तजि ऊबट धावै। जो समर्थ सो ज्यौं त्यौं पावै ॥१९॥
जो ताके अनुगामी होवैं। भवार्णव भ्रमि सर्वस खोवैं ॥
नियमानंद प्रभू अस नीता। करिहैं चित्त विचारि पुनीता ॥२०॥
संप्रदाय हित जब मन धारयौ। परंपरा संबंध विचारयौ ॥
हमरे मत मै जो अनुकूला। गहै तासु मत दृढ़ श्रुतिमूला ॥२१॥

करि विचार निर्धार कियो अस। सनकादिक संमत हमरौ तस ॥
हंस रूप श्रीकृष्ण प्रबोधे। करि उपदेश शिष्य कहि बोधे ॥२२॥
द्वैताद्वैत प्रभु मत दीन्हौ। भेदाभेद सोई इन चीन्हौ ॥
अंगी अंग ताहि पर मानौ। स्वामी सेवक तथा विजानौ ॥२३॥
निर्विशेष सविशेष जुगल हैं। यातैं मत अविरोध प्रबल हैं ॥
राधाकृष्ण हमारे स्वामी। सनकादिक तिनके अनुगामी ॥२४॥
अहै अंगजा रूप हमारौ। अंगी अंग लहैं निरधारौ ॥
सकल अंग हमरे जे इनके। मिलैं एक थल भेद न जिनके ॥२५॥
यातें सनकादिक मत लीजै। संप्रदाय अपनी दृढ़ कीजै ॥
जे जग जीव गहैं यह धर्मा। अनायास पावै तें शर्मा ॥२६॥
जाको नाम रूप ताही को। लाधै सुमिरि धाम वाही को ॥
ऐसें माया फंद निवारैं। करि यह जतन सदा जग तारै ॥२७॥

दोहा—परम निकुंज स्थान मै, प्रभू गत सैन।
अष्ट अंगजा सखी सब, करी सभा सुख ऐन ॥१॥
श्रीललिता उपदेश मोहि, किन्हौ विविध प्रकार।
सनत्कुमार तबै सुन्यौ, यह संवाद उदार ॥२॥
रंगदेवि पदरज कृपा, मै देख्यो दृग इष्ट।
परम गुरू ते मम अहैं, तुम सब भांति अभीष्ट ॥३॥
मै श्रीगुरु मुख तें सुन्यौ, यह वृत्तांत अनूप।
तुहैं परम जस देहिंगी, रंगदेवि सुख रूप ॥४॥
सनत्कुमार तुम्हार जस, व्यापि रह्यौ श्रीधाम।
प्रश्न करत हौ प्रेम बस, मोहि देन विश्राम ॥५॥

◆चौपाई◆

मै जानत हौं रूप तुह्मारा। सुनि राख्यौ जस प्रथम अपारा ॥
कृपा करी अतिसै मै जानी। प्रश्न हेतु लै भाखो बानी ॥१॥
अविदित वस्तु कहा तुम तें जो। कहै अपूरबता लै हमसो ॥
साधुमौलि तिनकी अस रीती। छिन छिन अनवधि प्रभु पदप्रीती ॥२॥
जद्यपि प्रभु गुन नीकै जानै। तौ सुनत अतिसै रुचि मानै ॥
जो मेरे मुख सुनि सुख लहियै। कहौं जथा मति मन गुनि गहियै ॥३॥

रत्नप्रभा औ जान प्रसंगा। पूछौ आप तासु गति अंगा॥
करियै मोर वचन परिमाना। श्रीगुरु कृपा सकल मैं जाना॥४॥
अपर आप जो पूछी बाता। सो सुनियें जनमुख सुख दाता॥
मम उपदेश पाय बहु जीवा। सुखी भए लहि धाम अतीवा॥५॥
जौ सबकी कछु रीति बखानौ। बीतै काल अमित अस जानौ॥
तिन मैं एक दोय कहि गावौं। यथा सिंधु लघु बूंद लखावौं॥६॥
त्रिगुणमई सब सृष्टि कहावैं। सात्विक राजस तामस गावैं॥
गुणाधीन जीवन के रूपा। उत्तम मध्य अधम निरूपा॥७॥
उत्तम अधम दोय जौ गहियै। मध्यम मध्यम आपुतें लहियै॥
मैं उपदेशे जीव अनंता। परम धाम ते गये समंता॥८॥
तिन मैं उत्तम अधम बखानौ। ते सुनि मध्यम मन उनमानौ॥
उत्तम की गाथा अब सुनिये। आगें अधम कहै अस गुनियें॥९॥
जे मनु अहैं चतुर्दस भूपा। सृष्टि क्रिया तिन हस्त अनूपा॥
तिनमैं जो स्वारोचिष नामा। सुनौ तासु गुन अति अभिरामा॥१०॥
च्यारि मिले जुग चौकरि कहियै। ते चौकरी बहतरि गहियै॥
इतनै काल किन्हति राजू। पाल्यौ तीन लोक सुख राजू॥११॥
आयु अवधि जानो नियरानी। तन धन दिसि आई मन ग्लानी॥
चित्त भयो अतिसै परितापा। व्यर्थकाल खोयो करि दापा॥१२॥
दस इंद्री वर विषय कहावैं। सूकर श्वान सबै ते पावैं॥
हमहूँ तिन हित आयु गवाई। हौं धिक् लाज न सुर तन पाई॥१३॥
अब जो गई सो हाथ न आवै। रही शेष कछु तथा न जावै॥
अस विचार उपज्यौ मन मांहीं। कौन भाँति निश्चै पद जांहीं॥१४॥
अब लौं विषम रूप पहिचान्यौ। को परात्पर सो नहि जान्यौ॥
सकल प्रजा हम कह प्रभु मानै। हम ब्रह्मातें अधिक न जानै॥१५॥
विधि निज सुख कैवार बखानौ। अपनौ जन्म पद्म परिमानौ॥
पद्मनाभ नारायन कहहीं। नार अयन जे नित सुख रहहीं॥१६॥
पुनि वैकुंठ लोक विधि देख्यौ। रूप चतुर्भुज सोइ सरेख्यो॥
तिन पर अपर ईश नहि कोई। जो परात्पर कहियै सोई॥१७॥
तौ तिन पाय गर्भ पुनि बासा। यह निहारि उपजत मन त्रासा॥
श्रीमुख श्रुति संमत अस गावैं। जीव ईश लहि गर्भ न पावैं॥१८॥

गर्भ लह्यौ जय विजय प्रचारी। अधम निशाचर अघ तन धारी॥
ताहू मैं संसै अति होई। दोय बार मिलि पुनि तन सोई॥१९॥
का जानै तीजै अब कैसा। जो ह्वैहैं सो देखब तैसी॥
जाहि पाय माया संग छूटै। सर्व काल संश्रित भय टूटै॥२०॥
यह संसै मन कौ को मेटै। अचल वृत्ति करि चित्त समेटै॥
स्वारोचिष मनु मन धरि धीरा। विनु सत्संग मिटै नहि पीरा॥२१॥
सकल ठौर कीजै परिजटना। साधु संत मिलि हूहै जतना॥
सनत्कुमार फिरन ते लागे। जहाँ तहाँ पूछैं अनुरागे॥२२॥
चित्त जथारथ बोधन पावैं। मनु सुख राखि अनत पुनि जावैं॥
एक समय मम आश्रम आए। जीव चराचर लखि सुख पाये॥२३॥
जुगल स्वरूप धरे मन मांहीं। तिन जीवन के छिन इम जाहीं॥
जुगलानंद अमी भर बरसै। सुखद भूमि आश्रम अस दरसै॥२४॥
मनु मन उपजी शांति विशेषा। चमत्कार कछु है या देसा॥
श्रद्धा प्रीति भरे मनमाहीं। मंद मंद आवत मो पांहीं॥२५॥
निकट आय निज नाम सुनाई। करि प्रणाम बहु विनय जनाई॥
कुशल प्रश्न अति शिष्टाचारा। भयो मोदप्रद हित व्यवहारा॥२६॥
स्वस्थ चित्त ह्वै बैठे दोऊ। लच्छन तन मन निरखैं सोऊ॥
मनु मन सब विधि भई प्रतीती। अधिकारी लखि मम उर प्रीती॥२७॥
मनु निज मन को हेतु जनायो। अमित प्रकार प्रसंग सुनायो॥
जे जे संसै उर धरि राखे। ते सर्वांग प्रकट कहि भाषे॥२८॥
सकल प्रकार विथा मन गाई। मति विस्तार जहाँ लगि पाई॥
सर्वाराध्य सर्व पर जोई। जा पर कारन अपर न कोई॥२९॥
कीजै वेगि जतन प्रभु सोई। ता पद प्रापति मो दृढ़ होई॥
आरत जानि कृपा अब कीजै। निज पदरज मम मस्तक दीजै॥३०॥
अस कहि चरन परयौ ह्वै दीना। मैं ऊँ अति अधिकारी चीन्हा॥
सनत्कुमार सुमिरि गुरु चरना। ता प्रति हेतु सकल मै बरना॥३१॥
जो प्रसंग मै तुम तें गायो। आदि अंत सब अंग सुहायो॥
सो पद्धति मनु कर्ण सुनाई। तिन हू तहाँ प्रीति अति पाई॥३२॥
एक मास याही थल कीन्ही। सेवा दंपति जस मनु चीन्ही॥
सनत्कुमार सुनौ मन लाई। जाके सुने जगत भ्रम जाई॥३३॥

जुगल प्रभू अस करुणा कीन्ही। मास गयें निज संनिधि दीन्ही ॥
अर्ध रात्र कौतुक अस जानौ। आयो वर विमान परिमानौ ॥३४॥

मुख्या सखी विसाखा केरी। ते विमान पर रही घनेरी ॥
वसनाभरन पुष्प मनि नाना। लिये हस्त गावत कल गाना ॥३५॥
स्वारोचिष सोई तन जानौ। सहचरि अंग भयो परि मानौ।
भूषन वसन तासु अंग साजे। वरषि प्रसून वाद्य वर बाजे ॥३६॥

नाम कह्यो चंपा अस गाई। लह्यौ प्रमोद सबन उर लाई ॥
मै ढिग जाय लखी सो लीला। धन्य जुगल प्रभु करुणा सीला ॥३७॥
मो तें तिन तें शिष्टाचारा। सनत्कुमार भयो सुख भारा ॥
चंपा निकट लखी मै जाई। कहा कहौं शोभा अधिकाई ॥३८॥

माधवि मो तन कह्यो जनाई। गोपेश्वर सुनियें सुख पाई ॥
जूथ विसाखा जू बहु जानौ। एक जूथ पालक इन मानौ ॥३९॥
तुम्हरी कृपा लह्यौ पद ऐसो। गाय न सके वेद विधि तैसो ॥
अस कहि बिदा भई लै जाना। उन हमहूं पायो सुख नाना ॥४०॥

दोहा—स्वारोचिष मनु स्वर्गपति, सकल देव सिर मौर।
उतम अधिकारी कह्यो, जिन पाई अस ठौर ॥१॥

यह पद्धति लव निमिष हू, जै मन मै थिर होय।
सनत्कुमार श्रीजुगल पद, लहै न संसै कोय ॥२॥
प्रभु महिमा दिसि हेरि नित, सुगमहोत सब रीति।
अपने कर्मन ओर लखि, जग पावत अति भीति ॥३॥

जुगल नाम जीहा सुमिरि, महा अधम इह बार।
सनत्कुमार अपार भव, सिंधु होत सो पार ॥४॥
प्रश्न कियो तुम जगत हित, मोहि परम सुख दानि।
एक कह्यौ दूजौ सुनौ, गावौ ताहि बखानि ॥५॥

❖ चौपाई ❖

मथुरापुरी प्रबल अति भूमी। जाकी समता अपर न जूमी ॥
कर्म कियें तह अच्छे होई। करै शुभाशुभ जा विधि जाई ॥१॥
कर्मक्षेत्र गावै सब कोई। उपजै बीज परै थल सोई ॥
सुनौ तहाँ की कथा सुहाई। या प्रसंग मै जो सुखदाई ॥२॥

बसै तहाँ द्विजवर इक पंडित। प्रीति प्रभू पद हियें अखंडित ॥
धर्म वैष्णवं तिन कौ भारी। प्रभू कृपा जिन तत्व विचारी ॥३॥
आगम निगम हेत सब सोजे। किये तथा ते अपर प्रबोधे ॥
सारङ्गेश नाम तिन जानौ। मूरति परम धर्म की मानौ ॥४॥

सौकर नाम पुत्र तिन पायो। जो श्रुति पाप सिंधु कहि गायो ॥
खेलै शिशु लीला अस क्रीड़ा। पेखि लगै अब उपजै व्रीड़ा ॥५॥
ज्यौं ज्यौं बढ़त अवस्था आवै। त्यौं त्यौं पाप मेरु प्रगटावै ॥
द्यूत कर्म अतिसै रुचि कीन्ही। धन हित चौर वृत्ति जिन लीन्ही ॥६॥
गृह धन छीन भयो जब जान्यौ। पर धन सब अपनौ करि मान्यौ ॥
शिशु कन्या भरमावै घातै। धन अपहार करै सुख रातै ॥७॥

भ्रष्टाचार सकल तिन धारयौ। भक्षाभक्ष न कछू विचारयौ ॥
मद्य मांस ते आदि अमेधा। तिन तें पुष्ट करै तन मेधा ॥८॥

कछू अवस्था जब अधिकानी। वेश्या तिन सरवस करि मानी ॥
धन के हेत पाप अति भारी। करै विघात सदा नर नारी ॥९॥
नाम पांसुला गुण विख्याता। वेश्या रूप अधिक मृदु गाता ॥
जमुना पार रहै सब काला। विषयी नर ताके प्रतिपाला ॥१०॥

सौर सुने ताके गुन भारें। जाय तहां निज तन मन वारे ॥
ताके भवन रहै निसिवासर। धन अपहार करैं जा ता थर ॥११॥
एक दिना वेश्या सो बोली। तेरी तिया करौं मै गोली ॥
धन अधिकाय जाय जब ल्यावौ। तौ मेरो अंग परस न पावौ ॥१२॥
सौर कही सब ऐसैं करिहौं। तोर वचन गुरु सम उर धरिहौं ॥
सौर तबै चलि निज गृह आयो। सकल कुटुंब अधिक भय पायो ॥१३॥

सत्कुल जन्म सील गुन वारी। धर्म देह देखी निज नारी ॥
ताहि ताड़ना दै धन चाह्यौ। वेश्या दासी करौं सुनायौ ॥१४॥
माता पिता कुटुंब समेता। सबहीं कष्ट लह्यौ अतिचेता ॥
तिन मिलि संमत एक विचारयौ। सौर बाँधि नीकैं करि मारयौ ॥१५॥

लाग्यो प्राण देन हठि जबहीं। धर्म लोक भय छोड़्यो तबहीं ॥
सौर चल्यौ वेश्या घर आयो। माता पिता ताप अति पायो ॥१६॥
असत्प्रजा देखी दुखदाई। तिन अतिसै प्रभु कृपा मनाई ॥
भयो विराग सर्व सुख हेतू। ते वन गवने त्यागि निकेतू ॥१७॥

सौर गये वेश्या के तीरा। रीतौ देखि भई तेहि पीरा॥
क्रोध भरी बोली अस बानी। नीच तुच्छतर ताहि बिजानी॥१८॥
अरे धूर्त्त शठ वंचक पापी। दुष्ट मूढ़ मिथ्या आलापी॥
आगें आव वदन तव जारौं। धूरि झोंकि जूती बहु मारौं॥१९॥
जो कहि गयो सो वस्तु कहां है। जा अवमान्यौ सदन जहां हैं॥
ऐसें कहि भृकुटी सो तानै। सौर लाक त्रय सूने जानै॥२०॥
कंपित अंग वचन नहिं आवै। मनमैं जुक्ति अनंत विभावै॥
जा विधि अति प्रसन्न यह होवै। कृपा कटाक्ष मोरि दिसि जोवै॥२१॥
बोल्यौ अस विचारि मन मांहीं। तुम बिन मोहि सरन कोउ नाहीं॥
धन अति भार भयो मग मांहीं। धरा गाड़ि आयो तव पांहीं॥२२॥
वेश्या मन उपज्यो कछु लोभा। बोलो बहुरि जनावत क्षोभा॥
अरे कितव जो तू परिमानै। को अस मंद सत्य करि जानै॥२३॥
सौर शपथ कोटिन विधि खाई। अल्प प्रतीति तासु उर आई॥
चलि अब धरी कहां सो देखैं। तौ बानी तेरी फुर लेखैं॥२४॥
पैले पार धरी सो जानौ। चलिहै भोर निसागत मानौ॥
सुनि वेश्या उर अति रिसिआई। अरे क्रूर तें मरु कहुं जाई॥२५॥
सौरा त्रास वस ह्वै अस भाषें। चलौ अबै जौ मन अभिलाषैं॥
चले वेगि लोभी दोउ कामी। दुस्तर जमुना देखो सामी। २६॥
बेरा बाँधि उतरि इत आये। काम लोभ दोऊ मन छाये॥
कहै पांसुला सौर लवारे। देखैं ठौर कहां धन धारे॥२७॥
सौर कही बैठो तुम या थल। लै आवत मै अबै एक पल॥
लोभाधीन होय तहं राजी। सौर उपाय चित्त अस साजी॥२८॥
मथुरा भीतर वेग चलौं अब। खोजौं पतन बड़ो धनी सब॥
आधी राति आसुरी वेला। भूत पिशाच करै बहु खेला। २९॥
सौर निशंक चल्यौ मन माहीं। काम अंध पेखत कछु नाहीं॥
सौर शरीर पुंज अघ भारी। धरनी ताहि न सकै सँभारी॥३०॥
देखन प्रेत असुर सब भागैं। त्रास गहैं जिनि पातक लागैं॥
जा जा ओर सौर तन जाई। सो थल पाप रूप दरसाई॥३१॥
परसि सौर तन वायु जात जित। सकल जीव मन असुचि होत तित॥
ऐसे मथुरा बीथी डोलै। महा अधम पर धन चित लोलै॥३२॥

पैठ्यो काहू धनी अगारा। देख्यौ वित्त धरयो बहु भारा॥
हाटक मुद्रा मन भरि लीन्ही। सुरति पांसुला तन दिसि कीन्ही॥३३॥
आवत मग आनद उर छायो। अब सो करियै मो मन भायो॥
निकस्यो जबही मथुरा बाहिर। मिले चौरगण लखि धन जाहिर॥३४॥
सौर अकेलौ ते बहु कोरी। मारयौ बहुत लियो धन छोरी॥
सौर अचेत परयौ ता ठामा। चोरन कियो अनत विश्रामा॥३५॥
तिन ता धन को भाग लगायो। निज निज अंस सबन मिलि पायो॥
तिनमै एक पांसुला मीता। तें निज मन कारज अस चीता॥३६॥
चलियै अबै तासु के भवना। कछू द्रव्य दै कीजै वरना॥
इहां पांसुला धन हित लागो। बैठी सोचै कष्ट अभागी॥३७॥
निज मति की निंदा अति भावै। सौर ओर मन क्रोध बढ़ावै॥
ता छिन मिल्यौ चोर सो जाई। जो चाहत मारग सो पाई॥३८॥
देख्यौ विपुल वित्त निज पासा। निशा शेष उपजी मन त्रासा॥
ते दोऊ मिलि पारै गमने। वेश्या सदन जाय सुख वरने॥३९॥
सनत्कुमार सौर की बाता। सुनियें जथा भई सुखदाता॥
कामाधीन होय नर जोई। ताकैं अनहोनो नहि कोई॥४०॥
सौर विचार करै मन माहीं। मोहि अधार अपर कोउ नाहीं॥
गयो वित्त अतिसै तन पीड़ा। ता ढिग चलत लहत मन व्रीड़ा॥४१॥
उठ्यौ धारि साहस अति गाढ़ौ। ज्यौं त्यौं कष्ट सहित ह्वै ठाढ़ौ॥
लखै ताहि तन दुःख नसाई। करिहै सो जो वा मन भाई॥४२॥
अस कहि चल्यौ धरत पग डगमग। एक पांसुला मै देखै जग॥
तहां आय सो जबै न देखी। परयौ धरनि मुरुछाय विशेखी॥४३॥
जथाकथंचित् लहि तन ज्ञाना। वाय छिन्न ह्वै सकल भुलाना॥
धावै गिरै उठै तन तारै। ऊंचे स्वर पांसुला पुकारै॥४४॥
रोदन करै विकल मुरुझावै। कष्ट अपार पार नहि पावै॥
घूमत आयो आश्रम मेरें। बार बार आरत सुर टेरैं॥४५॥
ताकौ शब्द परयो मम काना। जानि दुखी मन अति अकुलाना॥
जौ देखौं ताके ढिग जाई। दशा प्रमत्त कष्ट अधिकाई॥४६॥
कोन्हौ भांति अनेक विचारा। कीजै कौन इहां उपचारा॥
श्रीगुरु कृपा लही मति ऐसी। सनत्कुमार सुनो तुम तैसी॥४७॥

राधा नाम सुनायो करणा। सौर भयो अतिसै सुचि वरणा ॥
अंतःकरण शुद्धता छाई। प्रभु पद प्रीति बढ़ी सुखदाई ॥४८॥
मै देख्यौ ता उर अधिकारा। कह्यो सकल पद्धति व्यवहारा ॥
सुखद माधुरी लहरि प्रसंगा। आदि अंत वरन्यौ सब अंगा ॥४९॥
सेवा सौर समै पहिचानी। लाग्यौ करण जुगल मुदखानी ॥
दंपति पद सरोज मन लाग्यौ। सौर तहां निसि वासर पाग्यौ ॥५०॥
जौ कछु प्रश्न करै मो पाहीं। उत्तर कहौं शंक मन माहीं ॥
इतनौ भयो तहां परिवेसा। समुझि परयौ नीकैं सो देसा ॥५१॥

मोरे चित्त मोद अति छायो। सौरभ ले निश्चल पद पायो ॥
कछू न्यून दिन मास बितानौ। अचरज भयो महा परिमानौ ॥५२॥
वेला भोर ब्रह्म जो गाई। प्रगट्यौ वर विमान तहँ आई ॥
रत्नप्रभा ते आदि अष्ट जे। श्रीललिता जू मुख्य सखी ते ॥५३॥
अपर सहचरी संग अनेका जिन हिय प्रीति जुगल पद एका ॥
भूषन वसन प्रसून प्रसादो। श्रीललिता दीन्हे अहलादी ॥५४॥
मंगल वस्तु लियें सखि राजैं। मंगल गान वाद्य वर बाजै ॥
जहाँ सौर बैठयौ आराधै। तहा विमान लग्यौ निर्बाधै ॥५५॥
मै शुभ धुनि सुनि संभ्रम मान्यो। सौर प्रसंगन सो चित आन्यो ॥
पाप प्रचंड उदधि अनपारा। सौर लहै गोधाम अवारा ॥५६॥

कौतुक हेत लख्यो मै आई। रत्नप्रभा देखी सुखदाई ॥
तिन सब ते मोते व्यवहारा। भयो जथाविधि शिष्टाचारा ॥५७॥
रत्नप्रभा मुख तें सब जानी। सौर लही गति मंगल खानी ॥
अचरज पाय प्रश्न मै कीन्हौ। सौर समान अधम नहि चीन्हौ ॥५८॥

मासहु पूरौ होनहि पायो। अचरज महा जान द्रुत आयो ॥
रत्नप्रभा संसै सब खोली। श्रीमुख हेतु गिरा कहि बोली ॥५९॥
जुगल प्रभू अस हियें विचारी। सौरै दीजै धाम सवारी ॥
उत्तम अधिकारी गति पावै। जथायोग्य सब कोऊ गावै ॥६०॥
अधम शीघ्र हमरे पद आवै। अधम उधार तबै जस छावै ।
जौ पापी गति वेगि न लहई। पावन पतित हमै को कहई ॥६१॥
गोपेश्वर महिमा प्रभु भारो। छिन छिन आनद होत निहारो ॥
श्रीजू निज मुख आज्ञा दीन्ही। ललिता जूथपाल सखि कीन्ही ॥६२॥

लवंगलतिका अस नाम सुधारी। ल्यावौ जाय हमै सो प्यारी ॥
यातें आयो वेगि विमाना। गोपेश्वर तुम सम को आना ॥६३॥
जा उपदेश लहत पद पावत। सुजस तुम्हार सकल जग गावत ॥
यह सुनि मोहि भई अति लाजा। रत्नप्रभा साध्यौ सो काजा ॥६४॥

सौर सहचरी वे सब नायो। नखशिख सकल सिंगार रचायो ॥
लवंगलतिका धारयौ शुभ नामा। कंठ लगाय लह्यौ विश्रामा ॥६५॥
मंगल गाय सुवन वरषाई। मम सुख दै लै गई लिवाई ॥
समाचार पाछें तें पायो। लोक लोक प्रति यह जस छायो ॥६६॥
जा जा लोक गयो वर जाना। पूजा करी लोकपति नाना ॥
समुझि हियें प्रभु महिमा भारी। करें प्रणाम धरा तन धारी ॥६७॥

दो०—सनत्कुमार जुगल प्रभू, करुणासिंधु अपार।
आरत पर जो नेह हिय, को पावै कहि पार ॥१॥
महिमा समुझत ही बनै, गने न अंत लहाय।
नाम रूप श्रीजुगल प्रभू, तरै न को लव ध्याय ॥२॥
सकल काल परिमाण मोहि, जानि परयौं अस मीत।
रसिक संग लव किये बिनु, लहै न मुद जन भीत ॥३॥
जथा खानिगत रत्न बहु, जानि सकै नहि कोय।
खननहार नर जगत मैं, प्रगट करैं सब सोय ॥४॥
तथा तुम्हारौ आगमन, मोहि भयो सुखसार।
कहत सुनत प्रभु गुन विसद, बीत्यौ काल हमार ॥५॥
हंस रूप श्री कृष्ण प्रभु, कियौ तुम्हैं उपदेश।
हमसे जन पहुँचावें, परम धाम निज देश ॥६॥
सनत्कुमार तुम्हार जग, फिरिबो याही काज।
जथा मेघ सर्वस्व दै, ठाम ठाम सुख साज ॥७॥
जद्यपि तीरथ शुद्ध है, रहै ठाम इक दीन।
धन्य साधु तुम रसि जे, जाय करै सुचि पीन ॥८॥
भयो तुम्हारौ आगमन, जब ते मम थल माहिं।
परमानन्द रस वरष भर, भये मग्न मन माहिं ॥९॥
सुनि तिहारे वदन तें, दोहा रीति अनूप।
ब्रह्म सभा संवाद वर, स्वामी हंस सरूप ॥१०॥

राधाकृष्ण सरूप जस, सर्व सेव्य तस धाम।
अपर लोकपति लोक सुनि, सबको सो विश्राम ॥११॥
सुचि ललचानौ मोर मन, कह्यौ स्वल्प कछु गाय।
श्रीप्रभु श्रीललिता कृपा, मति समान तुम पाय ॥१२॥

छप्पै अल्प कवित्त कछु, भाख्यो लोक प्रमान।
सप्तावर्ण विभाग करि, जथा निवास अमान ॥१३॥
नित्यविहारी जुगल श्रो, अंगजाय जिमि जानि।
छंद रीति वरनन कियो, नखसिख हित पहिचानि ॥१४॥
स्वल्प रास की रीति पुनि, वन विहार जल केलि।
भोजन सुख भरि सैन थल, निद्रा सहचरि मेलि ॥१५॥

लखे जीव माया परे, भोगैं कष्ट अपार।
प्रश्न कियो श्रीजू निकट, श्रीललिता सुखसार ॥१६॥
सनत्कुमार जथा भयो, जन्म मोर सो भाखि।
श्रीललिता मिलि अंगजा, प्रश्नोत्तर अभिलाखि ॥१७॥
संसै होंहि निवृत्त सब, मन पावै विश्वास।
श्रीललिता मो तन कहे, छप्पै बहु इतिहास ॥१८॥
स्वामी श्रीअनिरुद्ध मिलि, नारद जो संवाद।
नाम रूप निरनै कहो, कारन सो निर्वाद ॥१९॥
स्वामी सेवक रूप कहि, सेवा करी प्रमान।
अष्ट जाम की रीति वर, कछू अरिल्ल बखानि ॥२०॥
चौपाई की रीति सौं, कह्यौं जन्त्र षटकोन।
ऋतु संबंधी होत नित, प्रभु विहार जित जौन ॥२१॥

दंपति हास्य विनोद सुख, मंडल च्यारि बखान।
जथा निवास विभूति वपु, भक्ति कृपा परिमान ॥२२॥
विदा हमारी जथाविधि, रत्नप्रभा के संग।
आये पूंछत देखते, लोक भक्त सुख अंग ॥२३॥

विरजा पार सभा भई, नेह वचन उलहानि ॥
विदा होय तब हम चले, आये लोक पिछानि ॥२४॥
ठाम ठाम मिलि सुख लियो, देव संग इत आय।
श्रीजमुना मज्जन कह्यौ, आश्रम पुहुमि रचाय ॥२५॥

नित्यविहारी जुगल पद, श्रीगुरु चरण भरोस।
कछू काल बीत्यौ इतैं, जीव करत संतोस ॥२६॥
नाम रूप उपदेश लहि, मोतें जीव अपार।
जुगल धाम पायो अचल, जथा भाव निर्धार ॥२७॥

अपर जीव विश्वास हित, प्रभु महिमा दरसाय।
मनु अधिकारी वर कह्यौ, सौर अधम अधिकाय ॥२८॥
सनकुमार अपार अति, महिमा श्रीपरेनु।
धन्य धन्यतर सो अहै, गहै चतुर्फल देनु ॥२९॥

जुगलानंद समुद्र की, ए माधुरी तरंग।
श्रीललिता मुख हम लही, भाषो तेइ सभंग ॥३०॥
यह सब तुम आगमन तें, लह्यौ सिंधु सुख पूर।
संत मिलैं जिहि कृपा करि, सो प्रभु वल्लभ भूर ॥३१॥

जा दिन तें इन बसत हे, अब लौं जो चित चाह।
सो सब विधि पूरन भई, तुम अलभ्य लहि लाह ॥३२॥
भयो कृतारथ रूप मै, आश्रम सहित समाज।
सनत्कुमार कृपा करी, भए सिद्ध मम काज ॥३३॥

सोरठा—सुनि गोपेश्वर बैन, चैन ऐन हिय नैन भरि।
बोले सब सुख दैन, सनत्कुमार विचार करि ॥१॥
गोपेश्वर प्रभु रूप, प्रगट भये तुम सर्व हित।
दीन्हो वस्तु अनूप, कृपा रावरो अधिक इत ॥२॥

गोपेश्वर तन प्रान, जो तुम पद पर वारिये।
तौ न मन सचु मान, जैसो कृपा निहारिये ॥३॥

महिमा राउर पेखि, चित्त समुझि सुख होत अति।
कहियै काहि सरेखि, अपर न सम कोउ जगत गति ॥४॥
जो हम हिय वृत्तांत, अविदित तुम तें सो नहीं।
यातें यह सिद्धांत, नमस्कार सब पर कही ॥५॥

अस कहि सनत्कुमार, सनमुख ठाढ़े जोरि कर।
भरी सभा अनपार, च्यारि खानि जत जीव वर ॥६॥
सहसा उठि सब कोय, सुवन वरषि जय धुनि कहैं।
प्रीति परस्पर जोय, रीति अलौकिक उर गहैं ॥७॥

दोहा—सनत्कुमार सभारि शुभ, अस्तुति करी अपार।
धन्य धन्य चहुदिसि भयो, मंगल शब्द प्रचार ॥१॥
गोपेस्वर जिय जानि अति, सनत्कुमार प्रभाव।
उठे अधिक वस प्रेम मन, हिय मिलिवे को चाव ॥२॥
निरखि परस्पर हरखि विवि, उमगे सिंधु प्रमोद।
लहरि बाहु मिलि एक तन, होत विचित्र विनोद ॥३॥
देखि परे साचे उदधि, चख प्रस्रव वह नीर।
विलग होत तन प्राण जिमि, तस बाढ़ी उर पीर ॥४॥
लखैं परस्पर मौन गहि, कहि न सकैं मुख बैन।
सकल सभा जकथक भई, कछू बार लहि चैन ॥५॥
ता छिन सुर नभ दुंदुभी, हनी सुवन वरषाय।
कोलाहल रव सुनि भयो, चेत सभा समुदाय ॥६॥
गोपेश्वर सनकादिकौ, इनके अंग न चेत।
बिदा होन जिय मानि भय, स्वास बड़ी गति लेत ॥७॥
तहाँ रहे जे चतुर मुनि, ज्ञान प्रेम गति वाम।
उभय दिसा अंग थाभि तिन, किये जथा जिन वाम ॥८॥
गहि बैठारे उटज थल, गोपेश्वर ऋषिवृंद।
सनकादिक बैठाय तिमि, वर विमान चलि मंद ॥९॥
सत्यलोक पथ सो गयो, जान भई मगवार।
दशा सभारी सवन तन, बोले सनत्कुमार ॥१०॥
गोपेश्वर के विमल गुन, अचल जुगल पदप्रीति।
गावत गये अकाश पथ, कीरति छई पुनीति ॥११॥
इत गोपेश्वर चेत लहि, कही गिरा सुख सार।
धन्य जुगल तन माधुरी, सागर सनत्कुमार ॥१२॥
जुगलानंद समुद्र को, लहरि माधुरी वृंद।
आलोड़न कीन्हे भलें, जिन्हैं पाय मुद कंद ॥१३॥
ऐसें विसद बखानि गुन, गोपेश्वर धरि मौन।
दंपति रूप हियें सुमिरि, किये सुकरिवैं जौन ॥१४॥
जुगल स्वरूप अथाह रस, उदधि अखंड प्रवाह।
उठै लहरि माधुर्य्य बहु, जा छिन जैसी चाह ॥१५॥

गोपेश्वर सनकादि मिलि, जा विधि भयो प्रसंग।
अमित अंड जस सो भयो, वर माधुरी तरंग ॥१६॥
सिंधु लहरि जे करत हैं, परस स्वल्प तन कोय।
भेंटत सकल समुद्र ते, पाप जांहि जस होय ॥१७॥
जुगल रूप सुखसिंधु की, लहरि कही या मांहि।
एकौ जे नर हिय गहैं, परमधाम ते जाहि ॥१८॥
सुनै सुनावैं मोद सों, गाय विचारै हेतु।
कृपापात्र ते होंहि दृढ़, जुगल प्रभू भव सेतु ॥१९॥
जो जाके मन मै रुचै, गहै जुक्ति जो अल्प।
गर्भवास नहि लहै पुनि, कहै देव तेहि कल्प ॥२०॥
गोपेश्वर सनकादि वर, तिनकौ यह संवाद।
श्रीललिता पदरज कृपा, जानि भयो अहलाद ॥२१॥
बार बार ता ओर मन, धावै वरवस मोर।
लाज लगै निज दिसि निरखि, बुद्धि भाग्य बल थोर ॥२२॥
धीरज ज्ञान विचार मति, मो उर ते नहि कोय।
मन थाभौं किहि भाँति अति, प्रबल कहैं सब सोय ॥२३॥
मन आधीन सबै रहैं, जीतै ताहि सुजान।
यातें मन वस होय मै, कही इहै परिमान ॥२४॥
मै बोध्यो मन आपनौ, गाय जथामति मोरि।
सुनि सज्जन करि हैं छमा, बंदौ बहुत निहोरि ॥२५॥
जैसौ आवत बोलि जिहि, सो बोलै तिहि रीति।
साधु विचारैं हेतु वर, सुनि पावै मन प्रीति ॥२६॥
करि पारी अति धृष्टता, लख्यो न अपनी ओर।
सुनि साहस करिहैं दया, संत विवेकी मोर ॥२७॥
पर हित चाहत काल सब, सज्जन सहज सुभाय।
शशि शीतलता जग भरै, को तिहि करै सहाय ॥२८॥
ज्यौ नृप प्रगट करै प्रथम, राजपंथ सब हेत।
ऊँच नीच ता मग चलै, भूप सकल सुधि लेत ॥२९॥
जे प्रभु कैं वल्लभ सदा, साधु जगत सुख दानि।
तिन गाये हरि गुन अमित, भव वन राह प्रमानि ॥३०॥

तहाँ सबै गति पावहीं, बुध हम से मति मंद।
बिगरैं सुधरैं हित तेई, राह धनी बल कंद ॥३१॥
यातें करिहैं अति कृपा, सुनि गुनि गिरा भदेस।
काहू विधि ता मग चले, पहुँचै वाही देस ॥३२॥
जो ऊँचे मग पग धरै, यद्यपि है अति छोट।
साधु धनी जसवत जे, रीझि बिसारैं खोट ॥३३॥
हरि जस सुधा समस्त गुण, पूर सुखद सब रीति।
मो हूतै ते मंद अति, जे सुनि लह तन प्रीति ॥३४॥
पाप मलिन जिन के हृदय, ते तन हग मति अंध।
प्रगट न देखैं उदै रवि, ज्यौं पीनस सुचि गंध ॥३५॥
जुगलानंद समुद्र तहाँ, उठै लहरि माधुर्य्य।
रसिक झकोरा लेहि नित, विमुख उलूकन सूर्य्य ॥३६॥
भव वारिधि तामै भरे, मणि घोंघा सब ठाम।
भाग्य जथा जिहि लाभ तस, अस विचार सुख धाम ॥३७॥
जगत चराचर जीव जे, प्रभु कृत सिद्ध सुभाव।
अपनो मन गुन दोष मैं, देखत भाव कुभाव ॥३८॥
यातें हौं वंदन करौं, सीस धरा निज लाय।
सकल दया मो पै करौ, जे जग जीव निकाय ॥३९॥
गुरु हरि हरि जन कृपा लहि, को न होत जग जोग्य।
भक्त विमल पद कमल रज, सब विधि मोहि मनोज्ञ ॥४०॥
सो मस्तक धारन कियें, जानि परयौ अस मोहि।
जुगल सिंधु माधुर्य्य वर, लहरि बली हिय सोहि ॥४१॥
अल्प हृदय पचि सकि नही, बाहिर निकसी धाय।
लहरि बहरि परिवर्ण कछु, भयो ग्रंथ समुदाय ॥४२॥
जुगल प्रभू पद सुमिरि हिय, श्रीललिता बल पाय।
कही माधुरी लहरि कछु, मैं लघुमतिसम गाय ॥४३॥
मिष्ट लग्यो जीह्वा अधिक, लहरि माधुरी पर्स।
ज्ञान इतौ मो मैं कहा, होत निरस कै सर्स ॥४४॥
समुझि परत जो मोहि कछु, कह त्यौं तथा विचारि।
यह भरोस मन दृढ़ कियौं, लैहैं संत सुधारि ॥४५॥

जौ श्री ललिता उर कृपा, मोपै है लवलेस।
तौ भाखौं या के गुने, पावै तहां प्रवेस ॥४६॥
विंध्य निकट तट सुर्धुनी, गिरिजा पत्तन ग्राम।
हरि भक्तन कैं आश्रैं, कृष्ण दास विश्राम ॥४७॥
ग्रंथ माधुर्य्य सुलहरि अस, कहियै जाकौ नाम।
कृष्ण दास मुख श्री कृपा, प्रगट भयो ता ठांम ॥४८॥
अष्टादस सत लीजियै, संवत बावन संग।
भाद्र मास सुख सिंधु श्री, जन्मारंभ तरंग ॥४९॥
तिरपन संवत कौ अमल, अति वैसाख सुमास।
लहरि माधुरी सुख लह्यौ, सांपूरन मन आस ॥५०॥

यत्पद्माकरपद्मसद्मसुखदं श्रेयावधिं संपदाम् ।
यन्नारायणसर्वसौख्यशुभदं हृत्पद्ममोदावहम् ॥
तद्राधावरपादसिंधुप्रभवं सर्वान्समीहास्पदम् ।
तं सिंधुं प्रणमामि चित्तशिरसा श्यामानुगाख्याह्वहम् ॥१॥

कांत्या भूमिसरोजनीलकमले तुच्छीकृतेवर्ष्मणेः ।
संजाता प्रतिबिंबतस्तु हरिता यूनो छविः सा च वै ॥
दुर्ज्ञेया श्रुतिब्रह्मशंभुप्रमुखैर्यत्नैर्हि भक्तिं विना ।
तत्सार्द्धं हृदि चिंतयामि युगलं श्रीकृष्णदासोह्यहं ॥२॥

उदयंति यस्मिन्सिंधौ माधुर्य्यलहरिर्भरा ।
तस्मिन्पिपासा संवृद्धा कृष्णदासस्य मानसे ॥३॥
राधा राधा पुनर्राधा राधा राधास्मराम्यहं ।
कृष्णदासोन जानाति राधा नामाद्विना परं ॥४॥

इति श्रीकृष्णदासविरंचियुगलानन्दसमुद्रमाधुर्य्यलहरिर्नाम-
समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥